VIDYA UNIVERSITY PRESS

TOUCH n PASS

सर्वश्रेष्ठ परीक्षा पथ-प्रदर्शक

B.Com.
प्रथम वर्ष
(सर्टिफिकेट कोर्स)
सेमेस्टर-I

व्यावसायिक संगठन

SYLLABUS

UNIT-I

Business: Concept, Meaning, Features, Stages of development of business and importance of business. Classification of Business Activities. Meaning, Characteristics, Importance and Objectives of Business Organization, Evolution of Business Organisation. Difference between Plant, Firm and Industry and Business & Trade, and Profession & Vocation, Modern Business and their Characteristics.

UNIT-II

Promotion of Business : Considerations in Establishing New Business. Qualities of a Successful Businessman. Forms of Business Organisation: Sole Proprietorship, Partnership, Joint Stock Companies & Co-operatives and their Characteristics, relative merits and demerits. Difference between Private and Public Company, Concept of One Person Company and LLP.

UNIT-III

Plant Location : Concept, Meaning, Importance, Factors Affecting Plant Location, Alfred Weber's and Sargent Florence's Theories of Location. Plant Layout : Meaning, Objectives, Importance, Types and Principles of Layout. Factors Affecting Layout. Size of Business Unit : Criteria of Measuring the Size and Factors Affecting the Size. Optimum Size and factors determining the Optimum Size.

UNIT-IV

Business Combination : Meaning, Characteristics, Objectives, Causes, Forms and Kinds of Business Combination. Rationalisation : Meaning, Characteristics, Objectives, Principles, Merits and demerits.

TOUCH n PASS

VIDYA®
UNIVERSITY PRESS

पंजीकृत कार्यालय
विद्या लोक, टी०पी० नगर, बागपत रोड,
मेरठ, उत्तर प्रदेश (NCR) 250 002
फोन : 0121-2513177, 2513277
www.vidyauniversitypress.com

© प्रकाशक

सम्पादन एवं लेखन
शोध एवं अनुसन्धान प्रकोष्ठ

मुद्रक
विद्या यूनिवर्सिटी प्रेस

TOUCH 'n' PASS

विषय-सूची

UNIT-I : व्यवसाय ...3
UNIT-II : व्यवसाय का संवर्धन ...41
UNIT-III : संयंत्र स्थान ...80
UNIT-IV : व्यावसायिक संयोजन ...104
मॉडल पेपर ...128

UNIT-I

व्यवसाय

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. व्यवसाय की किन्हीं तीन आधुनिक परिभाषाओं को लिखिए।

उत्तर 1. **एफ०सी० हूपर** (F.C. Hooper) के अनुसार, "व्यवसाय से आशय वाणिज्य एवं उद्योग के सम्पूर्ण जटिल क्षेत्र, आधारभूत उद्योगों, प्राविधिक एवं निर्माणी उद्योगों तथा सहायक सेवाओं के वृहद् जाल, वितरण बैंकिंग, बीमा, परिवहन आदि से है जो सम्पूर्ण व्यावसायिक जगत की सेवा करते हैं और उनमें अन्तर्व्याप्त हैं।"

2. **मैकफारलैण्ड** (McFarland) के अनुसार, "व्यवसाय शब्द का प्रयोग हम उन सभी सामाजिक संस्थाओं के वर्णन के लिए करते हैं जिनके द्वारा आर्थिक क्रियाओं को संगठित किया जाता है। ये सामाजिक संस्थाएँ हमें वस्तुएँ व सेवाएँ प्रदान करने के लिए उत्पादन, विपणन एवं वित्तीय क्रियाओं का संचालन करती हैं।"
3. **उर्विक तथा हण्ट** (Urwick and Hunt) के अनुसार, "व्यवसाय एक ऐसा उपक्रम है जो किसी ऐसी वस्तु या सेवा को बनाता है, वितरित करता है या प्रदान करता है जिसकी समाज के अन्य व्यक्तियों को आवश्यकता है तथा उसके लिए वे भुगतान करने को तैयार हैं।"

प्र.2. व्यावसायिक संगठन के उद्गम एवं विकास पर प्रकाश डालिए।

उत्तर व्यावसायिक संगठन का उद्गम एवं विकास—जिस समय यातायात (Transport), संदेशवाहन साधनों एवं बैंकों तथा बीमा कम्पनियों का अभाव था, उस समय मनुष्य की आवश्यकताएँ सीमित थीं और लगभग आत्मनिर्भर ही था। वह जो कुछ उत्पादन करता था वही उपभोग करता था।

धीरे-धीरे ज्ञान एवं विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ मनुष्य की आवश्यकताएँ भी बढ़ने लगी। इन बढ़ती हुई आवश्यकताओं ने उत्पादन में वृद्धि तथा विशिष्टीकरण को जन्म दिया। इसी युग में वस्तु-विनिमय (Barter System) आरम्भ हुआ और मनुष्य की अन्तर्निभरता अधिकाधिक बढ़ने लगी। मुद्रा के आविष्कार ने विनिमय के क्षेत्र में क्रान्ति पैदा कर दी। संसार में आवश्यकता और विज्ञान ने नवीन औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया एवं नए-नए प्रयोग किए जाने लगे, जिसके कारण उत्पादन के संगठन का कार्य अत्यधिक जटिल हो गया। गृह-उद्योग प्रणाली के स्थान पर कारखाना प्रणाली पनप उठी, मशीनों का बोलबाला होने लगा, बड़ी मात्रा में उत्पादन होना प्रारम्भ हो गया। व्यापारिक संस्थाओं का स्वरूप भी बदल गया, एकाकी व्यापार के स्थान पर साझेदारी और साझेदारी के स्थान पर आधुनिक साधनों से परिपूर्ण कम्पनियों का निर्माण होने लगा। चूँकि उत्पादित वस्तुओं की एक ही बाजार में खपत होना कठिन था, अत: बाजारों का विस्तार किया गया, जिससे व्यवसाय का क्षेत्र राष्ट्रीय बाजार तक ही सीमित न रहकर अन्तर्राष्ट्रीय बाजार का रूप धारण करने लगा। क्षेत्र-विस्तार ने अन्तर्देशीय प्रतियोगिता को जन्म दिया, उत्पादक अपने माल के प्रचलन तथा खपत के लिए भारी प्रयत्न करने लगे, विज्ञापन कला तथा विक्रय-कला को प्रोत्साहन मिला, उद्योग-धन्धों में निर्माणी लागत में कमी लाने के लिए श्रम-विभाजन, विशिष्टीकरण, प्रमापीकरण तथा प्रबन्ध के क्षेत्र में वैज्ञानिक प्रणाली (Scientific Management) की विधियाँ अपनाई जाने लगीं। यातायात एवं संदेशवाहन के साधनों के विकास ने बाजार के क्षेत्र को विस्तृत कर दिया। जोखिम की समस्याओं के लिए बैंक एवं बीमा कम्पनियों की स्थापना तथा व्यावसायिक संयोजनों (Business Combinations) ने तो व्यावसायिक संगठन का स्वरूप ही बदल दिया।

प्र.3. व्यावसायिक संगठन के कौन-कौन से क्षेत्र हैं? बताइए।

उत्तर व्यावसायिक संगठन का क्षेत्र—उद्योग और वाणिज्य के विकास के साथ-साथ व्यावसायिक संगठन के क्षेत्र का विस्तार होता गया। आधुनिक व्यावसायिक संगठन का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत तथा व्यापक है। फ्रांस के प्रसिद्ध उद्योगपति एवं प्रबन्ध-विशेषज्ञ हेनरी फेयोल के मतानुसार व्यावसायिक संगठन के क्षेत्र में निम्नलिखित क्रियाओं का समावेश होता है—

1. तकनीकी क्रियाएँ (Technical Activities)
2. वाणिज्यिक क्रियाएँ (Commercial Activities)
   (अ) क्रय-सम्बन्धी क्रियाएँ (Purchasing Activities)
   (ब) विक्रय-सम्बन्धी क्रियाएँ (Selling Activities)
3. वित्तीय क्रियाएँ (Financial Activities)
4. कर्मचारी सम्बन्धी क्रियाएँ (Personal Activities)
5. कार्यालय सम्बन्धी क्रियाएँ (Office related Activities)
6. लेखांकन सम्बन्धी क्रियाएँ (Accounting Activities)

प्र.4. वाणिज्य की विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।

उत्तर वाणिज्य की विशेषताएँ—वाणिज्य की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. **आर्थिक गतिविधि**—जैसा कि विभिन्न व्यापारियों द्वारा वस्तुओं तथा सेवाओं का क्रय एवं विक्रय किया जाता है जिससे पूँजी और लाभ अर्जित किया जा सके, यह वाणिज्य की आर्थिक प्रकृति को दर्शाता है। इस प्रक्रिया को मापने के लिए मौद्रिक पैमाने का उपयोग किया जा सकता है।
2. **लाभ**—लाभ अर्जित करना वाणिज्य की मुख्य विशेषता है। दोस्तों को कुछ उपहार या भेट करने का अर्थ वाणिज्य नहीं है। वाणिज्य के पीछे मुख्य लाभ प्रेरक शक्ति है।
3. **विपणन**—विपणन भी वाणिज्य की एक विशेषता है। इसमें वस्तुओं तथा सेवाओं का विनिमय, वितरण तथा पदोन्नतियाँ शामिल हैं। यह एक सतत प्रक्रिया है। ग्राहकों को आकर्षित करना तथा बनाये रखना विपणन का आदर्श वाक्य है।
4. **व्यवसाय का महत्वपूर्ण भाग**—वाणिज्य व्यवसाय का एक अभिन्न भाग है, क्योंकि इसके द्वारा प्रदान की जाने वाली विभिन्न वस्तुओं तथा सेवाओं का वाणिज्य की गतिविधियों के माध्यम से लक्षित ग्राहकों तक पहुँचाया जाता है।
5. **उपयोगिता**—ग्राहकों की आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए वाणिज्य द्वारा समय एवं स्थान उपयोगिताओं का निर्माण किया जाता है। समय उपयोगिता का सृजन भावी खपत के समय में वस्तुओं के भण्डारण के द्वारा किया जाता है। स्थान उपयोगिता का सृजन करने के लिए वस्तुओं को उत्पादन स्थल से उपयोगिता स्थल पर स्थानांतरित कर दिया जाता है।

प्र.5. वाणिज्य के दो प्रमुख घटक कौन-से हैं? बताइए।

उत्तर वाणिज्य के घटक—वे सभी गतिविधियाँ जो वस्तुओं एवं सेवाओं को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति या एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित करने की दिशा में केन्द्रित है, वाणिज्य में शामिल होती हैं। इसमें वस्तुओं एवं सेवाओं को उस व्यक्ति से स्थानांतरित करना शामिल है जो वास्तव में इसका उत्पादन करता है उस व्यक्ति को जो इसका उपभोग करने वाला है। व्यापार तथा व्यापार के लिए सहायक वाणिज्य के दो प्रमुख घटक हैं—

1. **व्यापार**—व्यापार वस्तुओं एवं सेवाओं को क्रय एवं विक्रय करने की एक गतिविधि है। इसके अन्तर्गत गृह एवं अन्तर्राष्ट्रीय दोनों स्तर की व्यापारिक गतिविधियों का अध्ययन किया जाता है। व्यापारिक गतिविधियों में क्रय एवं बिक्री के विभिन्न स्तर शामिल होते हैं अर्थात् व्यक्तियों के मध्य बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के मध्य तथा विभिन्न देशों की सरकारों के मध्य आदि।
2. **व्यापार में सहायता**—व्यापार में सहायक या सहायता सभी गतिविधियाँ शामिल हैं जो निर्माताओं से उपभोक्ताओं तक वस्तुओं के प्रवाह को सुगम बनाती हैं। विज्ञापन, मध्यस्थ गोदाम, बीमा तथा बैंकिंग आदि प्रमुख श्रेणियाँ है, जिनमें व्यापार के लिए सहायता को वर्गीकृत किया जा सकता है।

प्र.6. व्यापार की विशेषताएँ लिखिए।

उत्तर व्यापार की विशेषताएँ—व्यापार की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. व्यापार को वाणिज्य में मुख्य गतिविधि माना जाता है।
2. नकदी के लिए वस्तुओं एवं सेवाओं के लेन-देन को व्यापार कहा जाता है।
3. व्यापार के माध्यम से वस्तुओं एवं सेवाओं को सबसे अनुकूल विपणन में ले जाया जाता है।
4. यह राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय दोनों विपणनों में विभिन्न वस्तुओं की आपूर्ति की मांग के मध्य संतुलन बनाए रखता है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.7. व्यवसाय के व्यवसायीकरण से आप क्या समझते हैं?

उत्तर व्यवसाय का व्यवसायीकरण—एक प्रक्रिया जो किसी व्यवसाय या व्यापार को उच्चतम क्षमता एवं अखण्डता के पेशे में परिवर्तित कर देती है उसे व्यावसायीकरण के रूप में परिभाषित किया जाता है। व्यावसायीकरण में एक पेशेवर निकाय, स्वीकार्य योग्यताएँ, पेशेवरों के आचरण की निगरानी के लिए संघ एवं कुछ सीमा तक अप्रशिक्षित व्यक्तियों के योग्यता प्राप्त व्यक्तियों के भेद का समावेश होता है। यह पदानुक्रमित नागरिकता तथा व्यावसायिक ज्ञान प्राधिकरण के मध्य एक वर्गीकृत विभाजन का निर्माण करता है।

इसे भेद को व्यावसायिक समापन के रूप में भी जाना जाता है। इसका अर्थ है कि पेशा या व्यवसाय गैर-शिक्षित व्यक्तियों तथा वाह्य व्यक्तियों के लिए नहीं है। व्यावसायिक श्रेणी तथा सीमांकन द्वारा वर्णित एक स्तरित व्यवसाय है। मध्य युग में कहा जाता है कि इस प्रक्रिया का प्रारम्भ श्रमिक निकाय श्रेणी के साथ हुआ क्योंकि वे यात्रा करने वालों के रूप में स्वयं कार्य को करने के विशिष्ट अधिकारों के लिए, बिना अवैतनिक प्रशिक्षुओं को शामिल करने के लिए संघर्ष कर रहे थे। व्यावसायीकरण की प्रक्रिया का उद्देश्य पेशेवर सदस्यों की अचार संहिता तथा योग्यता समूह निर्धारित करना है। यह आवश्यक है कि पेशेवर सदस्य मानदंड का करें। यह स्थापित प्रक्रिया तथा सहमत आचार संहिता के साथ स्थित है। ऐसा इसलिए किया जाता है जिससे मान्यता पेशे की सामान्य अपेक्षाओं के अनुरूप है। व्यवसायीकरण से व्यवसाय अधिक गतिशील, सामाजिक उत्तरदायी तथा कुशल बन गया है। व्यवसाय के क्षेत्र में व्यवसायी करण ने प्रबन्धन शिक्षा प्राप्त करने के लिए देश की प्रबन्धन शिक्षा तथा विदेशों में सुविधाओं का विकास किया है। प्रबन्धन को पेशेवर बनाने की आवश्यकता पर सरकारी वक्ताओं ने निरन्तर ध्यान दिया है। यद्यपि सरकार ने पेशेवर राजनेता को उच्च पद पर नियुक्त करके व्यवसायीकरण को एक महत्त्वपूर्णा क्षति पहुँचाई है।

प्र.8. आधुनिक व्यवसाय के विकास के चरण लिखिए।

उत्तर आधुनिक व्यवसाय का विकास—आधुनिक व्यवसाय के विकास को निम्नलिखित चरणों के माध्यम से वर्णित किया जा सकता है—

1. **चरण-1-पितृत्ववाद (1991-1997)**—आधुनिक व्यवसाय के विकास में प्रथम चरण पितृत्ववाद है। इस स्तर पर, मध्य कालीन अर्थवस्वस्था व्यवसाय संचालित करने के लिए वैचारिक मंच था। व्यवसाय में राजकीय पितृसत्ता देखी गई अर्थात् नियोजित अर्थव्यवस्था की विशेषताओं का प्रभुत्व था।
2. **चरण-2-वाणिज्यीकरण (1998-2007)**—विकास का द्वितीय चरण वाणिज्यीकरण है। विपणन अर्थव्यवस्था इस चरण का मंच थी। इस स्तर पर विभिन्न व्यावसायिक हितों एवं परिस्थिति पर विचार किया गया।
3. **चरण-3-संतुलन (2008-2017)**—विकास का तृतीय चरण संतुलन है। इस चरण में वृत्ताकार अर्थव्यवस्था को आधुनिक व्यापार प्रणालियों के विकास का आधार माना जाता था। जब संयुक्त राष्ट्र द्वारा सतत् विकास लक्ष्यों या उद्देश्यों को स्वीकृत किया गया तो 2015 में सर्कुलर अर्थव्यवस्था का शीर्ष देखा गया था।
4. **चरण-4-प्रौद्योगिकीकरण (2018)**—चतुर्थ चरण प्रौद्योगिकीकरण है। इसे आधुनिक व्यवसाय के विकास में वर्तमान चरण के रूप में माना जा सकता है। नवोन्मेषी अर्थव्यवस्था इस चरण का आधार है। डिजिटल अर्थव्यवस्था चतुर्थ औद्योगिक क्रान्ति इस चरण की अभिव्यक्तियाँ हैं।

प्र.9. पारम्परिक व्यवसाय एवं आधुनिक व्यवसाय में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर पारम्परिक व्यवसाय एवं आधुनिक व्यवसाय में अन्तर निम्नलिखित हैं—

क्र० सं०	आधार	पारम्परिक व्यवसाय	आधुनिक व्यवसाय
1.	**अर्थ**	व्यवसाय की पारस्परिक अवधारणा में कहा गया है कि व्यवसाय व्यक्तिगत लाभ के लिए उत्पादों के उत्पादन एवं विपणन के लिए उपस्थित है।	व्यवसाय की आधुनिक अवधारणा में कहा गया है कि व्यवसाय ग्राहकों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उन्हें पर्याप्त उत्पाद प्रदान करने के लिए उपस्थित है।
2.	**क्षेत्र**	व्यवसाय स्थानीय विपणन तक ही सीमित था।	व्यवसायों में राष्ट्रीय के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय विपणन भी शामिल हैं।

3.	**उद्देश्य**	लाभ अर्जित करना व्यवसाय का उद्देश्य है। उत्पादन एवं वितरण गतिविधियाँ लाभ प्राप्त करने के लिए की जाती थी।	ग्राहकों को संतुष्ट करना तथा समाज को सेवाएँ प्रदान करना व्यवसाय का उद्देश्य है।
4.	**उपभोक्ता की स्थिति**	उपभोक्ताओं पर किसी भी प्रकार का कोई ध्यान नहीं दिया गया। वे केवल लाभ प्राप्त करने के साधन थे। उनकी आवश्यकताएँ एवं माँगें नगण्य थीं।	आधुनिक व्यवसाय ग्राहक-केन्द्रित होते हैं। वे ग्राहकों की आवश्यकताओं एवं माँगों को महत्त्व देते हैं। ग्राहकों पर विशेष ध्यान दिया जाता है।
5.	**सामाजिक अभिविन्यास**	व्यवसाय सामाजिक रूप से उन्मुख नहीं थे।	व्यवसाय सामाजिक रूप से उन्मुख होते हैं।
6.	**सामाजिक उत्तरदायित्व**	समाज के प्रति उत्तरदायित्व उपस्थित नहीं था।	समाज के प्रति उत्तरदायित्व विद्यमान है। यह ऐसे संगठनों का एक अभिन्न अंग है।
7.	**लाभ की भूमिका**	व्यवसायों की प्राथमिक विचारधारा।	व्यवसायों की माध्यमिक विचारधारा।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. प्रबन्ध, प्रशासन एवं संगठन में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर

प्रबन्ध, प्रशासन एवं संगठन में अन्तर
(Differences between Organisation, Management and Administration)

क्र० सं०	संगठन	प्रबन्ध	प्रशासन
1.	यह किसी व्यवसाय में दो या अधिक व्यक्तियों द्वारा सहकारिता तथा सम्बद्धता में कार्य करने का तन्त्र (mechanism) प्रदान करता है।	यह अधिकांशतः किसी काम के निष्पादन (performance) से सम्बन्धित होता है और अन्य लोगों से कार्य कराने में अपने को व्यस्त रखता है।	यह किसी कार्य के नियोजन में संलग्न रहता है तथा उपक्रम के उद्देश्यों, नीतियों, कार्यक्रमों तथा अन्य योजनाओं का निर्माण करता है।
2.	यह किसी उपक्रम के सब अधिशासी पद स्तरों के कर्त्तव्य, अधिकारों, उत्तरदायित्वों की संरचना तथा सह-सम्बन्धों को व्यक्त करता है।	कर्मचारियों के नेतृत्व, प्रेरणा तथा नियन्त्रण सम्बन्धी कार्यों को करके व्यवसाय को कार्यशील एवं सजीव बनाता है।	यह व्यवसाय के पूर्व नियोजन एवं क्रियाशील संगठन करने की क्रिया में व्यस्त रहता है।
3.	यह प्रबन्धकीय काम-काज को प्रदर्शित करने हेतु मंच प्रस्तुत करता है।	यह मंच पर कार्य करने को एकत्र करके कार्य-निष्पादन को दर्शाता है।	यह सम्पूर्ण नाटक का निर्माण एवं निर्देशन परदे के पीछे से करता है।
4.	यह अधिशासी संस्था के वातनाड़ी प्रणाली (nervous system) की रचना करता है।	यह अधिशासी संस्था के मस्तिष्क तथा श्वास लेने के अंगों को बनाता है।	यह अधिशासी संस्था के मस्तिष्क को बनाता है।
5.	संगठन विभिन्न स्तरों के कर्मचारियों में अधिकार, समर्पण तथा उनकी क्रियाओं में समन्वय करने के लिए एक तन्त्र की स्थापना करता है।	प्रबन्धकीय कार्य मध्यवर्गीय तथा निम्नवर्गीय अधिशासियों को सौंप दिए जाते हैं।	प्रशासन कार्य उच्च-स्तर के अधिशासियों द्वारा अपना ही कार्य निष्पादन के लिए आरक्षित रखा जाता है।

प्रबन्ध और प्रशासन की तरह, 'संगठन' और 'प्रबन्ध' के बारे में भी विशेषज्ञ एकमत नहीं हैं। कुछ विशेषज्ञ इसे पर्यायवाची मानते हैं परन्तु वास्तव में प्रबन्ध और संगठन में भेद है और उनके कार्य-क्षेत्र भी अलग-अलग है यद्यपि इन दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। संगठन का निर्माण प्रशासन द्वारा किया जाता है और उसका प्रयोग प्रबन्ध द्वारा किया जाता है। इस प्रकार संगठन प्रशासन और प्रबन्ध के बीच एकाग्रता स्थापित करता है। सरल शब्दों में, संगठन की तुलना शरीर (body) से तथा प्रबन्ध की तुलना मस्तिष्क (brain) से की जा सकती है। इस प्रकार संगठन एक ऐसा तन्त्र (system) है जो प्रबन्ध द्वारा लिए गए निर्णयों को कार्य रूप में परिणित करता है। दूसरे शब्दों में, प्रशासन नीति निर्माण करता है (formulates the policies), प्रबन्ध नीतियाँ कार्यान्वित करवाता है (gets the policies executed), तथा संगठन नीतियाँ कार्यान्वित करता है (executes the policies)।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'प्रशासन' एक व्यापक शब्द है और 'प्रबन्ध व संगठन' केवल इसके अंग हैं। प्रशासन निर्देशन (direction) प्रदान करता है, संगठन एक कुशल तन्त्र (machinery) का निर्माण करता है प्रबन्ध एक कुशल कार्यकारिणी (executive) बनाता है। संक्षेप में, संगठन प्रबन्ध का एक तन्त्र है जिसकी सहायता से प्रशासन द्वारा निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करते हैं।

प्र.2. व्यवसाय के प्रमुख कार्यों की विवेचना कीजिए।

उत्तर

व्यवसाय के कार्य
(Functions of Business)

प्रबन्ध विशेषज्ञ प्रो० पीटर एफ० ड्रकर (Peter F. Drucker) ने व्यवसाय के दो ही कार्य बताए हैं—1. विपणन (Marketing) और 2. नवप्रवर्तन (Innovation)। इन शब्दों की व्याख्या करते हुए ड्रकर ने लिखा है कि व्यवसाय का प्रमुख कार्य मानव समाज के लिए आवश्यक वस्तुओं व सेवाओं का निर्माण करना है। **शुम्पीटर** के मतानुसार, व्यवसाय का प्रमुख कार्य शोध एवं अनुसन्धान करना है जिससे कि जन समाज को पर्याप्त मात्रा में सस्ती व अच्छी वस्तुएँ व सेवाएँ उपलब्ध हो सकें। भारतीय विचारधारा के अनुसार, यदि ब्रह्मा को सृष्टि का रचयिता कहा जाए तो 'व्यवसाय' को 'विष्णु' (Vishnu) की संज्ञा दी जा सकती है क्योकि सृष्टि के पालन-पोषण का महत्त्वपूर्ण कार्य व्यवसाय द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से व्यवसाय के कार्यों का वर्णन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा सकता है—

1. **वित्तीय कार्य**—वित्त या पूँजी व्यवसाय का प्राण या जीवन-रक्त है। इसके अभाव में व्यवसाय की कल्पना नहीं की जा सकती। व्यवसाय की स्थापना या प्रवर्तन से लेकर समापन तक इसकी आवश्यकता पड़ती है। स्थायी सम्पत्तियों एवं कार्यशील व्ययों के लिए पूँजी प्राप्त करना आवश्यक होता है। कभी-कभी स्वामित्व पूँजी के साथ ऋण-पूँजी भी प्राप्त करनी पड़ती है। वित्तीय सन्तुलन बनाए रखना व्यवसाय का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है क्योंकि अति-पूँजीकरण तथा अल्प पूँजीकरण दोनों ही भयंकर दानव हैं जो इस कार्य में बाधक हो सकते हैं तथा संस्था को दिवालियापन का मुँह देखना पड़ सकता है। अत: उचित पूँजीकरण के द्वारा वित्तीय सन्तुलन बनाए रखना व्यवसाय का प्रमुख कार्य है।
2. **उत्पादन एवं निर्माण कार्य**—निर्माण कार्य द्वारा कच्चे माल को रूप उपयोगिता प्रदान करके उसे निर्मित माल में परिवर्तित किया जाता है, जैसे, इस्पात से मशीनें बनाना, लकड़ी से फर्नीचर इत्यादि। जिस व्यवसाय का निर्माण कार्य ही महत्त्वपूर्ण होता है, उसमें क्रय इन्जीनियरिंग यातायात, संग्रह, आदि कार्य निर्माणी क्रिया के अन्तर्गत ही पूरे कर लिए जाते हैं।
3. **क्रय कार्य**—यह कार्य लगभग सभी व्यवसायों का महत्त्वपूर्ण कार्य है। निर्माणी उद्योगों को कच्चे माल का और व्यापारियों को निर्मित माल का क्रय करना पड़ता है। इस कार्य को वैज्ञानिक ढंग से सम्पन्न करने के लिए कुशल व अनुभवी विशेषज्ञों की नियक्ति की जाती है।
4. **इन्जीनियरिंग कार्य**—आधुनिक बृहत् स्तरीय व्यवसाय में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस कार्य को व्यवसाय की कल्पना के पूर्व प्रारम्भ करना पड़ता है तथा निरन्तर इसकी कार्यकुशलता बनाए रखनी पड़ती है इन कार्यों को दो भागों में बाँटा जा सकता है—(i) उत्पादन डिजाइन (Product design) और (ii) संयन्त्र इन्जीनियरिंग (Plant Engineering)। संयन्त्र का रख-रखाव व उसकी सुरक्षा भी इसी कार्य के अन्तर्गत शामिल हैं।
5. **उत्पादन नियोजन तथा नियन्त्रण कार्य**—वैज्ञानिक की दृष्टि से यह कार्य भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इससे निर्माण कार्य में सुविधा रहती है, बर्बादी नहीं होती तथा मितव्ययिता प्राप्त की जा सकती है। नियन्त्रण के द्वारा आयोजन के अनुरूप ही उत्पादन सम्भव होता है।
6. **विक्रय कार्य**—विक्रय समस्त आर्थिक क्रियाओं का आदि व अन्त है। इसके अभाव में व्यवसाय को व्यवसाय नहीं कहा जा सकता।
7. **सेविवर्गीय या स्टार्फिंग कार्य**—व्यवसाय के कुशल संचालन के लिए सभी विभागों में योग्य व अनुभवी व्यक्तियों की नियुक्ति की जाती है। कर्मचारियों की भर्ती व चयन के साथ प्रशिक्षण, पदोन्नति, स्थानान्तरण, कल्याण कार्य, आदि की व्यवस्था की जाती है। इन कार्यों के निष्पादन हेतु सेविवर्गीय विभाग की स्थापना की जाती है। अत: सेविवर्गीय प्रबन्ध व्यवसाय का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है।

8. **लेखाकर्म कार्य**—आधुनिक व्यवसाय के अन्तर्गत वित्तीय लेखांकन के साथ प्रबन्धकीय लेखांकन भी आवश्यक हो गया है जिससे व्यवसाय के स्वामियों को सही आर्थिक स्थिति की जानकारी निरन्तर मिलती रहे। इस हेतु चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट मैनेजमेण्ट एकाउण्टेण्ट तथा कॉस्ट एण्ड वर्कस एकाउण्टेण्ट की नियुक्ति की जाती है।
9. **कार्यालयी कार्य**—प्रत्येक व्यावसायिक संस्था में कार्यालय इसका अभिन्न अंग होता है। व्यवसाय में कार्यालय का वही स्थान है जो एक घड़ी में मेन स्प्रिंग का होता है। प्रत्येक प्रकार की सूचना का यही केन्द्र होता है। इसी के अध्ययन से समस्त व्यवसाय का संचालन व नियन्त्रण किया जाता है।
10. **अन्य कार्य**—व्यवसाय के अन्य कार्य हैं—(i) विपणि अनुसन्धान द्वारा उपभोक्ता की सही आवश्यकताओं का पता लगाकर उन्हें पूरी करना; (ii) उपभोक्ताओं की सन्तुष्टि का पूरा ध्यान रखना; (iii) व्यवसाय के प्रबन्ध व नियन्त्रण की व्यवस्था करना; (iv) लागत व व्यय को कम करके उन्नत तकनीक द्वारा श्रेष्ठतम व नवीन वस्तुओं का निर्माण करना; (v) नवाचार शोध व विकास; (vi) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग व सहकारिता को प्रोत्साहित करना इत्यादि।

प्र.3. क्या व्यवसाय का उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना है? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर

क्या व्यवसाय का उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना है?
(Is the Object of Business to Earn Maximum Profit?)

इस सम्बन्ध में सभी विद्वान एकमत नहीं हैं।

(अ) अधिकतम लाभ कमाने के पक्ष में तर्क

कुछ विद्वानों का मत है कि व्यवसाय में अधिक से अधिक लाभ कमाना चाहिए जैसे—

जोडलडीन के अनुसार, "एक प्रतियोगी अर्थव्यवस्था में अधिकाधिक लाभ कमाना ही प्रबन्ध का प्रमुख सामाजिक उत्तरदायित्व है।"

पीगू के अनुसार, "मनुष्य स्वभाव से अधिकाधिक लाभ कमाने के उद्देश्य से कार्य करता है।"

फ्रीडमैन के अनुसार, "अधिकतम लाभ कमाना ही स्वतन्त्र समाज की आधारशिला है अत: अधिकाधिक लाभ कमाना चाहिए।"

कीथ एवं **गविलिनी** के अनुसार, "अधिकाधिक लाभ की सम्भावना ही व्यवसाय के विकास एवं विस्तार को प्रेरित करती है।"

एबोट (Abott) के अनुसार, "लाभ के अभाव में व्यवसाय बिना रस के मुरब्बे के समान है।"

उपर्युक्त विद्वानों के विचारों का अध्ययन करने के बाद लाभ कमाने के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जा सकते हैं—

1. **अभिप्रेरणा का स्त्रोत**—लाभ व्यवसाय संचालन में अभिप्रेरणा का कार्य करते हैं तथा व्यवसाय के प्रति अपनत्व की भावना जाग्रत करते हैं।
2. **जोखिम से सुरक्षा**—व्यवसाय में अनिश्चितता तथा जोखिम के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करने में लाभों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।
3. **कुशलता की माप**—लाभ व्यवसाय की कुशलता माप का आधार प्रस्तुत करते हैं। अधिक लाभ कमाने वाली संस्था को अधिक सफल माना जाता है।
4. **तुलना का आधार**—लाभ तुलना का आधार है। लाभों के आधार पर ही राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर तुलना सम्भव है।
5. **विकास का आधार**—व्यवसाय के भावी विकास एवं विस्तार को सम्भव बनाने के लिए लाभ आवश्यक है। अधिक लाभ होने पर लाभों के पुनर्विनियोग द्वारा विकास के लिए पर्याप्त धन उपलब्ध हो जाता है।
6. **व्यवसाय के उत्तरदायित्वों की पूर्ति**—व्यवसाय के भी कुछ उत्तरदायित्व होते हैं जिन्हें पूरा करने के लिए लाभ अनिवार्य है जैसे कर्मचारियों को पारिश्रमिक देना, सरकार को कर देना, अंशधारियों को लाभांश या बोनस देना आदि।
7. **मुख्य उद्देश्य के अनुकूल**—जब व्यवसाय की स्थापना ही लाभ कमाने के उद्देश्य से की गई है तो क्यों न अधिकतम लाभ कमाया जाये?

(ब) अधिकतम लाभ कमाने के विपक्ष में तर्क

कुछ विद्वानों ने अधिकतम लाभ कमाने का विरोध किया है जिसमें प्रमुख निम्नलिखित हैं—

हेनरी फोर्ड के अनुसार "केवल धन के पीछे भागना ही व्यवसाय नहीं है।"

गोल्ड स्मिथ के अनुसार, "जहाँ धन का संचय होता है वहाँ मनुष्य का पतन होता है।"

पीटर एफ० ड्रकर के अनुसार, "अधिकाधिक लाभ कमाना ही व्यवसाय का उद्देश्य नहीं हो सकता।"
बर्नार्ड शॉ के अनुसार, "पूँजीवाद में आत्मा नहीं होती। पूँजीपतियों की अभिलाषा लाभ तथा इनका ईश्वर स्वर्ण है।"
टैरी (Terry) के अनुसार, "लाभ कमाना व्यवसाय का मुख्य उद्देश्य नहीं है बल्कि इसका उद्देश्य सामाजिक हित एवं आवश्यकता की पूर्ति करना है।"
उपर्युक्त विद्वानों के विचारों का विश्लेषण करने से निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट होते हैं—

1. **वर्ग संघर्ष**—इससे समाज में धन के असमान वितरण को प्रोत्साहन मिलता है। इससे वर्ग संघर्ष में भी वृद्धि होती है।
2. **भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन**—अधिकाधिक लाभ कमाने के लिए भ्रष्ट, अनैतिक तथा समाज विरोधी तत्त्वो का सहारा लिया जाता है जिससे समाज की नींव हिल जाती है। ईमानदारी से तो सामान्य लाभ ही कमाये जा सकते हैं।
3. **अनार्थिक प्रतियोगिता**—इससे अनार्थिक प्रतियोगिता को प्रोत्साहन मिलता है जिससे अधिक साधनों की बर्बादी होती है। अधिक लाभों से अनेक व्यवसायी आकर्षित होते हैं और प्रतियोगिता बढ़ती है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि व्यवसाय का उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना नहीं हो सकता और वर्तमान युग में यह सम्भव भी नहीं है क्योंकि बाजार में भारी प्रतियोगिता, सरकारी नियन्त्रण तथा ग्राहकों की सजगता इसमें बाधक है। दूसरी ओर लाभों की मान्यता को समाप्त भी नहीं किया जा सकता। यहाँ तक कि समाजवादी देश भी लाभ की मान्यता को समाप्त नहीं कर सके। अत: व्यवसाय में लाभ तो होना चाहिए लेकिन उचित मात्रा में। यह उचित मात्रा व्यवसाय के आकार, उसकी प्रकृति तथा उसके दायित्वों को ध्यान में रखकर निश्चित की जा सकती है। यदि व्यवसाय को जीवित रखना है तो कुछ न कुछ लाभ कमाना ही होगा क्योंकि एक तो लाभ प्रेरणा का कार्य करते हैं, अपनत्व की भावना जाग्रत करते हैं जो व्यवसाय के सफल संचालन के लिए आवश्यक है। दूसरे व्यवसाय के भी कुछ उत्तरदायित्व हैं जिन्हें लाभों के अभाव में पूरा नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्ध में उर्विक के कथन को ध्यान में रखना चाहिए। उर्विक के अनुसार, "जितना दौड़ का उद्देश्य शर्त में, क्रिकेट का उद्देश्य रन बनाने में, जीवन का उद्देश्य खाने में हो सकता है उतना ही उद्देश्य व्यवसाय का लाभ कमाने में होना चाहिए।"

***प्र.4.* व्यावसायिक संगठन के उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए।**

उत्तर

व्यावसायिक संगठन के उद्देश्य
(Objectives of Business Organisation)

आज के प्रतिस्पर्धा के युग में व्यावसायिक संगठन के बिना व्यवसाय की उन्नति करना कोरी कल्पना मात्र ही रह जाती है। अत: यदि गहराई से देखा जाय तो किसी भी देश की आर्थिक उन्नति एवं समृद्धि अप्रत्यक्ष रूप से वहाँ के कुशल व्यावसायिक संगठन पर निर्भर करती है। यह सफल व्यावसायिक संगठन की ही देन है कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका आज विश्व का सबसे अधिक समृद्धिशाली राष्ट्र माना जाता है। व्यावसायिक संगठन के उद्देश्यों का निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन किया जा सकता है—

1. **न्यूनतम व्यय पर अधिकतम उत्पादन करना**—प्रत्येक व्यवसायी के समक्ष कम-से-कम लागत पर अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त करने का उद्देश्य होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति तभी हो सकती है जबकि भूमि, श्रम एवं पूँजी का परस्पर एक उचित एवं निश्चित अनुपात तय किया जाय। यह कार्य व्यावसायिक संगठन के द्वारा ही सम्भव किया जा सकता है।
2. **देश के साधनों का कुशलतम उपयोग करना**—प्रत्येक देश अथवा राष्ट्र की प्राकृतिक सम्पदा सीमित होती है। आवश्यकता इस बात की है कि किस प्रकार इस सीमित सम्पदा का कुशलतम प्रयोग किया जाय ताकि अधिकतम उत्पादन सम्भव हो सके। व्यावसायिक संगठन उत्पादन में होने वाले अपव्ययों पर पर्याप्त नियन्त्रण करके इस लक्ष्य की पूर्ति में सहायता देता है।
3. **बड़ी मात्रा में उत्पादन करना**—मशीनीकरण एवं वैज्ञानिक विधियों ने जहाँ एक ओर बड़ी मात्रा में उत्पादन सम्भव बनाया है वहीं दूसरी ओर उत्पादन विधियों में भारी जटिलता पैदा कर दी है। अत: प्रत्येक व्यवसायी के लिए बड़े पैमाने पर उत्पादन सम्भव नहीं है। व्यावसायिक संगठन जटिल उत्पादन विधियों को सरल बनाकर बड़े पैमाने के उत्पादन लक्ष्य की पूर्ति करता है।
4. **प्रतिस्पर्धा का सामना करना**—वर्तमान समय में किसी विशेष वस्तु का उत्पादन सैकड़ों व्यक्तियों द्वारा किया जाता है और प्रत्येक व्यवसायी द्वारा अपनी उत्पादित वस्तु को शीघ्र बेचने के प्रयास किये जाते हैं। किन्तु उत्पादित वस्तु का शीघ्र विक्रय तभी सम्भव है जबकि वस्तु किस्म व उत्तमता में श्रेष्ठ हो तथा लागत में अपेक्षाकृत सस्ती। वास्तव में व्यावसायिक

संगठन ही न्यूनतम व्यय पर अधिकतम उत्पादन करके किसी व्यवसायी को इन दोनों प्रतिस्पर्द्धाओं के समक्ष टिकने में समर्थ बनाता है।

5. **उपक्रम का सफल संचालन करना**—व्यावसायिक संगठन के आधारभूत तत्वों के ज्ञान के बिना सैकड़ों कर्मचारियों से कार्य करवाना कठिन होता है। कर्मचारियों में कार्य का उचित बँटवारा, अधिकार एवं दायित्वों का निर्धारण योग्यता एवं दक्षता के आधार पर पदोन्नति आदि ऐसे कार्य हैं जिनमें व्यावसायिक संगठन का ज्ञान सहायक होता है।
6. **प्रबन्धकीय क्षमता में वृद्धि करना**—व्यावसायिक संगठन का एक प्रमुख उद्देश्य प्रबन्धकीय श्रम-विभाजन एवं विशिष्टीकरण को प्रोत्साहन देकर प्रबन्धकों की योग्यता एवं क्षमता में वृद्धि करना भी है।
7. **अनियमितताओं को रोकना**—व्यावसायिक संगठन के सिद्धान्तों के अनुसार, हिसाब-किताब एवं कार्य सम्पादन की विधि इस प्रकार रखी जाती है कि एक कर्मचारी के कार्य का स्वत: निरीक्षण दूसरे कर्मचारी द्वारा हो जाता है।
8. **सफल व्यवसायियों को तैयार करना**—व्यापार, वाणिज्य एवं उद्योग के क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि व्यावसायिक संगठन से सम्बन्धित तथ्यों की जानकारी नवयुवकों को कराई जाए जिससे निकट भविष्य में वे व्यवसाय का सफलतापूर्वक संचालन कर सकें।
9. **उत्पादन का कुशलतापूर्ण वितरण**—व्यावसायिक संगठन के माध्यम से वितरण समस्या को हल करने में पर्याप्त सहायता मिल सकती है क्योंकि व्यावसायिक संगठन केवल वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन से ही सम्बन्धित नहीं है वरन उनका कुशल वितरण भी इसी के क्षेत्र में जाता है।

प्र.5. व्यावसायिक संगठन के विकास पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर

व्यावसायिक संगठन का विकास
(Development of Business Organisation)

हॉट्रे और डलाई आधुनिक निगम के कानूनी आधार के विकसित होने का एक संक्षिप्त विवरण प्रदान करते हैं—

1. आधुनिक निगम की उत्पत्ति का पता रोमनों से लगाया जा सकता है, जिन्होंने नौवीं और दसवीं शताब्दी में सोसाइटी मैरिस (समुद्री फर्म) के रूप में जाना जाने वाला संगठन बनाया।
2. उनके पास इस संगठन के लिए एक संरचना थी, एक सोशियस स्टैस या भूमि पर भागीदार और एक सोशियस ट्रैक्टर या समुद्र में साथी। हॉट्रे और डलार्ड ने इस संरचना को "पूँजी और श्रम के बीच विभाजन की प्रारम्भिक उत्पत्ति" के रूप में मान्यता दी।
3. एंजेल और एम्स ने वर्णन किया कि कैसे इस रूप को फ्रांस और इंग्लैण्ड में बाद में समर्थन मिला।
4. पोलक और मैटलैंड ने इसी तरह निगमन के शाही चाटर के विकास का वर्णन किया।
5. ये चार्टर वे उपकरण थे जिनके माध्यम से क्राउन या एक देश के सम्राट ने 15वीं शताब्दी के दौरान चर्च और नगरों (प्रशासनिक क्षेत्रों को स्व-शासन की काफी शक्तियाँ प्रदान कीं। 16वीं शताब्दी तक व्यापारिक व्यापार के लिए पूँजी जुटाने और टर्नपाइक, नहरों और रेलमार्ग जैसे सार्वजनिक सामानों के लिए बुनियादी ढांचे का निमाण करने के लिए एक व्यावसायिक सन्दर्भ में शाही चार्टर के साधन को तैनात किया जा रहा था इन विकासो का उद्देश्य स्थायी उत्तराधिकार, स्वामित्व और स्व-शासन के अधिकारों के सन्दर्भ में संगठनों को क्राउन से स्वतन्त्रता की एक डिग्री प्रदान करना था।
6. आज संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा में एक कम्पनी के निगमन के लिए आवेदन करने की प्रक्रिया के परिणाम राज्य द्वारा एक लिखित दस्तावेज जारी करने में, जिसे कॉर्पोरेट चार्टर कहा जाता है जिसके माध्यम से समाज कम्पनी को कानूनी इकाई के रूप में मान्यता देता है। इस दस्तावेज को निगमन का प्रमाण-पत्र या निगमन के लेख रूप में भी जाना जाता है। 17वीं और 18वीं शताब्दी में एक वित्तीय क्रान्ति देखी गई जिसने "संयक्त स्टॉक कम्पनियों बैंकिंग बीमा और एम्स्टर्डम में पहला सक्रिय शेयर बाजार में तेजी से विकास किया।
8. जैसे-जैसे फर्म एक व्यक्ति के प्रबन्धन के लिए बहुत बड़ी हो गई, मालिक ने अतिरिक्त व्यक्तियों को प्रबन्धन में लाया। यद्यपि ये व्यक्ति विभिन्न व्यावसायिक कार्यों में विशिष्ट थे, फिर भी संगठन का प्रबन्धन केन्द्रीयकृत रहा। फर्मों के कानूनी ढांचे में भी बदलाव आया है। व्यवसाय तेजी से साझेदारी के रूप में कार्य करने पर शामिल होने को प्राथमिकता देते हैं। निगमन ने व्यक्तिगत मालिकों को सीमित देयता का लाभ प्रदान किया जो व्यवसाय संचालन को परेशान किए बिना दूसरों

को शेयर बेच या स्थानान्तरित कर सकते थे। जैसा कि **धीर** ने कहा, "विलय और अधिग्रहण का पालन किया। एकल-उत्पाद, एकल-फंक्शन फर्म मल्टीप्रोडक्ट, मल्टीफंक्शन व्यवसायों में विकसित हुए।"

9. अधिग्रहण अब औद्योगिक सीमाओं से विवश नहीं थे। जिन कम्पनियों ने विद्युत मशीनरी का निर्माण उपकरणों में विविधतापूर्ण किया, ऑटोमोबाइल निर्माताओं ने रेफ्रिजरेटर का उत्पादन शुरू किया, और मांस पैक करने वालो ने साबुन के निर्माण के लिए अपने उप-उत्पादों का उपयोग किया। विविध संगठनों के प्रबन्धन के लिए संगठनों के प्रबन्धन के तरीके में बदलाव की आवश्यकता थी। 1920 के दशक के दौरान, ड्यूपॉन्ट, जनरल मोटर्स, सियर्स रोबक, और स्टैंडर्ड ऑयल जैसी कम्पनियाँ उन अग्रदूतों में से थीं जिन्होंने अपने सम्बन्धित संगठनों का विक्रेन्द्रीकरण किया। अनुकूलनशीलता और चपलता सुनिश्चित करने के लिए, प्रबन्धकीय जिम्मेदारियों को अलग-अलग किया गया और पूरे संगठन में वितरित किया गया।

प्र.6. उद्योगों के प्रकारों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

उद्योगों के प्रकार
(Types of Industries)

चार मुख्य प्रकार के उद्योग निम्नलिखित दिए गए चित्र में दर्शाए गए हैं, तथा उन्हें निम्न प्रकार से समझाया गया है—

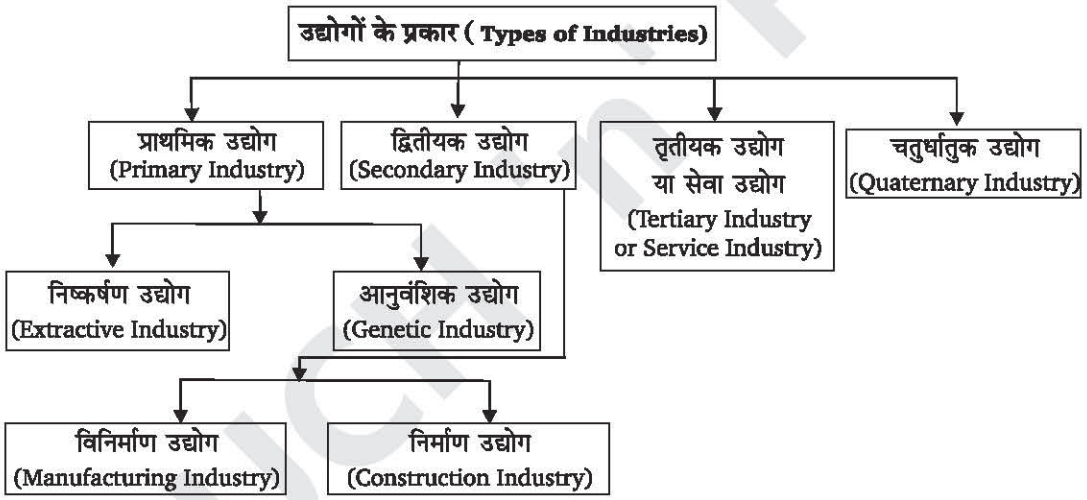

1. **प्राथमिक उद्योग**—प्राथमिक उद्योग उन्हें कहते हैं जो प्राकृतिक संसाधनों; जैसे—तेल खनिज, कृषि उत्पादों आदि के निष्कर्षण, उत्पादन, प्रसंस्करण तथा संचालन की व्यावसायिक गतिविधियों में सामान्यत: शामिल होते हैं। वे प्राकृतिक संसाधनों को कच्चे माल के रूप में उपयोग करते हैं, तथा उपभोक्ताओं के उपयोग के लिए उन्हें तैयार एवं परिष्कृत उत्पादों में परिवर्तित कर देते हैं। इन उद्योगों को आगे निम्नलिखित रूप से वर्गीकृत किया गया है—
   (i) **निष्कर्षण उद्योग**—ये उद्योग प्राकृतिक संसाधनों के निष्कर्षण की प्रक्रिया में शामिल होते हैं। वे सामान्यत: भूमि से तेल, खनिज एवं प्राकृतिक गैस, जंगल से लकड़ी समुद्र से मछलियाँ आदि निकालने के लिए उत्तरदायी होते हैं। इन उद्योगों द्वारा निकाले एवं उपयोग किए जाने वाले प्राकृतिक संसाधनों को निकालने या उपयोग करने के पश्चात् परिवर्तित नहीं किया जा सकता है। ये उद्योग स्वयं के उत्पाद विनिर्माण उद्योगों को प्रदानं करते हैं, जो तैयार उत्पादों के निर्माण के लिए उत्तरदायी होते हैं। सामान्यत: निष्कर्षण उद्योगों में मछली पकड़ने के उद्योग, खनन उद्योग वन उद्योग आदि शामिल हैं।
   (ii) **आनुवंशिक उद्योग**—ये उद्योग बिक्री के उददेश्य से जानवरों ओर पक्षियों के प्रजनन या पालन-पोषण तथा पौधों के पोषण की प्रक्रिया में शामिल होते हैं। आनुवंशिक उद्योगों के सामान्य उदाहरणों में डेयरी फार्मिंग, मुर्गी पालन, बागवानी, मछली प्रजनन, बाग की खेती, फूलों की खेती, पशु प्रजनन फार्म आदि शामिल हैं।

2. **द्वितीयक उद्योग**—वे उद्योग जो प्राथमिक उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के निर्माण एवं प्रसंस्करण में शामिल होते हैं, उन्हें द्वितीयक उद्योग के रूप में जाना जाता है। ये उद्योग प्राथमिक उद्योगों के उत्पादों को स्वंय के कच्चे माल के रूप में उपभोक्ता वस्तुओं में परिवर्तित करने के लिए उपयोग करते हैं।
   इन्हें अग्रिम निम्नलिखित में वर्गीकृत किया गया है—
   (i) **विनिर्माण उद्योग**—ये उद्योग कच्चे माल या अर्ध निर्मित वस्तुओं के निर्माण एवं उपभोक्ता वस्तुओं में परिवर्तित करने के लिए उत्तरदायी होते हैं। उदाहरण के लिए—कपास को वस्त्र में परिवर्तित किया जाता है (जो प्राथमिक उद्योग का एक उत्पाद है)। इसी प्रकार, इस्पात का उत्पादन करने के लिए लौह अयस्क का उपयोग किया जाता है तथा लकड़ी का उपयोग फर्नीचर आदि बनाने के लिए किया जाता है।
   ये उद्योग निम्नलिखित अनेक प्रकारों में से किसी एक का अनुसरण कर सकते हैं—
   (a) **विश्लेषणात्मक**—विश्लेषणात्मक विनिर्माण उद्योगों में, एक मूल उत्पाद को अग्रिम रूप से संसोधित, परिष्कृत या विभिन्न उत्पादों में फिल्टर किया जाता है। उदाहरण के लिए—तेल शोधन एक फिल्टरिंग प्रक्रिया है जिसमें कच्चे तेल का केरोसिन, डीजल, पेट्रोल, स्नेहक तेल आदि बनाने के लिए अलग किया जाता है।
   (b) **कृत्रिम**—यहाँ दो या दो से अधिक अर्ध-निर्मित वस्तुओं को एक साथ मिलाकर एक एकल उपभोज्य उत्पाद बनाया जाता है। उदाहरण के लिए—कृत्रिम विनिर्माण उद्योग द्वारा सीमेंट, पेंट, साबुन, डिटर्जेंट, सौंदर्य प्रसाधन, उर्वरक आदि का उत्पादन किया जाता है।
   (c) **प्रसंस्करण**—इन उद्योगों में, विश्लेषणात्मक तथा कृत्रिम, दोनों तकनीकों का उपयोग एक ही उत्पाद के निर्माण के लिए संचालन की एक शृंखला के माध्यम से किया जाता है, जैसे—स्टील, चीनी, वस्त्र आदि।
   (d) **संकलन रेखा**—इन विनिर्माण उद्योगों में एक अंतिम उत्पाद का निर्माण विभिन्न निर्मित एवं अर्ध-निर्मित उत्पादों के संयोजन द्वारा किया जाता है। उदाहरण के लिए-वाहनों का कोडांतरण, टेलीविजन, रेलवे वैगन, घड़ियाँ आदि।
   (ii) **निर्माण उद्योग**—ये उद्योग पुलों, भवनों, सड़क, मार्गों, बान्धों तथा अन्य प्रमुख निर्माणों के निर्माण में शामिल है। वे प्राथमिक उद्योगों के उत्पादों को स्वंय के कच्चे माल के रूप में उपयोग करते हैं, तथा उन्हें विशेष उत्पादों में परिवर्तित कर देते हैं जो विशेष रूप से उपभोक्ताओं की आवश्यकता को पूर्ण करते हैं। निर्माण उद्योग विनिर्माण एवं निष्कर्षण दोनों उद्योगों के अन्तिम उत्पादों का उपयोग करते हैं। उदाहरण के लिए, ये विनिर्माण उद्योगों के उत्पादों जैसे-सीमेंट, लोहा तथा इस्पात, मोर्टार आदि का उपयोग करते हैं, तथा निर्माण के उद्देश्य से संगमरमर, पत्थर आदि जैसे निष्कर्षण उद्योग के उत्पादों का भी उपयोग करते हैं।
3. **तृतीयक उद्योग**—तृतीयक उद्योग वे उद्योग हैं जो उपभोक्ताओं को प्रत्यक्ष रूप से सेवाएँ प्रदान करते हैं। इन सेवाओं में वाणिज्यिक सेवाएँ; जैसे-बैंकिंग, परिवहन, बीमा आदि तथा व्यक्तिगत सेवाएँ; जैसे—शिक्षण, नर्सिंग, चिकित्सा उपचार आदि शामिल हैं।
4. **चतुर्थातुक उद्योग**—ये उद्योग ज्ञान उद्योग है जो प्रौद्योगिकी अनुसंधान, डिजाइन तथा विकास पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। यह मूल रूप से बौद्धिक तथा ज्ञान-आधारित सेवाएँ प्रदान करता है; जैसे—परामर्श, शिक्षा, सूचना साझा करना, डेटा प्रोसेसिंग, अनुसंधान तथा विकास आदि।

प्र.7. उद्योग के महत्त्वपूर्ण कार्य कौन-से हैं? व्याख्या कीजिए।

उत्तर

उद्योग के कार्य
(Functions of Industry)

उद्योग के महत्त्वपूर्ण कार्य निम्न प्रकार हैं—

1. **अन्य क्षेत्रों में प्रगति को प्रोत्साहित करना**—एक उद्योग के विकास के परिणामस्वरूप अन्य उद्योगों की स्थापना एवं विस्तार होता है। यही नहीं, औद्योगिक विकास अन्य आर्थिक क्षेत्रों में भी प्रगति को प्रोत्साहित करता है।
2. **श्रम विभाजन को प्रोत्साहित करना**—उद्योगों का अस्तित्व भी श्रम विभाजन को प्रोत्साहित करता है। औद्योगिक कार्यों की यह विशेषज्ञता श्रमिकों के सीमांत मूल्य में वृद्धि करती है। कृषि क्षेत्र में एक श्रमिक औद्योगिक क्षेत्र के एक श्रमिक से न्यूनतम आय अर्जित करता है, क्योंकि उद्योग कार्य विशेषज्ञता को प्रोत्साहित करता है।

3. **आर्थिक स्थिरता**—यदि किसी देश के पास उचित प्रकार से विकसित उद्योग है तो वह देश आर्थिक स्थिरता को प्राप्त कर सकता है। उद्योग वस्तुओं या सेवाओं के उत्पादन तथा निर्यात के शुद्ध स्तर को बनाये रखने में सहायता करते हैं। यह अनिश्चितताओं की स्थिति को सीमित करता है तथा कच्चे माल तथा तैयार वस्तुओं की मांग में उतार-चढ़ाव को नियन्त्रित करता है।
4. **भुगतान संतुलन में सुधार**—औद्योगिक विकास देश के विदेशी व्यापार की पद्धति में अत्यधिक सुधार करता है तथा विदेशी मुद्रा आय में भी वृद्धि करता है। इसके अतिरिक्त, यह उत्पादों एवं सेवाओं के आयात को कम करता है तथा घरेलू उद्योगों में वृद्धि करने तथा विस्तार करने में सहायता करता है। परिणामस्वरूप, किसी देश के भुगतान संतुलन में सुधार होता है।
5. **तकनीकी प्रगति**—उद्योगों में नई एवं नवीनतम प्रौद्योगिकी की भागीदारी देश को प्रौद्योगिकीय विकास के लिए दीर्घ अवसर प्रदान करती है। यह उत्पादन की मात्रा को अधिकतम करने, उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार करने विपणन का विस्तार करने तथा उत्पादन सम्बन्धी लागतों को न्यूनतम करने में भी सहायता करता है।
6. **विपणनों का विकास**—उद्योग नई विधियों, तकनीकों एवं प्रौद्योगिकियों को अपनाकर विपणनों के विकास में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। वे देश में कच्चे माल तथा तैयार वस्तुओं के लिए विपणन का विस्तार भी करते हैं।
7. **सुरक्षा के लिए प्रावधान**—एक औद्योगिक देश में विभिन्न हथियारों एवं गोला-बारूद का निर्माण करके स्वयं के सुरक्षित क्षेत्रों को स्थापित करने तथा शक्तिशाली बनाने की क्षमता होती है। इस प्रकार एक देश अब अन्य राष्ट्रों पर निर्भर नहीं रहता है तथा उसे किसी भी प्रकार की कोई असफलता या पराजय नहीं होगी।

प्र.8. उद्योग के महत्त्व बताइए।

उत्तर

उद्योग का महत्त्व
(Importance of Industry)

उद्योग का महत्त्व इस प्रकार है—

1. **जीवन स्तर में वृद्धि करता है**—विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों के अस्तित्व ने ऑटोमोबाइल फर्नीचर, वस्त्र, टेलीवीजन, एयर कंडीशनर, आदि जैसे अनेकों गुणवत्ता वाले उत्पादों एवं सेवाओं की पेशकश करके, समग्र रूप से समाज के जीवन स्तर में सुधार किया है। ये उत्पाद जीवन को सरल बनाते हैं तथा नवीनतम प्रौद्योगिकी एवं प्रवृत्तियों के साथ व्यक्तियों को परिचित करते हैं।
2. **राष्ट्र की आय में सहायता**—औद्योगिक विकास सरकार एवं समाज दोनों के लिए लाभदायक है। सरकार उद्योगों से कर प्राप्त करती है, जिससे देश की आय में वृद्धि होती है। इस कर का उपयोग समग्र रूप से समाज के कल्याण के लिए किया जाता है।
3. **राष्ट्र की स्वाधीनता**—यदि किसी अर्थव्यवस्था का दुर्बल औद्योगिक क्षेत्र है तो उसे दूसरे देशों में कम कीमत पर कच्चे माल का निर्यात करना पड़ता है तथा पड़ोसी देशों से होने वाले उच्च मूल्य पर तैयार वस्तुओं का आयात करना पड़ता है जिससे देश दूसरों पर निर्भर हो जाता है। औद्योगीकरण के उदय के साथ कच्चे माल को संसाधित किया जाता है तथा उसी देश में तैयार वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है, जो देश को स्वतन्त्र बनाता है तथा आयात व्ययों को न्यूनतम करके धन की बचत करता है।
4. **आय की तीव्र वृद्धि**—उद्योगों में देश की प्रति व्यक्ति आय में तीव्र वृद्धि प्रदान करने की क्षमता होती है। वे व्यक्तियों को कार्यों के अवसर प्रदान करते हैं। जिससे उत्पादकता के स्तर में वृद्धि होती है। इससे श्रमिकों एवं समाज के आय स्तर में वृद्धि होती है, इस प्रकार देश की राष्ट्रीय आय में योगदान होता है।
5. **रोजगार उत्पन्न करता है**—उद्योग विभिन्न व्यक्तियों को उनकी क्षमताओं के अनुसार अनेकों रोजगार प्रदान करते हैं। इस प्रकार उद्योगों के विकास के साथ, रोजगार में वृद्धि होती है। देश के विभिन्न क्षेत्रों में उद्योग स्थापित करने से बेरोजगारी समाप्त हो सकती है।

TOUCH 'n PASS

6. **संसाधनों का उपयोग**—उद्योग संसाधनों का कुशलतापूर्वक उपयोग करके देश को मूल्यवान तैयार वस्तुओं को उपलब्ध कराने में सक्षम होते हैं। वे संसाधनों को विकसित करने के लिए अपशिष्ट पदार्थों तथा स्क्रैप का उपयोग भी कर सकते हैं।
7. **विदेशी मुद्रा को अर्जित करता है**—मूल्यवान एवं नवीन उत्पादों का उत्पादन एवं निर्यात करके, जिनकी अन्य देशों में भारी मांग है, एक राष्ट्र महत्त्वपूर्ण विदेशी मुद्रा अर्जित कर सकता है। इसलिए, औद्योगिक उत्पादों को प्राथमिक उत्पादों में जोड़ा जाना चाहिए।
8. **कृषि का विकास**—ऐसे कृषि आगत एवं आवश्यकताएँ हैं जिन्हें उद्योगों द्वारा पूरा किया जा सकता है। कृषि उत्पाद जैसे—कीटनाशक, उर्वरक, कृषि मशीनरी, पम्प आदि कृषि विकास के लिए विशेष रूप से निर्मित होते हैं, जो न केवल किसानों की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, बल्कि उनकी उत्पादकता में भी वृद्धि करते हैं।

प्र.9. व्यापार, वाणिज्य तथा उद्योग में अन्तर कीजिए।

उत्तर

व्यापार, वाणिज्य तथा उद्योग में अन्तर
(Differences among Trade, Commerce and Industry)

क्र० सं०	अन्तर का आधार	व्यापार	वाणिज्य	उद्योग
1.	**अर्थ**	'व्यापार' से आशय वस्तुओं का क्रय-विक्रय करना है।	'वाणिज्य' के अन्तर्गत उन समस्त क्रियाओं का समावेश होता है जो माल को उसकी उत्पत्ति के स्थान से उपभोग के स्थान तक ले जाने हेतु उत्पन्न बाधाओं को दूर करने से सम्बन्धित है।	उद्योग से आशय उन समस्त क्रियाओं से लगाया जाता है जो कच्चे माल को पक्के माल के रूप में अथवा विक्रय योग्य अवस्था में लाती है।
2.	**उद्गम एवं विकास**	व्यापार का उद्गम वस्तु विनिमय (Barter) से हुआ था। आधुनिक युग में मुद्रा द्वारा क्रय-विक्रय किया जाता है।	वाणिज्य का उद्गम एवं विकास-व्यापार एवं उद्योगों के निरन्तर विकास के परिणामस्वरूप हुआ।	उद्योगों का उद्गम 18वीं शताब्दी के मध्य में औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप हुआ। उसी समय से इनका निरन्तर विकास हो रहा है।
3.	**क्षेत्र एवं अंग**	व्यापार में केवल वस्तुओं का क्रय-विक्रय ही सम्मिलित किया जाता है। अत: इसका क्षेत्र अत्यन्त सीमित है। देशी व विदेशी व्यापार इसके प्रमुख अंग है।	वाणिज्य में निम्न को सम्मिलित किया जाता है—(क) व्यापार तथा (ख) व्यापार एवं उद्योग के विभिन्न सहायक।	उद्योग के क्षेत्र में साधारणत: चार प्रकार के उद्योगों का समावेश किया जाता है; (i) उत्पत्ति उद्योग, (ii) निष्कर्ष उद्योग, (iii) निर्माणी उद्योग तथा (iv) रचनात्मक उद्योग।
4.	**परस्पर निर्भरता**	'व्यापार' वाणिज्य एवं उद्योग की आधारशिला है। बिना व्यापार के वाणिज्यिक एवं औद्योगिक प्रगति की कल्पना नहीं की जा सकती।	वाणिज्य का विकास उद्योग एवं व्यापार पर निर्भर है।	उद्योग व्यापार एवं वाणिज्य के विकास पर निर्भर होता है।
5.	**प्रकृति**	इसकी प्रकृति अत्यन्त सरल है।	इसकी प्रकृति व्यापार से जटिल है।	इसकी प्रकृति सबसे अधिक जटिल है।
6.	**जोखिम**	इसमें जोखिम निहित होती है।	वाणिज्य में अपेक्षाकृत कम जोखिम रहती है।	उद्योग में सबसे अधिक जोखिम निहित होती है।
7.	**पूँजी की मात्रा**	व्यापार के लिए उद्योग की तुलना में कम पूँजी की आवश्यकता पड़ती है।	वाणिज्य के लिए कम पूँजी की आवश्यकता होती है।	उद्योग की स्थापना के लिए सबसे अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है।

प्र.10. व्यवसाय तथा पेशे के मध्य अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर

व्यवसाय तथा पेशे में अन्तर
(Differences between Business and Profession)

यह सही है कि आधुनिक व्यवसाय में धीरे-धीरे पेशे के सभी महत्त्वपूर्ण लक्षण आते जा रहे हैं तथा इसी कारण कुछ विद्वान व्यवसाय को पेशा ही मानते हैं। किन्तु यदि हम दोनों का विस्तृत रूप से अध्ययन करें तो इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि दोनों में पर्याप्त अन्तर विद्यमान हैं। ये अन्तर निम्नलिखित प्रकार से हैं—

1. **न्यूनतम योग्यता**—एक व्यवसायी के लिए किसी भी विषय की न्यूनतम योग्यता रखना आवश्यक नहीं होता है और न ही किसी निर्धारित परीक्षा को पास करना अनिवार्य है। दूसरी ओर, पेशा चलाने के लिए उस पेशे के लिए निधारित परीक्षा पास करनी पड़ती है और उस विषय में औपचारिक प्रशिक्षण प्राप्त करना अनिवार्य है। उदाहरण के लिए, वकील बनने के लिए कानून का स्नातक होना आवश्यक है।
2. **विशिष्ट ज्ञान**—एक व्यवसायी की सफलता उसकी प्रबन्धकीय कुशलता पर निर्भर करती है। इसलिए उसे अनेक विषयों का सामान्य परन्तु पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए। एक पेशेवर व्यक्ति के लिए एक ही विषय का विशिष्ट ज्ञान एवं प्रवीणता आवश्यक है। व्यवसाय में व्यक्तिगत निपुणता का इतना महत्त्व नहीं है जितना पेशे में।
3. **व्यक्तिगत निपुणता एवं चतुराई की आवश्यकता**—पेशेवर व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत निपुणता तथा चतुराई से सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। उदाहरणार्थ, डॉक्टर को ही लीजिए जब तक डॉक्टर स्वयं मरीज को न देखे तब तक दोनों में सम्बन्ध स्थापित होने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। इसके विपरीत, व्यवसायी या उद्योगपति को व्यक्तिगत निपुणता एवं चतराई की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि वह दूसरों की चतराई एवं निपुणता का प्रयोग करके भी अपने व्यवसाय को सफलतापूर्वक चला सकता है।
4. **जोखिम की मात्रा**—व्यवसाय में पेशे की अपेक्षा अधिक जोखिम विद्यमान है क्योंकि व्यवसाय में अधिक उतार-चढ़ाव होते रहते हैं। एक पेशेवर व्यक्ति का पारिश्रमिक शुल्क (Fee) है जो प्राय: पूर्व-निश्चित होता है। उसके विपरीत व्यवसायों का लाभ (Profit) अनिश्चित और अनियमित है।
5. **पूँजी विनियोग**—पेशे में सफलता मुख्य रूप से व्यक्ति के विशिष्ट प्रशिक्षण एवं अनुभव पर आधारित होती है जबकि व्यवसाय पूँजी पर आश्रित है। इसलिए व्यवसाय में पेशे की अपेक्षा कहीं अधिक पूँजी की आवश्यकता पड़ती है।
6. **सेवाभाव**—पेशे का मुख्य उद्देश्य समाज की सेवा करना है जबकि व्यवसाय का मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना है। एक व्यवसायी की अपेक्षा, एक पेशेवर व्यक्ति को अधिक कड़ी आचार-संहिता (Code of Conduct) का पालन करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, एक वकील या डॉक्टर से विज्ञापन अपेक्षित नहीं है। दूसरी ओर, विज्ञापन व्यवसाय का आधार है।
7. **कार्यक्षेत्र**—एक व्यवसायी जन-समुदाय की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। वह वस्तुओं और सेवाओं दोनों का उत्पादन एवं विक्रय करता है। इसके विपरीत एक पेशेवर व्यक्ति एक विशिष्ट वर्ग की आवश्यकताओं की पूर्ति केवल सेवाओं द्वारा करता है।
8. **संगठन-सदस्यता**—पेशेवर व्यक्ति के लिए उस पेशे से सम्बन्धित प्रतिनिधि संगठन या संस्था का सदस्य होना प्राय: अनिवार्य है। जैसे कि एक चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट बनने के लिए भारतीय चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट्स संस्थान की सदस्यता आवश्यक है। व्यवसाय में भी संस्था होती है किन्तु उस संस्था का सदस्य बनना अनिवार्य नहीं होता।
9. **प्रशिक्षण**—पेशवर व्यक्ति को पेशा प्रारम्भ करने से पूर्व एक निश्चित अवधि के लिए प्रशिक्षण प्राप्त करना आवश्यक होता है। इसके विपरीत व्यवसायी को व्यवसाय प्रारम्भ करने से पूर्व निश्चित अवधि के लिए प्रशिक्षण प्राप्त करना आवश्यक नहीं है। ऐसा व्यक्ति केवल व्यवसाय की कला सीखने के पश्चात् ही, अपना व्यवसाय प्रारम्भ कर सकता है।
10. **कुशलता की माप**—पेशे की कुशलता की माप सामान्यत: उसकी प्रसिद्धि एवं सामाजिक प्रतिष्ठा होती है। इसके विपरीत व्यवसाय की कुशलता का माप सामान्यत: उसका लाभ होता है।
11. **हस्तान्तरणीयता**—पेशे को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरित नहीं किया जा सकता, जबकि एक व्यवसायी अपने व्यवसाय का चाहे जब हस्तान्तरण कर सकता है।

प्र.11. व्यावसायिक लक्ष्य क्या-क्या हो सकते हैं? उल्लेख कीजिए।

उत्तर व्यवसाय की आधारशिला है—विनिमय। प्राचीन काल में जब मनुष्य की आवश्यकताएँ अत्यन्त सीमित थीं, वह स्वयं अपनी जरूरतों को पूरा कर लेता था तथा विनिमय नाममात्र को ही था। परन्तु ज्ञान, विज्ञान एवं व्यावसायिक प्रगति के साथ विनिमय का प्रादुर्भाव हुआ। सभ्य व प्रगतिशील समाज ने उत्पादन, परिवहन, वितरण, आदि सभी क्षेत्रों में क्रान्ति मचा दी। यन्त्रीकरण, श्रम-विभाजन तथा विशिष्टीकरण ने उत्पादक तथा उपभोक्ता के बीच की खाई को चौड़ा कर दिया। उत्पादन की प्रक्रियाएं भी जटिल हो गयीं। इस प्रकार आज हम तेज गति से बदलती हुई सामाजिक व आर्थिक अवधारणाओं के मध्य जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इस पृष्ठभूमि में समाज के विभिन्न अंगों से सम्बन्धित उद्देश्यों का होना एक अनिवार्यता बन गयी है। संक्षेप में, व्यावसायिक लक्ष्य इस प्रकार होने चाहिए—

1. **वस्तुएँ व सेवाएँ प्रदान करके मानवीय आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करना**—भौतिक एवं मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना व्यवसाय का प्रमुख उद्देश्य है। ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की, परन्तु समस्त मानवीय समाज की रोटी, कपड़ा व आवास की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करना व्यवसाय का ही धर्म है।
2. **लाभ कमाना**—उचित लाभ कमाना भी व्यवसाय का लक्ष्य होना चाहिए। C.F. abbott के शब्दों में, "A business without profit is not business more than a pickle in candy."
3. **सेवा-भाव**—लाभ कमाने की भावना के साथ-साथ व्यवसायी में सेवा-भाव भी होना चाहिए अन्यथा ग्राहकों की सन्तुष्टि को ताख में रखकर वह कभी भी सफल नहीं हो सकता।
4. **सामाजिक दायित्व**—व्यवसायी का काम केवल वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन करना ही नहीं होता। इसके अतिरिक्त समाज के प्रति भी उसका दायित्व होता है और इस दृष्टि से उसे विनियोजक, श्रमिक, उपभोक्ता तथा समाज के प्रतिनिधि अर्थात् सरकार के हितों का पूरा ध्यान रखना चाहिए।
5. **अस्तित्व एवं विकास**—अपने वर्तमान अस्तित्व को बनाए रखने के साथ-साथ व्यवसायी को भावी विकास का भी ध्यान रखना चाहिए। व्यावसायिक लक्ष्य इस प्रकार निर्धारित किए जाएं जिससे संस्था एवं राष्ट्र सभी लाभान्वित व विकसित होते रहें। इस दृष्टि से उत्पादन की लागत कम होनी चाहिए। शोध व अनुसन्धान को प्रोत्साहन मिलना चाहिए।

प्र.12. "व्यवसाय का प्रमुख उद्देश्य समाज की सेवा करना है।" विवेचना कीजिए।

उत्तर यहाँ यह स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि व्यावसायिक क्रियाओं का उद्देश्य क्या होना चाहिए? इसका सीधा-सा उत्तर है कि लाभ एवं सेवा भावनाओं के मध्य समन्वय की आवश्यकता है। यद्यपि प्रत्येक व्यवसाय लाभ के द्वारा प्रेरित होता है, एवं लाभोपार्जन ही उसका प्रमुख उद्देश्य है, किन्तु व्यावसायिक प्रबन्ध को यह सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि उसका सामाजिक औचित्य उसके द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली सेवाओं के द्वारा ही प्रमाणित होगा। उर्विक (Urwick) ने तो स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि "मुद्रा के पीछे भागना व्यवसाय नहीं है। व्यवसाय का कर्त्तव्य है उपभोग के लिए उत्पादन करना, न कि मुद्रा या सट्टे के लिए। उपभोग के लिए उत्पत्ति करने का आशय यह है कि उत्पादित वस्तु की किस्म श्रेष्ठ होनी चाहिए एवं उसका मूल्य कम होना चाहिए तथा वस्तु ऐसी होनी चाहिए कि जो जनसाधारण की सेवा करे, न कि केवल उत्पादकों की। लाभ उसी प्रकार से किसी व्यापार का उद्देश्य नहीं हो सकता, जिस प्रकार से कि शर्त घुड़दौड़ का अथवा रन बनाना क्रिकेट का या भोजन करना जीवन का उद्देश्य नहीं है।" जिस प्रकार विवेकशील व्यक्ति केवल भोजन करने के लिए ही नहीं जीते, उसी प्रकार श्रेष्ठ व्यवसायी भी केवल लाभ कमाने के लिए व्यवसाय नहीं करते। जिस प्रकार अत्यधिक भोजन करना स्वास्थ्य एवं कार्यक्षमता की दृष्टि से हानिकारक होता है तथा भोजन की एक न्यूनतम मात्रा से जीवन व कार्यक्षमता दोनों ही बने रहते हैं, उसी प्रकार व्यवसाय के अस्तित्व व विकास के लिए लाभ की एक उचित सीमा ही होनी चाहिए, व्यवसाय का एकमात्र उद्देश्य नहीं।

व्यावसायिक प्रशासन एवं प्रबन्ध का प्रमुख उद्देश्य समाज सेवा तथा समाज में सुख, सन्तोष एवं शान्ति का प्रसार करना होता है और उसी ध्येय से उद्योगपतियों को कार्य करना चाहिए, तभी राष्ट्र का कल्याण होगा। अमरीकन फोर्ड मोटर कम्पनी के व्यवस्थापक हेनरी फोर्ड के अनुसार, "किसी भी व्यापारी का सर्वप्रथम उद्देश्य 'सेवा' होना चाहिए और दूसरा लाभ" इस सिद्धान्त का प्रयोग फोर्ड ने स्वयं अपने कारखाने में किया। फोर्ड कम्पनी की गाड़ियों पर केवल नाममात्र को लाभ रखा गया और वह भी इस आश्वासन के साथ कि यदि कोई गाड़ी खराब हो जाए, तो उसका सुधार नि:शुल्क किया जाएगा। फोर्ड एजेन्सियों में आज भी इस प्रकार की व्यवस्था है। इससे क्रेताओं को अटूट विश्वास हो जाता है और वस्तुओं का विक्रय भी सुविधा से होता रहता है। फोर्ड के कारखाने में एक पृथक अनुसन्धान विभाग की स्थापना की गयी, जिसका कार्य गाड़ी के नमूने में लोगों की रुचि

तथा समय अनुसार परिवर्तन करना है। इस सेवा-भाव के कारण ही हेनरी फोर्ड एक साधारण व्यवसायी से विश्व का प्रमुख उद्योगपति बन गया।

सहकारी, जन-सेवा तथा राजकीय संस्थाओं का प्रमुख उद्देश्य 'सेवा-भाव' ही होना चाहिए, न कि लाभ कमाना। इन संस्थाओं में व्यक्तिगत लाभ की भावना का स्थान जन-सेवा ले लेती है, क्योंकि राष्ट्रीय या राष्ट्राधिकृत उद्योगों का प्रमुख उद्देश्य जनकल्याण होता है। राजकीय उद्योग अन्य उद्योगों की भाँति विशिष्ट हितों के रक्षार्थ ही नहीं (जैसे—मजदूरों, विनियोजकों और उपभोक्ताओं के हित) वरन् देश के समस्त नागरिकों के, जिनमें पुरुष, स्त्री व बच्चे भी सम्मिलित होते हैं, लाभार्थ चलाए जाते हैं। राजकीय उद्योगों की दशा में सेवा-भाव को प्रधानता दी जाती है और इसी हेतु कभी-कभी इन उद्योगों के द्वारा निर्मित पदार्थ उत्पादन-व्यय से भी कम मूल्य पर बेचे जाते हैं। हां, यह अवश्य है कि राजकीय संस्थाओं का घाटा अतिरिक्त करारोपण द्वारा पूरा किया जाता है, व्यक्तिगत संस्थाओं के लिए यह सम्भव नहीं होता।

प्र.13. व्यावसायिक संगठन की प्रकृति की विवेचना कीजिए।

उत्तर

व्यावसायिक संगठन की प्रकृति
(Nature of Business Organisation)

व्यावसायिक संगठन की प्रकृति के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इसमें विज्ञान तथा कला दोनों की विशेषताएँ विद्यमान हैं। इसको स्पष्ट करने के उद्देश्य से इसका तीन भागों में अध्ययन किया गया है—

1. **व्यावसायिक संगठन विज्ञान के रूप में**—व्यावसायिक संगठन को विज्ञान के रूप में परिभाषित करने के लिए विज्ञान के अर्थ की जानकारी जरूरी है। विज्ञान से तात्पर्य किसी विषय के व्यवस्थित व क्रमबद्ध ज्ञान से होता है जो कारण तथा परिणाम में सम्बन्ध स्थापित करता है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि व्यावसायिक संगठन एक विज्ञान है। क्योंकि विज्ञान की भाँति ही इसमें भी प्रयोगों पर आधारित व्यवस्थित व क्रमबद्ध सिद्धान्त होते हैं जो कारण तथा परिणाम में स्पष्ट सम्बन्ध स्थापित करते हैं। उदाहरण के लिए, संगठन का एक सिद्धान्त श्रम-विभाजन है। यदि इस सिद्धान्त का पालन करते हुए उत्पादन किया जाये तो निश्चित रूप से अधिक व अच्छा उत्पादन कम लागत व कम समय में प्राप्त किया जा सकता है।
2. **व्यावसायिक संगठन कला के रूप में**—कला से अभिप्राय किसी कार्य को श्रेष्ठतम तरीके से करना है अर्थात् कला हमें बताती है कि निर्धारित उद्देश्यों को सफलतापूर्वक प्राप्त करने के लिए विभिन्न क्रियाओं को व्यवस्थित ढंग से किस प्रकार किया जाए। इस दृष्टि से व्यावसायिक संगठन को भी कला कहा जा सकता है। क्योंकि उसके अन्तर्गत केवल सिद्धान्तों का प्रतिपादन ही नहीं किया जाता बल्कि उनके श्रेष्ठतम प्रयोग का मार्ग भी बताया जाता है। उदाहरण के लिए, व्यावसायिक संगठन में श्रम-विभाजन के सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देने का तरीका भी बताया गया है। अर्थात् कम लागत पर अधिक उत्पादन के लिए कर्मचारियों व श्रमिकों को उनकी योग्यतानुसार कार्य का बंटवारा करना पड़ता है व उनको प्रशिक्षित किया जाता है, परिणामस्वरूप वे कम समय में अधिक काम करने लगते हैं।
3. **व्यावसायिक संगठन विज्ञान तथा कला दोनों के रूप में**—विज्ञान तथा कला दोनों का अर्थ 'भौतिक व रसायन शास्त्र' तथा व्यावसायिक संगठन के सन्दर्भ में समझ लेने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि व्यावसायिक संगठन विज्ञान एवं कला दोनों है। उदाहरण के लिए, व्यावसायिक संगठन में श्रम-विभाजन के सिद्धान्त का प्रतिपादन करना विज्ञान है तथा इस सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देने का ढंग प्रस्तुत करना कला है। इस आधार पर व्यावसायिक संगठन में विज्ञान व कला दोनों की विशेषता विद्यमान है। यहाँ पर यह समझ लेना आवश्यक है कि व्यावसायिक संगठन के सिद्धान्तों की सफलता मनुष्य के आचरण पर आधारित है और मनुष्य का व्यवहार परिवर्तित होता रहता है। अत: व्यावसायिक संगठन के सिद्धान्त इतने खरे व सर्वव्यापक नहीं हो सकते जितने कि भौतिक व रसायन शास्त्र के सिद्धान्त । उदाहरण के लिए, श्रम-विभाजन के सिद्धान्त का प्रतिपादन करना विज्ञान है तथा इसके प्रयोग की विधि कला। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन इस सिद्धान्त के आधार पर व्यक्तियों को जब एक ही कार्य बार-बार सौंपा जायेगा तो वह उससे ऊबने लगते हैं और धीरे-धीरे उनकी कार्यकुशलता में कमी आ जाती है। इस प्रकार मनुष्य के व्यवहार पर आधारित होने के कारण यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इस सिद्धान्त का पालन करने पर निर्धारित उद्देश्य को प्रभावपूर्ण तरीके से प्राप्त कर ही लिया जायेगा।

प्र.14. अर्थव्यवस्था के विकास में व्यवसाय की भूमिका की व्याख्या कीजिए।

उत्तर

व्यवसाय की भूमिका
(Role of Business)

व्यवसाय अर्थव्यवस्था के विकास में एक प्रमुख भूमिका निभाता है। अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में, आर्थिक विकास में व्यवसाय द्वारा किए गए योगदान निम्नलिखित हैं—

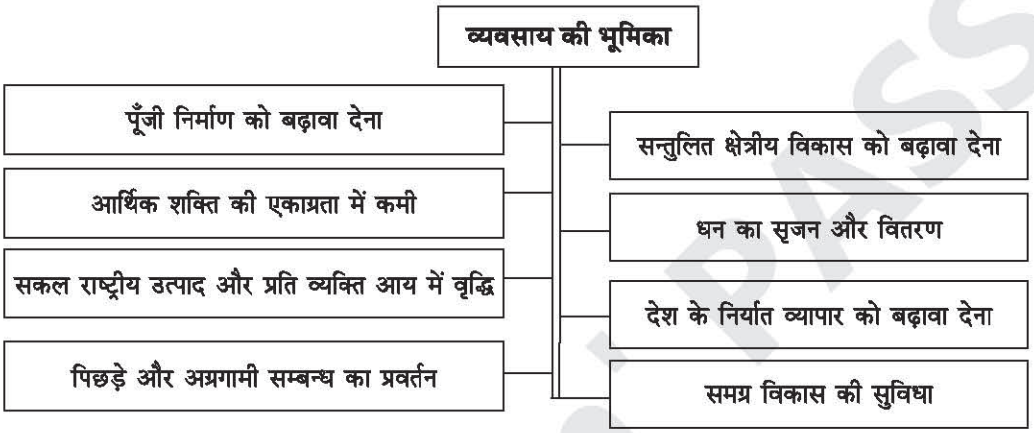

1. **पूँजी निर्माण को बढ़ावा देना**—एक व्यवसाय पूँजी के निर्माण को बढ़ावा देता है। पूँजी उत्पन्न करने के लिए ग्राहकों की निष्क्रिय बचत बाजार में एकत्रित की जाती है। उधार या स्वयं की पूँजी का उपयोग उद्यमों को स्थापित करने के लिए व्यवसायी द्वारा किया जाता है। ये सभी गतिविधियाँ धन के सृजन के साथ-साथ मूल्यवर्धन में भी सहायता करती हैं जिससे राष्ट्र का आर्थिक विकास होता है।
2. **सन्तुलित क्षेत्रीय विकास को बढ़ावा देना**—व्यापार द्वारा एक सन्तुलित क्षेत्रीय विकास को बढ़ावा दिया जाता है। उन्होंने विभिन्न पिछड़े और अविकसित क्षेत्रों में विभिन्न उद्योगों या उद्यमों की स्थापना की ताकि उनके मध्य क्षेत्रीय असन्तुलन को समाप्त किया जा सके। पिछड़े क्षेत्रों में ऐसे उद्यमों की वृद्धि के साथ, सार्वजनिक लाभ, जैसे—शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, सड़क, आदि में भी सुधार होता है।
3. **आर्थिक शक्ति की एकाग्रता में कमी**—कुछ क्षेत्रों में सीमित औद्योगिक गतिविधियों के कारण, देश का आर्थिक विकास सीमित व्यवसाय पर निर्भर करता है। इसलिए, आर्थिक शक्ति इन उद्योगों या व्यापार के लिए केन्द्रित रहती है। नए व्यवसाय की स्थापना इस प्रकार के एकाधिकार को रोकने में सहायता करती है, और इस प्रकार, आर्थिक शक्ति की एकाग्रता को कम करती है।
4. **धन का सृजन और वितरण**—व्यवसाय भी विभिन्न गतिविधियों और प्रक्रियाओं को शामिल करके धन के सृजन और वितरण के लिए उत्तरदायी होते हैं। इस प्रकार के धन और आय को विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों के लोगों को आवंटित किया जाता है जिससे समाज के विभिन्न वर्गों को लाभ मिल सके। अन्ततः यह अर्थव्यवस्था का विकास करता है।
5. **सकल राष्ट्रीय उत्पाद और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि**—व्यवसाय बाजार में विभिन्न प्रकार के उत्पादों को विकसित करके और विभिन्न हितधारकों के लिए आय और धन का सृजन करके देश में सकल राष्ट्रीय उत्पाद और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि करते हैं, यह एक अनुक्रमिक प्रक्रिया है जिसमें व्यवसाय पहले उचित व्यावसायिक अवसरों की पहचान करता है, फिर यह कुछ प्रभावी उत्पादों और सेवाओं का उत्पादन करने के लिए पूँजी और अन्य संसाधनों का प्रभावी विधि से उपयोग करता है, जिससे धन और आय का सृजन होता है। यह अर्थव्यवस्था के सकल राष्ट्रीय उत्पाद और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि का कारण बनता है।
6. **देश के निर्यात व्यापार को बढ़ावा देना**—निर्यात व्यापार आर्थिक विकास का एक महत्त्वपूर्ण कारक है। व्यवसाय देश के निर्यात व्यापार को बढ़ावा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। व्यावसायिक संस्थाओं द्वारा उत्पादित वस्तुओं को अन्य देशों को निर्यात किया जाता है जो बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा को स्वदेश में लाते हैं। ये अर्जित किए गए लाभ बकाया राशि

TOUCH n PASS

को सन्तुलित करने और भुगतान सन्तुलन बनाने में सहायता करती है। इस प्रकार, व्यवसाय आयात प्रतिस्थापन और निर्यात सवंर्द्धन सुनिश्चित करते हैं, जिससे अंततः राष्ट्र का आर्थिक विकास होता है।

7. **पिछड़े और अग्रगामी सम्बन्ध का प्रवर्तन**—व्यवसाय की एक और भूमिका इसके संचालन में पिछड़े और अग्रगामी सम्बन्ध को प्रारम्भ करना है। जिस प्रकार से कच्चे सामग्री और किसी व्यवसाय के अन्य वस्तुओं को अन्य व्यवसायों या उद्योगों से प्राप्त किया जाता है, वह पिछड़े सम्बन्ध का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि व्यवसाय के अन्तिम उत्पादों को विभिन्न व्यवसाय या उद्योगों को उनके उपयोग के लिए पेश करना आगे की कड़ी का प्रतिनिधित्व करता है। ऐसे में ये पिछड़े और आगे के सम्पर्क देश के आर्थिक विकास में योगदान करते हैं।
8. **समग्र विकास की सुविधा**—व्यवसाय एक उत्प्रेरक के रूप में कार्य करता है जो शृंखला प्रतिक्रिया के काल परिवर्तन की ओर जाता है। व्यवसायों के स्थापित होते ही औद्योगीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। स्थापित विभिन्न इकाइयाँ एक दूसरे के उत्पादन की माँग उत्पन्न करती है जिससे आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अधिक इकाइयों की स्थापना की जाती है। इसलिए, इन माँगों को पूरा करने के लिए नई संस्थाओं की बढ़ती माँगों और स्थापना से एक पूरे क्षेत्र का समग्र विकास होता है। अन्ततः विभिन्न क्षेत्रों के इस समग्र विकास से देश में एक उत्साहपूर्ण वातावरण बनता है जो इसके आर्थिक विकास का कारण बनता है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. व्यवसाय का अर्थ एवं परिभाषा बतलाइए। व्यवसाय के विकास के क्या चरण हैं? व्यवसाय की विशेषताएँ भी लिखिए।

उत्तर

व्यवसाय का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definition of Business)

व्यवसाय को लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से ग्राहकों को वस्तुओं और सेवाएँ प्रदान करने के लिए व्यापार में शामिल एक संघ के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। इसे एक फर्म या उपक्रम के रूप में भी जाना जाता है। एक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के लिए, व्यापार मुख्य कारक है। इसमें अधिकांश व्यवसायों का स्वामित्व और प्रबन्धन निजी रूप से किया जाता है।

सरल शब्दों में, एक व्यवसाय को एक कम्पनी के रूप में परिभाषित किया जा सकता है (हालांकि कम्पनी शब्द का एक विशेष विवरण है) जिसे कुछ स्वामित्व वाले लोगों के समूह द्वारा चलाया जाता है।

वस्तुतः 'व्यवसाय' शब्द व्यस्तता जैसा प्रतीत होता है जिसका अर्थ है व्यस्त होना। इसलिए, व्यवसाय को एक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जहाँ एक व्यक्ति कुछ गतिविधियों (जैसे—उत्पादन, क्रय, वितरण, विपणन, आदि) में उचित लाभ अर्जित करने के साथ-साथ अपनी आजीविका कमाने में व्यस्त होते हैं।

दूसरे शब्दों में, व्यापार उन आर्थिक गतिविधियों के समूह को दर्शाता है जो लाभ अर्जित करने की ओर केन्द्रित होते हैं और इस प्रकार, धन में वृद्धि करते हैं।

धन का अधिग्रहण निरन्तर वस्तुओं या सेवाओं के विनिर्माण और बिक्री द्वारा किया जाता है और यह जोखिम और अनिश्चितता के कारकों से भी जुड़ा हुआ है। व्यवसाय एक नियोजित दृष्टिकोण है जिसका उद्देश्य ग्राहकों की आवश्यकताओं और उनकी इच्छित वस्तुओं और सेवाओं को प्रदान करके उन्हें सन्तुष्ट करना है।

व्यापार शब्द, को एक इकाई के रूप में भी संदर्भित किया जा सकता है। जो ग्राहकों को उत्पादों एवं सेवाओं की प्रस्तुति करने में शामिल होती है।

आर्थर एम० वीमर के अनुसार, "व्यवसाय वाणिज्य और उद्योग का वह जटिल क्षेत्र है जिसमें वस्तुओं और सेवाओं का निर्माण तथा वितरण कानूनों एवं विनियमों के ढाँचे के अन्दर किया जाता है।"

लुईस एच० हनी के अनुसार, "व्यवसाय को, वस्तुओं के क्रय तथा विक्रय के माध्यम से, धन के उत्पादन या प्राप्त करने की दिशा में निर्देशित मानव गतिविधि के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"

मुसेलमैन और ह्यूजेस के अनुसार, "व्यापार वस्तुओं और सेवाओं के साथ उपभोक्ता की आपूर्ति के लिए उद्यमों के संगठित प्रयासों का प्रतिनिधित्व करता है।"

व्यवसाय के विकास के चरण
(Stages of Development of Business)

निम्नलिखित चरणों का अध्ययन करके व्यवसाय के विकास को सुबोधित किया जा सकता है—

1. **सामंतवाद**—यह मध्यकालीन यूरोप में 9वीं शताब्दी में आरम्भ हुआ और 15वीं शताब्दी तक जारी रहा। यह मूल रूप से सीमा शुल्क (सैन्य एवं कानूनी) का एक समूह था। व्यापक रूप में यह सम्बन्धों के आस-पास समाज की संरचना करने की एक प्रणाली थी (वे सम्बन्ध जो परिवर्तनस्वरूप श्रम या सेवा प्राप्त करने के लिए भूमि धारण करके विकसित किए गए थे)। इस अवधि के दौरान, सभी सम्पत्ति अधिकारों को कुलीन वर्ग के शासक वर्ग द्वारा नियन्त्रित किया गया था। अधिकांश समय, भूमि पर बलपूर्वक अधिकार किया जाता था। अधिकतम भूमि स्वामित्व वाला व्यक्ति सर्वाधिक शक्तिशाली माना जाता था।
2. **व्यापारिकता**—व्यापारिकता की समय-सीमा 16वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी के अन्त तक थी और इसमें पश्चिमी यूरोपीय आर्थिक नीति का शासन था। जिस व्यवसाय में उत्पाद के मूल्य के अन्तर को विपणनों एवं देशों में व्यापार करके उसको हतोत्साहित किया जा सकता है, उसे व्यापारिकता कहा जाता है। इसमें बैंकर और व्यापारी भी स्वयं के व्यापार के माध्यम से अर्जित धन का उपयोग भूमि अधिग्रहण के लिए कर सकते हैं।
3. **पूँजीवाद**—पूँजीवाद एक आर्थिक व्यवस्था है जहाँ व्यापार, उद्योग और उत्पादन के साधन पूर्ण रूप से व्यक्तिगत स्वामित्व में होते हैं। इसे मुक्त विपणन अर्थव्यवस्था या पूँजीवाद अर्थव्यवस्था भी कहा जा सकता है। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में सरकार का किसी भी प्रकार का कोई हस्ताक्षेप नहीं होता है। पूँजीवाद अर्थव्यवस्था का उत्पादन कार्य पूर्णरूप से उद्योगों एवं फर्मों के द्वारा किया जाता है। उत्पादन के साधन, निर्णय लेने की प्रक्रिया एवं बाजार में वस्तुओं तथा सेवाओं की आपूर्ति के लिए संचालित विपणन क्रियाविधि जैसी गतिविधियाँ व्यक्तिगत स्वामित्व में होती हैं।
4. **वाणिज्य**—पूँजीवाद के पीछे की प्रेरक शक्ति वाणिज्य है। वाणिज्य मुख्य रूप से सेवाओं एवं वस्तुओं के आदान-प्रदान से सम्बन्धित है। इसमें उन सभी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष गतिविधियों को शामिल किया गया है जो इस प्रकार के आदान-प्रदान की सुविधा प्रदान करते हैं। व्यवसाय के वितरण पहलू का वाणिज्य द्वारा निपटान किया जाता है। चूंकि, व्यवसाय को ऐसी वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन करने की आवश्यकता होती है जिसका अन्तिम उपभोक्ताओं द्वारा उपभोग किया जाए, इसके लिए वितरण कार्य आवश्यक हो जाता है। उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं के वितरण से निपटने के लिए व्यवसाय वाणिज्य पर निर्भर करता है, जो क्रेताओं एवं विक्रेताओं के मध्य सुचारू रूप से लेनदेन की सुविधा प्रदान करता है।
5. **सम्पत्ति के अधिकार**—सम्पत्ति के अधिकार का उपयोग मूल्यवान संसाधनों को सुरक्षित करने के लिए किया जाता है जैसे कि भूमि, स्वयं के मजदूर, बैंक खातों और स्टॉक, के रूप में वित्तीय पूँजी का स्वामित्व पेटेंट तथा कॉपीराइट आदि। यह सम्पत्ति अधिकार सामंतवाद के समय अनुपस्थित थे, वे व्यापारिकता के दिनों में उभरने लगे और अंततः पूँजीवाद के तहत स्थापित हुए।
6. **औद्योगिक क्रान्ति**—नवीन या आधुनिक निर्माण प्रक्रियाओं के विकास को औद्योगिक क्रान्ति कहा जाता है। यह 1760 में आरम्भ हुआ तथा 1820-1840 तक जारी रहा। इस दौरान वाष्पीय शक्ति के आने से समाज का औद्योगीकरण होने लगा। परिवहन के अधिक कुशल साधन; जैसे—रेलवे एवं नहरें, तथा विभिन्न विनिर्माण उद्योग का भाप इंजन की शक्ति से निर्माण किया गया। 19वीं सदी दूसरी औद्योगिक क्रान्ति का समय था। इसमें भाप से चलने वाले जहाज, आन्तरिक दहन इंजन, रेलवे तथा विद्युत उत्पादन प्रारम्भ किया गया था। 20वीं सदी में उद्योगों को इंटरनेट एवं सूचना प्रौद्योगिकी की सहायता से वर्ल्ड वाइड वेब से जोड़ा गया था। इसके परिणामस्वरूप विश्व स्तर पर उद्योगों को पुनः प्राप्त किया गया।

व्यवसाय की विशेषताएँ
(Characteristics of Business)

निम्नलिखित बिन्दु व्यवसाय की विशेषताओं का वर्णन करते हैं—

1. **व्यवसाय एक सामाजिक संस्था है**—व्यवसाय को एक सामाजिक संस्था (जैसे धर्म, सरकार, कॉलेज, कृषि, परिवार, आदि) के रूप में वर्णित किया जा सकता है जो एक सामान्य उद्देश्य अर्थात, समाज के सामाजिक कल्याण को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति के साथ-साथ समूह कार्यों का उपयोग करता है।

2. **वस्तुओं और सेवाओं में लेन-देन**—सभी व्यापारिक संस्थाएँ अन्तिम ग्राहकों को वस्तुएँ एवं सेवाएँ प्रदान करने में शामिल हैं। व्यवसाय उन्हें अन्य निर्माताओं से या अपने स्वयं के उत्पादन प्रणालियों के माध्यम से क्रय कर सकते हैं।
3. **बिक्री, स्थानान्तरण या विनिमय**—व्यवसाय की मुख्य विशेषता वस्तुओं और सेवाओं के क्रय व विक्रय (विनिमय) में निहित है। उदाहरण के लिए—जब एक गृहिणी अपने बच्चे के लिए ऊनी स्वेटर तैयार करती है तो इसे व्यवसाय नहीं माना जाता है। हालाँकि, यदि स्वेटर को बाहरी लोगों या ग्राहकों को बेचने के लिए तैयार किया जाता है, तो अब इसे व्यवसाय कहा जाता है।
4. **व्यवहार में नियमितता**—व्यवहार में नियमितता व्यवसाय की मुख्य विशेषता है। नियमित आधार पर की गई एक आर्थिक गतिविधि को व्यवसाय माना जाता है। उदाहरण के लिए–धन के बदले में पुराने अखबारों की बिक्री जैसे साधारण लेन–देन कोई व्यवसाय नहीं है, जबकि, हिंदुस्तान टाइम्स लिमिटेड, जब लाभ अर्जित करने के लिए दैनिक आधार पर समाचार पत्रों की आपूर्ति करता है, तो यह एक व्यवसाय है।
5. **संगठन एवं प्रबन्धन**—संगठन और प्रबन्धन व्यवसाय के अस्तित्व के लिए दो बुनियादी स्तम्भ हैं। एक व्यवसाय को संगठन कहा जाता है क्योंकि व्यवसाय के विभिन्न तत्त्व संगठित रूप में एक दूसरे के साथ सम्बन्धित होते हैं। लोगों को प्रभावी ढंग से उपयोग करना ताकि व्यवसाय के दैनिक कार्यों को पूरा किया जा सके, प्रबन्धन कहलाता है। इसलिए, व्यवसाय को विकसित और पोषित करने के लिए संगठन और प्रबन्धन को बनाए रखना बहुत महत्त्वपूर्ण है।
6. **पूँजी, निवेश और वित्त**—पूँजी, निवेश और वित्त व्यावसायिक गतिविधियों की विशेषता है। पूँजी व्यवसाय में सबसे आवश्यक घटक होती है जिसके बिना व्यापार चक्र का कोई अस्तित्त्व नहीं होता है। आवर्ती निवेश एवं व्ययों को वित्त करने के लिए व्यवसाय में स्थायी सम्पत्तियाँ क्रय की जाती हैं। व्यवसाय में दो प्रकार की पूँजी अर्थात् स्थायी एवं कार्यशील पूँजी का प्रयोग किया जाता है।
7. **जोखिम उठाना**—विभिन्न जोखिम और अनिश्चितताएँ व्यवसाय से जुड़ी होती हैं। व्यवसाय में जोखिम उठाना और अनिश्चित परिस्थितियों का सामना करना आवश्यक है। ऐसी परिस्थितियों में लाभ व्यवसाय के लिए एक लाभ के रूप में आता है। कुशल प्रबन्धन और पूर्वानुमान द्वारा इन जोखिमों और अनिश्चितताओं को कम किया जा सकता है।
8. **पूर्वानुमान लगाना**—व्यवसाय की एक और विशेषता पूर्वानुमान लगाना है। पूर्वानुमान भविष्यवादी होने तथा भविष्य की घटनाओं की भविष्यवाणी करने की क्षमता को दर्शाता है। यदि यह अधिक पूर्णता के साथ पूर्वानुमान लगा सकता है तो व्यवसाय अधिक सफल होगा। विभिन्न व्यापारिक पहलुओं जैसे—आर्थिक स्थितियों, क्रय रुझान, विदेशी सम्बन्धों, नीतियों आदि के समाधान के लिए, व्यापार पूर्वानुमान पर निर्भर करता है।
9. **अधिशेष का निर्माण**—अधिशेष का निर्माण सभी प्रकार के व्यवसाय की प्रमुख विशेषता है चाहे वह बडे, छोटे या मध्यम, निजी या सरकारी किसी भी प्रकार के हों। इसमें उत्पन्न अधिशेष का स्तर व्यवसाय की दक्षता निर्धारित करता है। विभिन्न प्रकार के व्यवसाय विभिन्न स्तर के सम्बन्धित अधिशेष उत्पन्न करता है।
10. **मूल्यों और उपयोगिताओं की उत्पत्ति**—प्रत्येक व्यावसायिक इकाई अपने उत्पादों के लिए उपयोगिताओं का निर्माण करती है। इन उपयोगिताओं के अनुसार उत्पादों के मूल्यों के निर्धारण के परिणामस्वरूप राजस्व उत्पन्न होता है। इसलिए, व्यवसाय अपने उत्पादों और सेवाओं के लिए मूल्यों और उपयोगिताओं को उत्पन्न करते हैं।
11. **आवर्ती एवं सतत गतिविधियाँ**—व्यवसाय दोहराव वाली गतिविधियों की एक सतत् प्रक्रिया है। एक व्यवसाय से अपेक्षा की जाती है कि वह अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अपनी विशेष आवर्ती गतिविधियों के साथ लम्बे समय तक चलने की आशा की जाती है।
12. **हस्तान्तरणीयता और उत्तराधिकार**—हस्तांतरणीयता और उत्तराधिकार को भी एक व्यवसाय की विशेषता के रूप में माना जाता है। एक व्यवसाय का स्वामी व्यवसाय को अन्य व्यक्ति या संस्था को स्थानान्तरित कर सकता है, या परिवार का उत्तराधिकारी स्वामित्व प्राप्त कर सकता है। व्यवसाय के स्वामित्व में परिवर्तन होने के बावजूद, भी यह तब तक सामान्य रूप से जारी रहता है, जब तक कि स्वामी द्वारा इसे समाप्त नहीं किया जाता है।
13. **लाभ का उद्देश्य**—लाभ का उद्देश्य भी व्यवसाय की एक विशेषता है। किसी व्यवसाय की सफलता को उसके लाभ सृजन की क्षमता के सन्दर्भ में मापा जाता है। इसलिए, सभी प्रकार के व्यवसाय विशेषकर निजी संगठनों के लिए लाभ एक

सामान्य एवं आदर्श वाक्य है। हालाँकि सरकारी उपक्रमों का मुख्य उद्देश्य लाभ अर्जित करना नहीं है, फिर भी आज के समय में वे अपने अस्तित्व के लिए लाभ अर्जित करने की सम्भावना रखते हैं।

14. **रचनात्मकता**—आज की प्रतिस्पर्धात्मक विश्व में, प्रत्येक व्यवसाय अपने उत्पादों और सेवाओं में रचनात्मकता के लिए विशेष रूप से उद्यमियों को लक्षित करता है। इनके लिए रचनात्मकता सबसे अनिवार्य है। नए उत्पाद लाना या कुछ रचनात्मक बदलाव लाकर पहले से मौजूद व्यवसाय को कॉपी करना व्यवसाय में रचनात्मकता के रूप में जाना जाता है।

प्र.2. व्यवसाय के महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर

व्यवसाय का महत्त्व
(Importance of Business)

आज दुनिया के देशों के बीच आर्थिक प्रगति की जो दौड़ हो रही है उसमें वे राष्ट्र ही सबसे आगे चल रहे हैं—जहाँ पर व्यवसाय यानी कि उद्योग-धन्धे, व्यापार एवं सेवाएँ विकसित अवस्था में हैं। जिन देशों का व्यवसाय पिछड़ा हुआ है, वे आर्थिक प्रगति की दौड में बहुत पिछड़े हुए माने जाते हैं। जापान, दक्षिण कोरिया, हांगकांग, सिंगापुर, ताईवान जैसे अनेक छोटे-छोटे देश इस बात का उदाहरण हैं कि प्राकृतिक सम्पदा न होते हए भी कोई देश व्यवसाय के बल पर दुनिया के किसी भी बड़े से बड़े देश से आर्थिक मुकाबला कर सकता है।

व्यवसाय का विकास न केवल आर्थिक विकास को प्रभावित करता है, वरन् समाज की संस्कृति, सभ्यता एवं सामाजिक संगठन सभी व्यवसाय के विकास से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े रहते हैं। व्यवसाय लोगों को जीविकोपार्जन का साधन तो प्रदान करता ही है, इससे अर्थव्यवस्था के दूसरे क्षेत्र जैसे कृषि आदि भी लाभान्वित होते हैं।

भारत और अन्य विकासशील राष्ट्रों में निर्धनता, पिछड़ापन, बेरोजगारी निम्न जीवन-स्तर की जो भीषण समस्याएँ समूचे आर्थिक विकास को संकटग्रस्त किये हुए हैं, व्यवसाय का विकास ही उनसे मुक्ति का एक कारगर उपाय है **हरबर्ट केसन** का यह कथन इस सम्बन्ध में उचित जान पड़ता है कि, "प्रेम व स्नेह के बाद व्यवसाय ही विश्व की सबसे महान व श्रेष्ठतम घटना है।"

स्टार सेविच के अनुसार, "समृद्ध व्यवसाय से ही समृद्ध राष्ट्र का निर्माण होता है।" व्यवसाय का महत्त्व निम्नलिखित बिन्दुओं से परिलक्षित होता है—

1. **तीव्र एवं सन्तुलित आर्थिक विकास**—व्यवसाय के द्वारा अर्थव्यवस्था का जो तीव्र विकास होता है उससे रोजगार के साधनों सकल राष्ट्रीय उत्पादन एवं राष्ट्रीय आय में भी बढ़ोतरी होती है। आर्थिक विकास की गति तीव्र होने से अपेक्षाकृत पिछड़े क्षेत्रों का विकास भी होने लगता है। यह सन्तुलित आर्थिक विकास के लिए हितकारी होता है।
2. **जीवन-स्तर में सुधार**—किसी देश के नागरिकों का जीवन स्तर उन्नत करने के लिए श्रेष्ठ किस्म की वस्तुओं और सेवाओं की आवश्यकता होती है। व्यवसाय ऐसी वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन तथा वितरण करके जीवन स्तर को सुधारने में मदद करता है। **ह्वीलर के अनुसार**—"व्यवसाय उच्च जीवन-स्तर तथा आर्थिक शक्ति प्रदान करता है।" व्यवसाय के विकास से विभिन्न स्थानों पर नगरों एवं मण्डियों का विकास हुआ है। साथ ही साथ व्यावसायिक इकाइयों की स्थापना को प्रोत्साहित करने के लिए यातायात एवं सन्देशवाहन के साधनों, जल-आपूर्ति विद्युत-आपूर्ति आदि सेवाओं का भी विस्तार हुआ है जिनका लाभ नागरिकों को प्राप्त हुआ है। यही नहीं यह व्यवसाय की देन है कि आज हम अपने घर पर बैठे-बैठे आधुनिकतम सुख-सुविधा का प्रचुर मात्रा में उपभोग एवं उपयोग कर सकते हैं।
3. **विश्व अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण**—आधुनिक युग में आर्थिक समृद्धि के लिए राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था (National Economy) का विश्व अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण आवश्यक होता है। व्यवसाय के द्वारा यह एकीकरण सम्भव होता है।
4. **प्राकृतिक साधनों का उचित विदोहन**—प्रकृति ने दुनिया के हर देश को विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक सम्पदाएँ प्रदान की हैं। व्यवसाय के द्वारा इन संसाधनों का उचित विदोहन सम्भव होता है। अफ्रीकी देशों में यद्यपि प्रचुर प्राकृतिक साधन उपलब्ध हैं किन्तु व्यावसायिक संरचना (Business Structure) के कमजोर होने के कारण उनका उचित विदोहन नहीं हो पाता।
5. **राजस्व में वृद्धि**—व्यवसाय के विकास से राजस्व में वृद्धि होना स्वाभाविक ही है। यदि किसी देश की सरकार की आय के साधनों का अध्ययन किया जाए तो हम पायेंगे कि अधिकांश आय उन करों से प्राप्त होती है जो व्यापार तथा उद्योग पर लगाये जाते हैं। उदाहरण के लिए, भारत में सर्वाधिक आय आबकारी कर से प्राप्त होती है। यदि व्यवसाय न होता तो

वस्तुत: करो का प्रश्न ही नहीं उठता। यहाँ तक कि व्यक्तिगत करों का भी प्रश्न नहीं उठता, क्योंकि व्यवसाय के अभाव में न तो राजगार के अवसर ही प्राप्त होते और न लोगों की आय ही होती।

6. **मानवीय संसाधनों का अधिकतम उपयोग**—व्यवसाय की स्थापना एवं उसके विकास से उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन मिलता है जिसके परिणामस्वरूप रोजगार के साधनो में वृद्धि होती है और उपलब्ध मानवीय संसाधनों का अधिकतम उपयोग करना सम्भव हो जाता है। व्यवसाय प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों ही प्रकार से रोजगार के साधनों का विकास करता है। **मैक अलराव** के अनुसार, "व्यवसाय मनुष्य की रचनात्मक शक्तियों को लगाने का महत्त्वपूर्ण साधन है।"
7. **उन्नत अर्थव्यवस्था की आधारशिला**—उन्नत व्यवसाय प्रत्येक राष्ट्र की अर्थव्यवस्था की आधारशिला है। **जॉन गार्डनर** (John Gardner) के अनुसार, "एक समाज उतना ही सभ्य होगा जितनी उसकी व्यावसायिक संस्थाएँ। यदि वे विकसित होती हैं तो समाज भी विकसित एवं अनुशासित होता है और यदि वे पतन की ओर जा रहे हैं तो समाज का भी पतन होगा।" व्यवसाय के कारण ही आज अमेरिका, जापान, जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैण्ड आदि देशो की उन्नत अर्थव्यवस्था है और उनकी गिनती विकसित, सभ्य एवं धनाढ्य देशों में होती है।
8. **पूँजी बाजारों का विकास**—व्यवसाय की सहायता के लिए जो बैंक, विशिष्ट वित्तीय संस्थान और शेयर बाजार स्थापित किये जाते हैं, वे सब मिलकर देश मे पूँजी बाजार का विकास करते हैं।
9. **विशिष्टीकरण को प्रोत्साहन**—व्यवसाय के विस्तार के फलस्वरूप वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन एवं वितरण वृहत पैमाने पर होता है। बड़े पैमाने पर उत्पादन करने के लिए विशिष्टीकरण और उससे सम्बन्धित अन्य क्रियाओं; जैसे—स्वचालन (Automation), श्रम विभाजन (Division of Labour), विवेकीकरण (Rationalisation), प्रमापीकरण (Standardisation) आदि को प्रोत्साहन देना पड़ता है। फलत: उनका विकास तेजी से होता है।
10. **आर्थिक आत्मनिर्भरता में सहायक**—ठोस आर्थिक विकास के लिए यह जरूरी है कि राष्ट्र की विदेशी सहायता और पूँजी पर निर्भरता कम हो तथा देश आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बने। व्यवसाय के विकास से आर्थिक आत्मनिर्भरता को प्रोत्साहन मिलता है।
11. **सांस्कृतिक विकास**—अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यवसाय किये जाने से विभिन्न संस्कृति एवं सभ्यता वाले देश एक-दूसरे के सम्पर्क में आते हैं। इससे व्यावसायिक आदान-प्रदान के साथ-साथ सांस्कृतिक विचारों का भी आदान-प्रदान होता है जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न राष्ट्रों में सांस्कृतिक विकास को प्रोत्साहन मिलता है।
12. **अन्य लाभ**—(i) व्यवसाय के कारण ही बड़ी मात्रा में उत्पादन एवं उसका उपयोग सम्भव हुआ है। (ii) व्यवसाय ने उत्पादन एवं उपभोग के क्षेत्र में अनुसन्धान को प्रोत्साहित किया है। (iii) व्यवसाय ने विश्व के सभी देशों को एक-दूसरे के निकट लाने में महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया है।

प्र.3. व्यावसायिक क्रियाओं को किस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है? विस्तार से समझाइए।

उत्तर आधुनिक व्यवसाय का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक है। इसके अन्तर्गत विभिन्न व्यावसायिक क्रियाओं का समावेश होता है। इसमें वाणिज्य एवं उद्योग के सम्पूर्ण जटिल क्षेत्र-आधारभूत उद्योग, प्रोसेसिंग (Processing) तथा निर्माणी उद्योगों एवं सहायक सेवाओं के जाल-वितरण, बैंकिंग, बीमा, परिवहन आदि सम्मिलित होते हैं। वास्तव में व्यवसाय एक विस्तृत शब्द है जिसकी समस्त क्रियाओं का वर्गीकरण निम्नांकित प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

I. उद्योग (Industry)

'उद्योग' का शाब्दिक अर्थ है—श्रम या उद्यम। व्यवसाय के सन्दर्भ में उद्योग का अर्थ उत्पादन (Production) या सृजन (Creation) से है। उद्योग व्यवसाय का वह अंग है जिसमें वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन तथा निर्माण किया जाता है। उद्योग उपलब्ध प्राकृतिक साधनों का निष्कर्षण, जनन, रचना और रूप-परिवर्तन करके उन्हें अधिक उपयोगी बनाते हैं। **एफ०जे० राइट** के अनुसार, "उद्योग किसी समाज की आर्थिक क्रियाओं का वह भाग है जिसके द्वारा कच्चे माल से आर्थिक माल अर्थात् मौद्रिक मूल्य पर बेचे जाने योग्य माल को प्राप्त किया जाता है, इसमें कृषि और निष्कर्षण उद्योग तथा निर्माणी एवं रचनात्मक उद्योग भी सम्मिलित हैं।" उद्योग को निम्नलिखित चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—

1. **निष्कर्षण उद्योग**—इसके अन्तर्गत वे उद्योग आते हैं जिनका सम्बन्ध भूमि, वायु या जल से कोई पदार्थ या स्व सत्व निकालने से होता है। अन्य शब्दों में इस वर्ग के अन्तर्गत वे उद्योग आते हैं जिनका सम्बन्ध प्रकृति की गोद से मानवीय

प्रयत्नों द्वारा निष्कर्षित वस्तुओं या पदार्थों से है जैसे—कोयला, लोहा, मैगनीज आदि वस्तुओं का निष्कर्षण, शिकार करना, मछली पकड़ना, वन सम्पदा का विदोहन करना, गैस और तेल निकालना आदि। इनको क्षयवान (exhaustive) उद्योग भी कहते हैं।

2. **जननिक उद्योग**—इस वर्ग में वे उद्योग सम्मिलित होते हैं जिनमें वनस्पति एवं पशुओं का पुनरुत्थान करके उनकी संख्या को बढ़ाया जाता है। मुर्गीपालन, पशुपालन, बागवानी, मत्स्यपालन, वनरोपण आदि इसके प्रमुख उदाहरण हैं।
3. **निर्माणी उद्योग**—निर्माणी उद्योग से तात्पर्य ऐसे उद्योगों से है जो वस्तुओं का रूप परिवर्तित कर देते हैं। इस उद्योग में कच्ची सामग्री या अर्द्ध-निर्मित सामग्री को अन्तिम रूप देकर उपभोग के योग्य बनाया जाता है; जैसे—गन्ने से शक्कर, कपास से कपडा, कच्चे लोहे से इस्पात आदि। निर्माण कार्य में दस्तकारी, कला-कोशल, यन्त्र-औजार बड़ी मशीनें शक्ति आदि सभी साधनों का उपयोग किया जाता है।

   निर्माणी उद्योगों को उनकी प्रकृति के अनुसार पुन: चार भागों में विभाजित किया जा सकता है—

   (i) **विश्लेषणात्मक**—इन उद्योगों में एक मौलिक कच्चे पदार्थ का विश्लेषण करके अनेक वस्तुओं का निर्माण किया जाता है। उदाहरण के लिए, खनिज तेल से मिट्टी का तेल, पैट्रोल, डीजल तथा गैसोलिन आदि निकाले जाते हैं।

   (ii) **संश्लेशणात्मक**—जब दो या इससे अधिक पदार्थों के मिश्रण से कोई नया पदार्थ बनाया जाता है तो इसे संश्लेषणात्मक उद्योग कहते हैं। कागज उद्योग, साबुन उद्योग आदि इसके कुछ उदाहरण हैं।

   (iii) **प्रक्रियात्मक**—जिस उद्योग में एक कच्चे पदार्थ को निर्माण प्रक्रिया की कई अवस्थाओं द्वारा अन्तिम रूप दिया जाता है तो उसे प्रक्रियात्मक उद्योग कहा जाता है। उदाहरण के तौर पर चीनी उद्योग, कपड़ा उद्योग, इस्पात उद्योग आदि।

   (iv) **संयोजनात्मक**—इस उद्योग में विभिन्न कल-पुर्जों को इकट्ठा करके एक वस्तु का निर्माण किया जाता है; जैसे—घड़ी, रेडियो, स्कूटर, कम्प्यूटर आदि।
4. **रचनात्मक उद्योग**—इस श्रेणी में वे उद्योग आते हैं जो रचनात्मक कार्य करते हैं; जैसे—भवन निर्माण, पुल-निर्माण, सड़क निर्माण, बाँध निर्माण आदि। यह उद्योग प्राय: ऐसी वस्तुओं का निर्माण करते हैं जो कि स्थायी प्रकृति की होती है और उनका उपयोग प्राय: सार्वजनिक हित के लिए होता है।

निष्कर्षण और जननिक उद्योगों को प्राथमिक उद्योग (Primary Industries) भी कहते हैं क्योंकि इनमें प्राथमिक या आधारभूत पदार्थों का मौलिक उत्पादन किया जाता है। इसके विपरीत, वे उद्योग जिनमें पहले से प्राप्त वस्तुओं को मशीन या हस्तक्रिया प्रक्रिया से अन्य उपयोगी स्वरूपों में बदला जाता है, द्वितीयक या सहायक उद्योग कहलाते हैं।

II. वाणिज्य (Commerce)

वाणिज्य, व्यावसायिक क्रिया का वह अंग है जिसमें वस्तुओं का विक्रय, विनिमय या हस्तान्तरण किया जाता है। इसके अन्तर्गत वे सभी क्रियाएँ शामिल की जाती हैं जो वस्तुओं व सेवाओं के क्रय-विक्रय से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखती हैं या इस क्रय-विक्रय को सम्भव बनाती हैं। इस प्रकार वाणिज्य में व्यापार अर्थात् वस्तुओं और सेवाओं का क्रय-विक्रय भी शामिल है और व्यापार की सहायक क्रियाएँ; जैसे—परिवहन बीमा, भण्डारण, बैंक लेन-देन आदि भी शामिल हैं। वाणिज्य, उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं के बीच कड़ी स्थापित करता है। अत: वाणिज्य में वे सभी कार्य सम्मिलित किये जाते हैं जिनके द्वारा वस्तुओं एवं सेवाओं का बेरोक-टोक, क्रय-विक्रय तथा लेन-देन किया जाता है।

जेम्स स्टीफेन्सन के अनुसार, "वाणिज्य के अन्तर्गत वे सब क्रियायें आती हैं जो कि उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं के बीच की दीवार को तोड़ने में सहायता करती हैं। यह सब उन प्रविधियों का कुल योग है जो कि वस्तुओं के विनिमय (बैंकिंग) में व्यक्तियों (व्यापार), स्थान (परिवहन एवं बीमा) तथा समय (भण्डार-गृहों) की बाधाओं को दूर करने में संलग्न होती हैं।"

थामस के अनुसार, "वाणिज्यिक क्रियाएँ माल के क्रय-विक्रय, वस्तुओं के विनिमय तथा तैयार माल के वितरण से सम्बन्धित हैं।"

वाणिज्य का वर्गीकरण (Classification of Commerce)

वाणिज्य को मुख्य रूप से दो प्रकार की क्रियाओं में विभाजित किया जा सकता है—1. व्यापार, 2. व्यापार की सहायक क्रियाएँ।

1. व्यापार—व्यापार का अर्थ उन क्रियाओं से है जो लाभ कमाने के उद्देश्य से वस्तुओं और सेवाओ के क्रय-विक्रय से सम्बन्धित होती हैं। अन्य शब्दों में, व्यापार का अर्थ क्रेता एवं विक्रेता दोनों के पारस्परिक लाभ हेतु वस्तुओं एवं सेवाओं के विनिमय से है।

इस प्रकार व्यापार, वाणिज्य का केन्द्रबिन्दु है, जिसके चारों ओर अन्य क्रियाएँ चक्कर लगाती हैं। यह उत्पादक और उपभोक्ता के बीच की दूरी को समाप्त करता है और इन दोनों के बीच विनिमय में आने वाली बाधाओं को दूर करता है।

व्यापार के प्रकार—व्यापार मुख्यत: दो प्रकार का होता है—

(i) **देशी व्यापार या आन्तरिक व्यापार**—जब वस्तुओं का क्रय एवं विक्रय किसी देश की सीमाओं के अन्तर्गत होता है तो उसे देशी या आन्तरिक व्यापार कहते हैं। अन्य शब्दों में, इस प्रकार के व्यापार का क्षेत्र देश की आन्तरिक सीमाओं तक ही सीमित रहता है।

(ii) **अन्तर्राष्ट्रीय या विदेशी व्यापार** से तात्पर्य है—दो या दो से अधिक देशों के मध्य किया गया व्यापार। इस व्यापार में अन्तर्राष्ट्रीय परिवहन के साधनों (समुद्री या हवाई जहाज) और विदेशी मुद्रा का प्रयोग करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, भारत और इंग्लैण्ड के बीच होने वाला व्यापार विदेशी व्यापार कहलायेगा। विदेशी व्यापार तीन प्रकार का होता है—(1) आयात व्यापार, (2) निर्यात व्यापार, और (3) पुनर्निर्यात या आयात-निर्यात व्यापार। विदेशों से माल के क्रय को आयात व्यापार (Import Trade) कहते हैं जैसे—भारत द्वारा ईराक से तेल मंगाना। निर्यात व्यापार (Export Trade) का आशय है—विदेशों में देशी सामान का विक्रय करना, जैसे—भारत द्वारा इंग्लैण्ड और अमेरिका को चाय का निर्यात। पुनर्निर्यात या आयात-निर्यात व्यापार के अन्तर्गत विदेशी सामान का आयात करके उसे अधिक मूल्य पर दूसरे देशों को निर्यात किया जाता है, जैसे—भारत, अमेरिका से इस्पात खरीदकर बांगलादेश को बेच दे।

2. व्यापार में सहायक क्रियाएँ—वाणिज्य में व्यापार के अतिरिक्त व्यापार-सहयोगी क्रियाएँ भी सम्मिलित होती हैं। ये क्रियाएँ; जैसे—परिवहन, मालगोदाम, बीमा, बैंक, विज्ञापन आदि व्यापार के मार्ग में आने वाली समस्त कठिनाइयों और बाधाओं को दूर करके क्रय-विक्रय को सम्भव और सुगम बनाती हैं और व्यापार के क्षेत्र एवं परिमाण (मात्रा) को बढ़ाती हैं। इन वाणिज्यिक क्रियाओं के बिना व्यापार का संचालन सुचारु रूप से सम्भव नहीं हो सकता।

व्यापार की सहायक क्रियाओं का विस्तृत क्षेत्र निम्नांकित है—

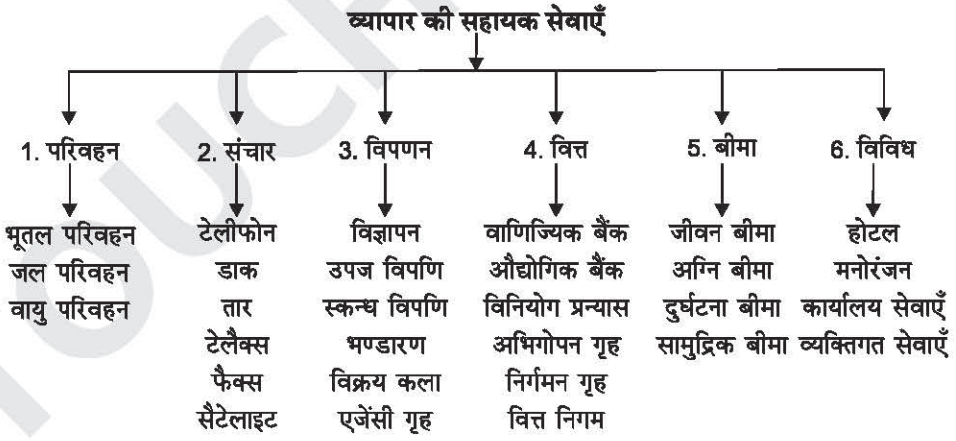

(i) **परिवहन**—कच्चे माल, वस्तुओं व सेवाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक लाने ले जाने के लिए परिवहन के साधनों की आवश्यकता होती है जिन्हें तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

(a) **भूतल परिवहन**—इसमें जमीन के ऊपर चलने वाले परिवहन के साधन, जैसे—रेल, ट्रक, टैंकर आदि शामिल किये जाते हैं।

(b) **जल परिवहन**—नदी मार्गों व समुद्र में चलने वाले स्टीमर नावें एवं जहाज जल परिवहन के साधन कहलाते हैं।

(c) **वायु परिवहन**—वायुयान, माल और सवारियों को तेजी से पहुँचाने के आधुनिक साधन हैं।

(ii) **संचार**—व्यवसाय के लिए सूचनाओं (Informations) के आदान-प्रदान की बहुत आवश्यकता होती है। डाक, तार, बेतार टेलीफोन, रेडियो, टेलीविजन सैटेलाइट, फैक्स, टेलेक्स की सहायता से व्यावसायिक क्रियाओं को विश्व के स्तर पर संचालित किया जा सकता है।

(iii) **विपणन**—निर्माताओं द्वारा ग्राहकों की इच्छा के अनुरूप वस्तुएँ बनाना और उन्हें उनके पास पहुँचाना विपणन कहलाता है। विपणन में जिन प्रमख क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है वे हैं—विज्ञापन, उपज विपणि, स्कंध विपणि, मध्यस्थ भण्डार-गृह, एजेन्सी गृह आदि।

(iv) **वित्त**—वित्त व्यवसाय की अनिवार्य आवश्यकता है। वित्तीय संस्थाएँ जनता की बचतों को एकत्रित करके उद्योगों एवं फर्मों को वित्तीय साधन सुलभ कराती हैं। वाणिज्यिक बैंक, औद्योगिक बैंक, शेयर बाजार, उपज विपणि, म्युचुअल फण्ड आदि प्रमुख वित्तीय संस्थाएँ हैं।

(v) **बीमा**—व्यवसायी द्वारा वस्तुओं व सेवाओं को निर्माण से लेकर उपभोक्ताओं तक पहुँचाने के दौरान अनेक प्रकार की दुर्घटनाएं होने की सम्भावना रहती है, जैसे—अग्नि दुर्घटना, सड़क दुर्घटना, जहाज का डूबना। माल को रास्ते में चोरी, डकैती या ठगी का शिकार भी बनाया जा सकता है। इन सभी प्रकार की जोखिमों से बचाव के लिए व्यवसायी माल का विभिन्न प्रकार का बीमा कराता है।

(vi) **विविध सेवाएँ**—व्यापार की उपरोक्त सहायक सेवाओं के अलावा व्यवसायियों को कुछ और सुविधाओं की आवश्यकता होती है, जैसे—मनोरंजन गृह, होटल, रेस्टोरेन्ट कॉफी हाउस लॉज आदि अन्य शहरों से आने वाले व्यापारियों को इनसे काफी सहूलियत रहती है। इनके साथ-साथ प्रबन्धकीय सलाहकार, अंकेक्षक, कर विशेषज्ञ, वैधानिक परामर्शदाता, लागत-लेखापाल, वास्तुविद, प्रबन्धकीय लेखाविद आदि अन्य सेवाओं का समावेश भी इन विविध सेवाओं में किया जा सकता है।

प्र.4. व्यवसाय के प्रमुख उद्देश्य बताइए।

उत्तर

व्यवसाय के उद्देश्य
(Objectives of Business)

व्यवसाय के उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

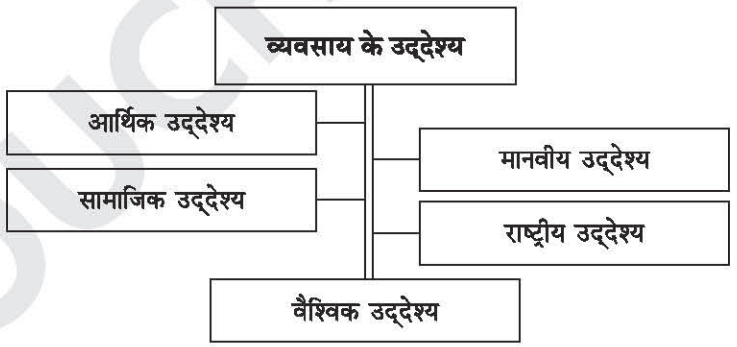

1. आर्थिक उद्देश्य (Economic Objectives)

व्यवसाय के आर्थिक उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(i) **लाभ अर्जित करना**—जब राजस्व व्यय से अधिक होता है तो अतिरिक्त राशि को 'लाभ' के रूप में जाना जाता है। लाभ अर्जित करना व्यवसाय का मुख्य उद्देश्य होता है। लाभ विभिन्न उद्देश्यों, जैसे—व्यवसाय की वृद्धि, अस्तित्व एवं विकास को सुविधाजनक बनाना, स्वामी तथा उसके परिवार को वित्तीय सहायता प्रदान करना, व्यक्ति के साथ-साथ सामाजिक उद्देश्यों को पूरा करता है।

(ii) **ग्राहक सृजित करना**—व्यवसाय का एक अन्य उद्देश्य ग्राहकों के एक समूह का निर्माण करना तथा उन्हें बनाये रखना है। वे उन बाजारों को स्थापित करने में सहायता करते हैं जहाँ व्यवसाय के उत्पाद व सेवाओं को प्रस्तुत किया

TOUCH 'n PASS

जाता है। ऐसे ग्राहक, जो कम्पनी के उत्पादों को क्रय करने के इच्छुक होते हैं व्यवसाय के विकास, विस्तार एवं अस्तित्व में सहायता करते हैं।

(iii) **नवाचार को बढ़ावा देना**—बाजार में नवाचार को प्रारम्भ करना एवं बढ़ावा देना भी व्यवसाय का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। उत्पादों में किए गए परिवर्तन, वितरण या उत्पादन प्रक्रियाओं के प्रारूप में सुधार को 'नवाचार' के रूप में जाना जाता है। नवाचार को प्राप्त करने में निम्नलिखित विधि सहायक हैं—

(a) नए उत्पादों को तैयार करना या बनाना, जैसे कि पॉकेट वॉटर प्यूरीफायर, 3 डी प्रिंटर, Curved टीवी, मोबाइल फोन के लिए पावर बैंक, ऊर्जा कुशल इलेक्ट्रॉनिक उपकरण आदि।

(b) संगठन के उत्पादन और अन्य कार्यों में नई प्रक्रियाओं को लागू करना, जैसे—दवा परीक्षण के लिए कम्प्यूटर और लैपटॉप का उपयोग करना, उत्पादन प्रक्रियाओं में रोबोट का प्रयोग करना, नई मशीनरी लागू करना आदि।

(c) ऑनलाइन माध्यम, टेलिशॉपिंग आदि जैसे वितरण के नए विधियों का प्रयोग करके।

(iv) **वैकल्पिक रूप से दुर्लभ संसाधनों का उपयोग करना**—व्यवसायों का एक अन्य आर्थिक उद्देश्य दुर्लभ संसाधनों (कर्मचारियों, सामग्रियों और मशीनरी) का उपयोग करना है। इसे निम्नलिखित विधियों से पूरा किया जा सकता है—

(a) कर्मियों का कुशल प्रयोग,

(b) मशीनरी का इष्टतम उपयोग और

(c) कच्ची सामग्री को बर्बाद होने से रोकना।

(v) **वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करना**—ग्राहकों के लिए विभिन्न उपयोगिताओं वाली वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करना भी व्यवसाय का एक उद्देश्य है। इन वस्तुओं और सेवाओं को ग्राहकों की आवश्यकताओं और इच्छाओं को पूरा करने और उन्हें सन्तुष्ट करने में सक्षम होना चाहिए।

(vi) **विकास और विस्तार पर ध्यान केंद्रित करना**—व्यवसाय का अगला महत्त्वपूर्ण उद्देश्य विकास और विस्तार पर ध्यान केंद्रित करना है। विकास और विस्तार के बिना, व्यवसाय अपने संभावित ग्राहकों तक नहीं पहुँचने में सक्षम नहीं होता है। अस्तित्त्व के साथ व्यवसाय के लिए विकास और विस्तार पर ध्यान केन्द्रित करना बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह प्रकृति में लम्बवत्, क्षैतिज या अनियमित हो सकता है।

(vii) **उत्पादकता और लागत दक्षता में सुधार करना**—व्यवसाय का उद्देश्य उत्पादकता को बढ़ाना है जिससे अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सके। यह बेहतर उत्पादकता लागत-दक्षता की ओर ले जाती है जिसके माध्यम से लाभ उत्पन्न होता है।

2. मानवीय उद्देश्य (Humanistic Objectives)

मानवीय उद्देश्य में कर्मचारी संतुष्टि को प्राप्त करना है। यह कर्मचारी के कल्याण तथा अपेक्षाओं की पूर्ति को सुनिश्चित करता है। वे लोग जो अक्षम या दिव्यांग हैं या उचित प्रशिक्षण तथा शिक्षा से वंचित हैं उन्हें भी व्यवसाय द्वारा समर्थित किया जाता है। मानव उद्देश्यों को निम्नलिखित प्रमुख बिंदुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

(i) **कर्मचारियों के आर्थिक कल्याण को सुगम बनाना**—व्यवसाय का उद्देश्य अपने कर्मचारियों को उनके प्रदर्शन के अनुसार उचित प्रोत्साहन और उचित वेतन देकर उनका आर्थिक कल्याण करना है। इसके अन्तर्गत पेंशन, भविष्य निधि का लाभ, चिकित्सा के लिए क्षतिपूर्ति, आवास आदि जैसी सुविधाएँ दी जाती हैं ताकि कर्मचारियों में संतुष्टि की भावना विकसित हो सके।

(ii) **कर्मचारियों को सामाजिक और मनोवैज्ञानिक सन्तुष्टि प्रदान करना**—व्यवसाय का एक और मानवीय उद्देश्य अपने कर्मचारियों को सामाजिक और मनोवैज्ञानिक रूप से सन्तुष्ट करना है। सन्तुष्ट कर्मचारी व्यवसाय की सफलता में योगदान दे सकते हैं।

इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उपयुक्त कर्मचारियों को सम्बन्धित पदों पर रखा जाता है कार्यों को रुचिपूर्ण बनाया जाता है, प्रासंगिक पदोन्नति या वेतन वृद्धि की पेशकश की जाती है, त्वरित और प्रभावी शिकायत निवारण तंत्र की स्थापना की जाती है और उनके सुझावों को निर्णय लेने की गतिविधि में स्वीकार किया जाता है। यह सब कर्मचारियों को अपने संगठन के लिए अधिक योगदान करने में सक्षम करता है।

(iii) **जनशक्ति विकसित करना**—संगठन की जनशक्ति विकसित करना भी व्यवसाय का एक मानवीय उद्देश्य है। यह उन्हें उचित प्रशिक्षण और विकास कार्यक्रम प्रदान करके किया जा सकता है ताकि उनके कौशल और क्षमताओं को प्रेरित किया जा सके और उन्हें अधिक सक्षम बनाया जा सके।

(iv) **सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों की भलाई को सुविधाजनक बनाना**—समाज का एक भाग होने के कारण प्रत्येक व्यवसाय का उद्देश्य सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों की भलाई के लिए समर्थन करना है। वे मानसिक रूप से मंद और शारीरिक रूप से अक्षम लोगों का समर्थन करते हैं और उनकी भलाई सुनिश्चित करते हैं। यह उद्देश्य उनके लिए व्यावसायिक कार्यक्रमों को डिजाइन करके और संगठनात्मक भर्ती प्रक्रिया में उन्हें प्राथमिकता देकर प्राप्त किया जा सकता है। ऐसे व्यक्तियों को उच्च अध्ययन के लिए छात्रवृत्ति भी प्रदान की जा सकती है।

3. सामाजिक उद्देश्य (Social Objectives)

किसी व्यवसाय के सामाजिक उद्देश्य समाज के कल्याण एवं भलाई से सम्बन्धित होते हैं। व्यवसाय दुर्लभ संसाधनों (मानव मशीन, सामग्री, आदि) का प्रयोग करता है। इसलिए लोगों के सामाजिक कल्याण के संदर्भ में उनका कल्याण करने के लिए उत्तरदायित्व होता है। उन्हें ऐसी किसी भी व्यावसायिक गतिविधि से बचना चाहिए जो व्यक्तियों को हानि पहुँचाता है। ऐसी घटनाओं के संदर्भ में व्यवसाय को गंभीर सार्वजनिक प्रतिक्रियाओं का सामना करना पड़ सकता है। व्यवसाय के सामाजिक उद्देश्यों के अन्तर्गत अच्छी गुणवत्ता वाली वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन तथा पूर्ति, उचित व्यापारिक प्रथाएँ अपनाना, समाज के सामान्य कल्याणकारी कार्यों और सुविधाओं में योगदान करना सम्मिलित है।

4. राष्ट्रीय उद्देश्य (National Objectives)

एक देश के पास राजकोषीय, खजाने के लिए राजस्व उत्पन्न करने निवासियों को स्वरोजगार के अवसर प्रदान करने, पर्याप्त मात्रा में वस्तुएँ व सेवाओं का उत्पादन करने, अपने लोगों के सामाजिक कल्याण करने आदि के लिए लक्ष्य हो सकते हैं। व्यवसाय के राष्ट्रीय उद्देश्य ऐसे राष्ट्रीय उद्देश्य को प्राप्त करने पर ध्यान केन्द्रित करते हैं व्यवसाय के राष्ट्रीय उद्देश्य निम्नलिखित है—

(i) **रोजगार सृजित करना**—लोगों के लिए रोजगार के अवसर उत्पन्न करना व्यवसाय के राष्ट्रीय उद्देश्यों में से एक है। यह अपने वितरण माध्यमों तथा बाजार का विस्तार करता है तथा इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए यह विभिन्न नई इकाइयाँ स्थापित करता है।

(ii) **सामाजिक न्याय को बढ़ावा देना**—व्यवसाय का एक अन्य राष्ट्रीय उद्देश्य राष्ट्र में सामाजिक न्याय को बढ़ावा देना है। इसके लिए, व्यवसाय द्वारा समाज के विभिन्न क्षेत्रों में समान रोजगार के अवसर प्रदान किए जाते हैं। आर्थिक रूप से कमजोर और पिछड़े समाजों पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

(iii) **राष्ट्र की उत्पादन और आपूर्ति नीति का पालन करना**—राष्ट्र की उत्पादन और आपूर्ति नीति का पालन करना भी व्यवसाय का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। उनका उद्देश्य सरकारी नियमों और नीतियों के अनुसार अपने उत्पादन और आपूर्ति प्रक्रियाओं को तैयार करना है।

(iv) **देश के राजस्व में योगदान करना**—देश के राजस्व में योगदान करना भी व्यवसाय के उद्देश्यों के अन्तर्गत आता है। व्यवसाय का उद्देश्य सरकार को नियमित रूप से सभी करों और बकाया राशि का भुगतान करना है ताकि सरकार के राजस्व में सुधार हो सके।

(v) **देश को आत्मनिर्भर बनाना और निर्यात को बढ़ावा देना**—व्यवसाय का एक अन्य महत्त्वपूर्ण उद्देश्य अन्य देशों से वस्तुओं के आयात को कम करना है जिससे देश को आत्मनिर्भर बनाया जा सके। इसका उद्देश्य देश से विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं के निर्यात को बढ़ावा देना है जिससे देश की विदेशी पूँजी में सुधार हो सके।

5. वैश्विक उद्देश्य (Global Objectives)

वैश्वीकरण के इस नये युग में तथा वैश्विक बाजारों में बढ़ती प्रतियोगिताओं में प्रत्येक व्यवसाय कुछ वैश्विक उद्देश्यों के साथ आते हैं। पहले भारत में निर्यात तथा आयात के लिए कई व्यापारिक प्रतिबन्ध तथा कठोर नीतियाँ थीं। आर्थिक नीतियों के उदारीकरण के आगमन के साथ विदेशी निवेशों पर विभिन्न प्रतिबन्धों को संशोधित किया गया तथा इसे आसान बना दिया गया

तथा आयात शुल्क को धीरे-धीरे कम कर दिया गया है इससे वैश्विक बाजारों में प्रतिस्पर्धा बढ़ गई। संपूर्ण विश्व वैश्वीकरण के कारण एक एकल बाजर के रूप में उभरा है। एक देश के उत्पाद को दूसरे देश द्वारा आसानी से प्राप्त किया जा सकता हैं। व्यवसाय के वैश्विक उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(i) **सामान्य जीवन स्तर को बढ़ाना**—व्यवसाय के वैश्विक उद्देश्यों में से एक अपने लोगों को उचित मूल्य पर वैश्विक गुणवत्ता वाले उत्पादों और सेवाओं को उपलब्ध कराकर उनके जीवन स्तर में सुधार करना है। जैसा कि विभिन्न देशों के लोग एक ही समय में समान उत्पादों का उपयोग करते हैं, यह उनके जीवन स्तर में सुधार एवं समानता प्रदान करता है।

(ii) **राष्ट्रों के मध्य असमानताओं को कम करना**—व्यापार का एक और वैश्विक उद्देश्य विभिन्न राष्ट्रों के मध्य (धनी और निर्धन) के अन्तर को कम करना है। यह विश्व के विभिन्न देशों में व्यापार के संचालन का विस्तार करके प्राप्त किया जाता है। व्यवसाय का उद्देश्य विश्व की विभिन्न अविकसित और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में निवेश करना है ताकि अन्तर्राष्ट्रीय विषमताओं को कम किया जा सके।

(iii) **विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धी वस्तुओं और सेवाओं को प्रस्तुत करना**—विभिन्न देशों के लिए विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धी उत्पादों के साथ-साथ वांछित उत्पाद की पेशकश करना भी व्यवसाय का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। इस प्रकार, व्यवसाय का उद्देश्य घरेलू देश की छवि को बेहतर बनाना और अधिक विदेशी पूँजी अर्जित करना है।

प्र.5. व्यावसायिक संगठन की परिभाषा देते हुए इसकी अवधारणा को स्पष्ट कीजिए। व्यावसायिक संगठन के लक्षणों की भी व्याख्या कीजिए।

उत्तर

व्यावसायिक संगठन की परिभाषाएँ
(Definitions of Business Organisation)

विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत मतों को निम्नलिखित परिभाषाओं में स्पष्ट किया गया है—

1. **हैने** के अनुसार, "एक व्यावसायिक संगठन भूमि, श्रम तथा पूँजी का स्वतन्त्र मिश्रण है जो साहसी की योग्यता द्वारा उत्पादन से सम्बन्धित उद्देश्य के लिए संगठित एवं संचालित किया जाता है।"
2. **विलियम आर० स्प्रीगल** का मत है कि "व्यावसायिक संगठन किसी उद्योग का वह पहलू है जो संस्था के अन्तिम उद्देश्यों तथा नीतियों से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत उद्देश्यों को पहले से ही निश्चित कर लिया जाता है तथा उन व्यापक सीमाओं का भी निर्धारण कर लिया जाता है जिनके अन्तर्गत सभी उद्देश्यों की पूर्ति करनी चाहिए।"
3. **जेम्स एल० लुण्डी** के अनुसार, "व्यावसायिक संगठन का प्रमुख कार्य नियोजन समन्वय तथा प्रेरणा प्रदान करना है ताकि किसी विशेष उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अन्य व्यक्तियों के कार्य को नियन्त्रित किया जा सके।"

विभिन्न विद्वानों के विचारों का अध्ययन करने के बाद स्पष्ट होता है कि व्यावसायिक संगठन वह व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु कार्यरत मानव समूह की क्रियाओं को नियन्त्रित किया जाता है। इसके द्वारा संस्था में कार्य करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के संस्था की सफलता में योगदान में वृद्धि करने की हर सम्भव कोशिश की जाती है। एक सफल व्यावसायिक संगठन वह होगा जो कम से कम लागतों पर उत्पादन करके उत्पादन के सभी घटकों को सन्तुष्ट करते हुए अच्छे-से-अच्छे परिणाम दे सके।

व्यावसायिक संगठन का अर्थ/अवधारणा
(Concept/Meaning of Business Organisation)

व्यवसाय तथा संगठन को अलग-अलग अध्ययन करने के बाद व्यावसायिक संगठन का अर्थ समझना सरल हो गया है। जिस प्रकार मानव शरीर के विभिन्न अंगों में समन्वय स्थापित करके शरीर को क्रियाशील बनाना शारीरिक संगठन है, ठीक उसी प्रकार व्यवसाय के विभिन्न अंगों (जैसे—श्रम, भूमि, पूँजी, माल) में समन्वय स्थापित करते हुए व्यवसाय के उद्देश्यों को प्राप्त करना व्यावसायिक संगठन कहलाता है। अर्थात् व्यावसायिक संगठन में उत्पादन के विभिन्न घटकों अथवा व्यवसाय के अंगों को इस प्रकार व्यवस्थित करना सम्मिलित है कि व्यवसाय के संचालन में कम-से-कम बाधाएं उत्पन्न हों तथा न्यूनतम लागतों पर अधिकतम कार्यकुशलता प्राप्त की जा सके।

व्यावसायिक संगठन की विशेषताएँ या लक्षण
(Characteristics of Business Organisation)

व्यावसायिक क्रियाओं का विश्लेषण करने से व्यावसायिक संगठन में निम्नलिखित लक्षण या विशेषताएँ पाई जाती हैं—

1. **मौलिक एवं अनिवार्य आर्थिक क्रिया**—आर्थिक क्रियाओं से आशय उन क्रियाओं से होता है जो धन अर्जित करने तथा उसका उपयोग करने से सम्बन्धित हैं। अर्थशास्त्र ऐसी ही क्रियाओं का विवेचन करता है। सामाजिक जीवन की आर्थिक अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति इन्हीं क्रियाओं द्वारा हुआ करती है।
   सभी आर्थिक क्रियाएँ व्यावसायिक क्रियाएँ नहीं होतीं जबकि सभी व्यावसायिक क्रियाएँ आर्थिक क्रियाएँ होती हैं। आर्थिक क्रियाओं का क्षेत्र व्यावसायिक क्रियाओं की अपेक्षा अधिक विस्तृत होता है।
2. **मानवीय क्रियाएँ**—यह स्मरण रखना चाहिए कि व्यवसाय केवल मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं का ही अध्ययन करता है। अन्य जीव-धारियों की क्रियाओं का इसमें कोई विचार नहीं किया जाता है, चाहे वे धनोपार्जन से ही सम्बन्ध क्यों नहीं रखती हों; जैसे—बैल, बैलगाड़ी को खींचकर अपने स्वामी के लिए धन अर्जित करता है।
3. **साहसिक कार्य**—व्यवसाय एक साहसिक कार्य है, क्योंकि इसके अन्तर्गत माल के उत्पादन एवं वितरण सम्बन्धी अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए विविध समस्याओं का निराकरण करना पड़ता है। लाभ की आशा में परिस्थितियों की प्रतिकूलता के कारण कभी-कभी तो हानि भी उठानी पड़ती है। उत्पादन के विविध साधनों अथवा व्यवसाय के विभिन्न तत्त्वों में 'साहस' एक महत्त्वपूर्ण साधन अथवा तत्त्व माना जाता है।
4. **तुष्टिगुण का सृजन**—व्यवसाय की मुख्य दो क्रियाएँ हैं—उत्पादन और विनिमय। उत्पादन के अन्तर्गत कच्चे माल का रूप परिवर्तन कर आवश्यकता की वस्तु बनाई जाती है जो समाज के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होती है। जैसे—मिट्टी से ईंटें बनाना, चमड़े से जूते बनाना, रूई से कपड़े बनाना आदि **रूप मूलक तुष्टिगुण** (Form Utility) के कुछ उदाहरण हैं। जब वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान को स्थानान्तरित कर उपभोग के लिए अधिक उपयोगी बना दिया जाता है, तो यह स्थानमूलक तुष्टिगुण (Place Utility) कहलाता है। उदाहरण के लिए कोयला, खानों से निकालकर कारखानों में पहुँचाया जाए तो व्यवसाय के लिए वह अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है। कुछ वस्तुओं के उत्पादन पर निर्माण में और उनके उपभोग में पर्याप्त समय लग जाता है जिसके कारण उनका संग्रह करके रखना पड़ता है। जैसे गेहूँ आदि फसल के समय संगृहीत करके समय आने पर शनैः शनैः आवश्यकतानुसार बेचते रहना **कालमूलक तुष्टिगुण** (Time Utility) है। इसी प्रकार यदि 'अ' के माल का उपभोग 'ब' करना चाहता है, तो माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण 'अ' द्वारा 'ब' को होना चाहिए। यह स्थान्तरण क्रय-विक्रय पद्धति द्वारा सरलता से किया जा सकता है जिससे अधिकार या पात्रमूलक तुष्टिगुण (Possession Utility) का सृजन होता है। संक्षेप में, व्यवसाय में रूप, स्थान, समय व स्वामित्व के परिवर्तनों द्वारा तुष्टिगुण का सृजन होता है।
5. **विनिमय, हस्तान्तरण या विक्रय**—समस्त व्यावसायिक क्रियाएँ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में विनिमय या हस्तान्तरण से सम्बन्धित होती हैं। यदि वस्तुओं का उत्पादन स्वयं के उपभोग के लिए अथवा किसी को भेंट स्वरूप देने के लिए किया जाता है या निःशुल्क सेवाएँ की जाती है, तो इन सब क्रियाओं को व्यवसाय की संज्ञा नहीं दी जा सकती है, क्योंकि इनमें न तो वस्तुओं की विक्रय व्यवस्था है और न सेवाओं की विनिमय-प्रणाली ही है। हैने के मतानुसार, "व्यवसाय वस्तुओं के विनिमय पर आधारित है.....और क्रय-विक्रय में ही व्यवसाय का सार निहित है।"
6. **वस्तुओं और सेवाओं में आदान-प्रदान**—व्यवसाय के अन्तर्गत वस्तुओं और सेवाओं दोनों का ही आदान-प्रदान होता है, जैसे पिन से लेकर बड़ी मशीन तक की असंख्य चल (Movable Goods) वस्तुओं के अतिरिक्त भवन आदि अचल सम्पत्ति (Immovable Property) का लेन-देन भी व्यावसायिक वस्तुओं के अन्तर्गत आता है। व्यावसायिक लेन-देन की वस्तुएँ उपभोग पदार्थों (Consumer's Goods) के रूप में भी होती हैं। अमूर्त (Intangible) या अदृश्य (Invisible) सेवाओं का भी जिनका भविष्य के उपभोग के लिए संचय नहीं किया जा सकता, इसी प्रकार आदान-प्रदान होता है। संचार, परिवहन, बिजली, पानी, गैस, मनोरंजन, बीमा, आवास सम्बन्धी सेवाएँ इसी श्रेणी में आती हैं।
7. **वस्तुओं और सेवाओं के व्यवहारों में निरन्तरता या नियमितता**—कोई भी इक्का-दुक्का सौदा व्यवसाय नहीं कहा जा सकता। केवल वे ही सौदे व्यवसाय कहलाते हैं जो निरन्तर या नियमित रूप से किये जायं। आवर्ती विक्रय (Recurring Sales) ही व्यावसायिक व्यवहारों का प्रमाण-चिह्न है। उदाहरणार्थ, यदि कोई व्यक्ति अपनी घड़ी बेचता है तो यह

व्यवसाय नहीं कहलायेगा। परन्तु यदि वही व्यक्ति घड़ियाँ बेचने का नियमित रूप से धन्धा करता है, तो उसका यह कार्य निस्सन्देह 'व्यवसाय' की श्रेणी में आता है।

8. **लाभ-प्रेरणा**—लाभ कमाना ही व्यवसाय का एक प्रमुख प्रयोजन है। लाभ की प्रेरणा से ही व्यवसाय में निरन्तरता बनी रहती है। यदि किसी वस्तु के उत्पादन अथवा क्रय-विक्रय में कोई लाभ नहीं होता है, तो यह व्यवसाय छोड़ दिया जाता है और अन्य लाभप्रद व्यवसाय अपना लिया जाता है इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि व्यवसाय में सेवा-भाव नहीं होता या कम होता है। वास्तविकता तो यह है कि कोई भी व्यवसाय हो, वह उन्नति तभी कर सकता है जब उससे समाज पूरी तरह सन्तुष्ट हो और समाज तभी सन्तुष्ट होगा जब व्यवसाय द्वारा उसकी पूरी तरह सेवा एवं आवश्यकता की पूर्ति की जाती हो अर्थात् उचित मूल्य पर उपयुक्त किस्म का माल बेचा जाए। लाभ को बढ़ाने के लिए उपभोक्ताओं का किसी प्रकार से भी शोषण नहीं हो, यही व्यवसायी की बहुत बड़ी सेवा होती है।
9. **प्रतिफल की अनिश्चितता**—व्यवसाय में सदैव लाभ की अनिश्चितता रहती है। कभी भी लाभ की अनिश्चितता संदिग्ध हो जाती है, क्योंकि लाभ का होना अनेक ऐसे तत्त्वों पर निर्भर करता है जिन पर व्यवसायी का कोई बस नहीं चलता; जैसे—वस्तुओं की मांग में निरन्तर परिवर्तन, मूल्यों में घटा-बढ़ी सरकार की व्यवसाय सम्बन्धी नीतियों में समय समय पर परिवर्तन होना आदि।
10. **जोखिम तथा भावी सफलता का तत्त्व**—जब व्यवसाय प्रारम्भ किया जाता है तब अच्छी तरह सोच समझ कर ही किया जाता है, परन्तु भविष्य सदैव अनिश्चित रहता है जिसके फलस्वरूप कुछ परिस्थितियां ऐसी उत्पन्न हो जाती हैं जिनके कारण लाभ के स्थान में हानि उठानी पड़ती है और निरन्तर ऐसा होने की दशा में व्यवसाय की सफलता सन्देहास्पद हो जाती है। वास्तव में देखा जाए तो लाभ जोखिम उठाने का ही पुरस्कार है।

प्र.6. व्यावसायिक संगठन का क्या महत्त्व है? विवेचना कीजिए।

उत्तर

व्यावसायिक संगठन का महत्त्व/आवश्यकता
(Importance/Necessity of Business Organisation)

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संगठन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रकृति ने शरीर संरचना में विभिन्न अंगों में प्रभावपूर्ण सामंजस्य स्थापित करके संगठन का सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत किया है। संगीत की मधुर स्वर लहरी विभिन्न स्वरों के समन्वय का श्रेष्ठ प्रतीक है। खेल के मैदान में भी विजय का श्रेय केवल संगठित टीम को ही होता है। व्यावसायिक जगत में भी संगठन के आधारभूत तत्त्वों के ज्ञान के बिना सफलता की आशा नहीं की जा सकती। संगठन के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए **केनिथ** ने लिखा है कि "एक कमजोर संगठन अच्छे उत्पाद को मिट्टी में मिला सकता है किन्तु एक अच्छा संगठन जिसके पास कमजोर उत्पाद है अच्छे उत्पाद को बाजार से भगा सकता है।"

आधुनिक युग में व्यावसायिक संगठन का महत्त्व बहुत बढ़ गया है जिसके निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं—

1. **विशिष्टीकरण तथा यन्त्रीकरण**—आधुनिक युग में श्रम-विभाजन तथा विशिष्टीकरण अधिक सूक्ष्म तथा जटिल हो गया है। प्रत्येक कर्मचारी एक कार्य के बहुत सूक्ष्म भाग में तल्लीन रहता है और उसे उस कार्य के दूसरे भागों का ज्ञान नहीं रहता। इसके अतिरिक्त उत्पादन अधिकतर स्वचालित मशीनों द्वारा होता है। इनका सुचारु रूप से संचालन करने के लिए उत्तम कारखानों की व्यवस्था, उद्योगों का विकेन्द्रीकरण यन्त्रों की उचित देखरेख, उत्पादन नियोजन एवं नियन्त्रण आदि आवश्यक हैं। इन जटिलताओं के कारण व्यावसायिक संगठन के अध्ययन का महत्त्व बहुत बढ़ गया है।
2. **गला-काट प्रतियोगिता**—आजकल प्रत्येक व्यवसायी को कठोर प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है। प्रत्येक व्यवसायी अपने उपक्रम को सफल बनाने के लिए हर सम्भव प्रयास करता है। प्रतिस्पर्धा की इस दौड़ में सफल होने के लिए कुशल उत्पादन एवं वितरण-व्यवस्था आवश्यक है। क्रय-विक्रय, माल परिवहन, माल भण्डारण आदि की उत्तम सुविधाएँ होनी चाहिए। यह सब कुशल व्यावसायिक संगठन द्वारा ही सम्भव है। आज के युग में उपभोक्ता अधिक जागरूक और शिक्षित हो गया है और उसकी सन्तुष्टि के लिए उत्तम संगठन एवं संचालन अनिवार्य है।
3. **व्यापक व्यावसायिक जोखिम**—उत्पादन तथा वितरण प्रणाली में निरन्तर परिवर्तन के कारण व्यावसायिक जोखिमों का विस्तार हुआ है। फैशन और माँग में तीव्रगति से परिवर्तन होते रहते हैं, जिनसे हानि होने की सम्भावना बढ़ गई है।

व्यावसायिक जोखिमों को न्यूनतम करने तथा व्यावसायिक अवसरों का समुचित लाभ उठाने में व्यावसायिक संगठन का अत्यधिक महत्त्व है।

4. **सरकारी नियन्त्रण**—जनता के कल्याण हेतु प्रत्येक सरकार व्यवसाय में अधिकाधिक हस्तक्षेप करने लगी है। निजी व्यवसाय को नियन्त्रित करने के लिए अनेक अधिनियम बनाये गये हैं। इन नियमों का पालन करने के लिए व्यावसायिक संगठन का विशिष्ट ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। प्रत्येक व्यवसायी को तरह-तरह के लाइसेन्स, अनुज्ञा-पत्र आदि प्राप्त करने पड़ते हैं तथा अनेक विवरण-पत्र सरकार को प्रस्तुत करने पड़ते हैं। व्यवसाय-सम्बन्धी सरकारी नीतियों में निरन्तर परिवर्तन होते रहते है जिससे व्यवसाय का संचालन और भी जटिल हो पाया है।
5. **व्यवसायों का भीमकाय आकार**—आज के आधुनिक युग में एकल स्वामित्व अथवा साझेदारी की तुलना में संयुक्त पूँजी वाली कम्पनियों की स्थापना को प्राथमिकता दी जाने लगी है। बड़े व्यवसाय में अनेक जटिलताएँ उत्पन्न हो जाती हैं। अनेक विभागों और उपविभागों के कारण उचित सहयोग और समन्वय स्थापित करना कठिन होता है। विभिन्न कर्मचारियों और प्रबन्धकों के अधिकारों एवं दायित्वों में सामजस्य रखना भी कठिन हो जाता है। एक कुशल व्यावसायिक संगठन ही इन सभी समस्याओं का समाधान कर सकता है। बाजारों के विस्तार से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर क्रय-विक्रय आवश्यक हो गया है।
6. **श्रम-संघ और औद्योगिक सम्बन्ध**—आधुनिक युग में श्रमिकों की शक्ति बहुत बढ़ गई हैं और औद्योगिक शान्ति बनाये रखना कठिन हो गया है। श्रमिकों में सन्तोष और विश्वास उत्पन्न करके ही व्यवसाय का कुशल संचालन किया जा सकता है। कर्मचारियों की सुरक्षा, विकास तथा कल्याण की उचित व्यवस्था का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। इस मशीन युग में, श्रमिक उपेक्षित महसूस करता है इसलिए मानवीय सम्बन्धों के विकास की आवश्यकता होती है। व्यावसायिक संगठन के उचित ज्ञान के द्वारा उत्तम श्रम-व्यवस्था का निर्माण किया जा सकता है।
7. **वित्तीय समस्याएँ**—आधुनिक युग में व्यवसाय की वित्तीय समस्याएँ बढ़ गई हैं। विशाल पूँजी प्राप्त करने के लिए विभिन्न साधनों का प्रयोग करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त अंश पूँजी और ऋण पूँजी, स्थायी पूँजी तथा क्रियाशील पूँजी आदि में उचित सामंजस्य रखना भी आवश्यक है। यही नहीं बैंको, विशेष वित्तीय संस्थाओं, अंश बाजारों आदि से उचित सम्पर्क भी रखना पड़ता है। कुशल व्यावसायिक संगठन इन समस्याओं का निराकरण करने का एकमात्र साधन है।
8. **नियोजित एवं सन्तुलित विकास**—आर्थिक उन्नति से अधिकाधिक लोगों को लाभ पहुँचाने के लिए प्रत्येक देश अपने उद्योगों का नियोजित तथा सन्तुलित विकास करना चाहता है। भारत जैसे विकासशील देश में तो सन्तुलित क्षेत्रीय विकास का और भी अधिक महत्त्व है। नियोजित एवं सन्तुलित विकास में उत्तम व्यावसायिक संगठन का उचित ज्ञान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।
9. **व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व** (Social Responsibilities of Business)—आधुनिक युग में उत्पादन एवं वितरण ही व्यवसाय का एकमात्र कर्त्तव्य नहीं है वरन् व्यवसाय को अनेक सामाजिक उत्तरदायित्वों का पालन भी करना पड़ता है। अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों का पालन करने के लिए प्रत्येक व्यवसायी व्यावसायिक संगठन पर निर्भर करता है।
10. **आधुनिक व्यवसाय की जटिलता**—वर्तमान समय में व्यवसाय का संचालन एवं नियन्त्रण सरल कार्य नहीं है। प्रारम्भ से लेकर अन्त तक व्यवसायी को अनेक जटिल कार्य; जैसे—समामेलन, वित्त-प्रबन्धन, उत्पादन नियोजन, लेखांकन, विज्ञापन, विपणन व्यवस्था आदि सम्पन्न करने पड़ते हैं। कोई भी व्यक्ति जिसे व्यावसायिक संगठन के तत्त्वों का ज्ञान नहीं है उपर्युक्त कार्यों को सरलतापूर्वक नहीं कर सकता।

प्र.7. व्यवसाय के लक्ष्य के रूप में लाभ के अधिकतमीकरण से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर

व्यवसाय के लक्ष्य के रूप में लाभ का अधिकतमीकरण
(Profit Maximization in the form of Aim of Business)

व्यावसायिक फर्मों का एकमात्र उद्देश्य पारम्परिक आर्थिक सिद्धान्त द्वारा प्राप्त किए गए लाभ को अधिकतम करना है, जहाँ लाभ अधिकतमीकरण दी गई मांग और आपूर्ति की शर्तों द्वारा अर्जित धन के रूप में सबसे बड़ी पूर्ण राशि है। लाभ अधिकतम परिकल्पना सामान्य मूल्य सिद्धान्त का आधार है। यह परिकल्पना व्यावसायिक फर्मों के व्यवहार के साथ-साथ विभिन्न बाजार

स्थितियों के अन्तर्गत मूल्य-उत्पादन प्रदर्शन की भविष्यवाणी करने में भी सहायता करती है, क्योंकि कोई भी परिकल्पना फर्मों के प्रदर्शन को समझाने और पूर्वानुमान करने में सक्षम नहीं है। इस प्रकार, एक फर्म हमेशा अपने लाभ को उस आउटपुट स्तर पर अधिकतम रखेगी जहाँ कुल राजस्व और कुल लागत के मध्य का अन्तर अधिकतम है।

अधिकतम लाभ की दो शर्तें हैं—

1. $MC = MR$, और
2. MC को MC और MR के मध्य समानता के बिन्दु पर बढ़ना चाहिए। आइए हम इन दो स्थितियों की व्याख्या करें। हम पहली शर्त के अनुसार—
   (i) यदि $MC < MR$, कुल लाभ को अधिकतम नहीं किया जाता है क्योंकि इसमें फर्म उत्पाद बढ़ाकर अधिक लाभ अर्जित करती है।
   (ii) यदि $MC > MR$, कुल लाभ का स्तर कम हो रहा है, तो फर्म उत्पादन कम करके लाभ बढ़ा सकती है।
   (iii) यदि $MC = MR$, जब यह बराबर होता है तो लाभ अधिकतम होता है।

लाभ अधिकतमीकरण की आलोचना
(Criticism of Profit Maximization)

निम्नलिखित आधार पर अर्थशास्त्रियों द्वारा लाभ अधिकतमीकरण के उद्देश्य की बहुत आलोचना की गई है—

1. **लाभ का अनिश्चित होना**—लाभ अधिकतमीकरण का सिद्धान्त इस धारणा पर आधारित है कि कम्पनियाँ अपने लाभ के अधिकतम स्तर के बारे में सुनिश्चित हैं परन्तु इसके विपरीत, लाभ सुनिश्चित नहीं हैं क्योंकि भविष्य में राजस्व की प्राप्तियों और लागतों के बीच अन्तर से प्राप्त होते हैं। इसलिए, फर्मों के लिए अनिश्चित परिस्थितियों में अपने लाभ को अधिकतम करना असम्भव है।
2. **पूर्णतया ज्ञान नहीं**—लाभ अधिकतमीकरण की परिकल्पना का आधार यह है कि सभी फर्म अपनी लागत और राजस्व के बारे में और अन्य फर्मों के बारे में भी पूरी तरह से जानकारी प्राप्त करती हैं। परन्तु वास्तव में इन फर्मों को अपने संचालन की स्थितियों के बारे में अपर्याप्त और गलत ज्ञान होता है।
3. **फर्म एमसी और एमआर के बारे में चिंतित नहीं हैं**—वास्तव में, फर्म सीमान्त राजस्व और सीमान्त लागत की गणना के बारे में असंबद्ध हैं और दो शब्दों से अनजान होते हैं। कुछ फर्मों को माँग और सीमान्त राजस्व के वक्र के बारे में कोई जानकारी नहीं होती है और उनमें से अधिकांश को लागत संरचना के बारे में कोई पर्याप्त जानकारी नहीं होती है।
4. **स्थैतिक सिद्धान्त**—फर्म का नव-शास्त्रीय सिद्धान्त प्रकृति में स्थिर है जो छोटी अवधि या लम्बी अवधि की अवधि को नहीं बताता है। नव-शास्त्रीय फर्म के समय की सीमा में समरूप और स्वतन्त्र समयावधि होती है। इसमें निर्णय अस्थायी रूप से स्वतन्त्र माने जाते हैं। यह लाभ अधिकतमीकरण सिद्धान्त की एक गम्भीर दोष है।
5. **अल्पाधिकार फर्म के लिए लागू नहीं होता**—आर्थिक सिद्धान्त में, लाभ-अधिकतमीकरण का उद्देश्य पूरी तरह से प्रतिस्पर्धी या एकाधिकार प्रतिस्पद्धी फर्मों के लिए रखा गया है। जबकि, अल्पाधिकार फर्मों के खिलाफ आलोचना के कारण उन्हें छोड़ दिया जाता है और इस प्रकार अर्थशास्त्रियों ने फर्म के सिद्धान्त में अलग-अलग उद्देश्यों को रखा है जो या तो एकाधिकार या कुलीनतन्त्र हैं।
6. **संदिग्ध वैधता**—यह मानने का कोई विशेष कारण नहीं है कि सभी व्यवसायी एक ही लक्ष्य निर्धारित करते हैं और इस प्रकार बिक्री अधिकतमीकरण, बाजार भागीदारी का विस्तार आदि का लक्ष्य रखते हैं, इस प्रकार वास्तविक व्यवसाय के संदर्भ में लाभ अधिकतमीकरण धारणा पर्याप्त वैधता रखती है।
7. **आधुनिक व्यवसाय की दुनिया में लागू नहीं**—आधुनिक व्यापार की दुनिया में, पारम्परिक सिद्धान्त मानता है कि उनके मालिकों द्वारा प्रबन्धित फर्म वैध नहीं हैं और ये फर्म प्रबन्धकों द्वारा प्रबन्धित जटिल संगठन हैं जो वेतनभोगी कर्मचारी हैं जिनकी रुचि या संलयन अक्सर नहीं हो सकते हैं, लेकिन अलग-अलग उन अंशधारकों से जो अधिकतम लाभ चाहते हैं।
8. **प्रबन्धकों की भविष्यवाणी शक्ति का अभाव**—फर्म प्रबन्धकों की अनुमति शक्ति की कमी के कारण अपने लक्ष्य के रूप में कम से अधिकतम लाभ के साथ समझौता करते हैं जो जोखिम-झिझक है। उचित इंट्रा-फर्म सम्प्रेषण की कमी के कारण, फर्म अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए प्रतिबंधित होते हैं।

प्र.8. उद्योग से आप क्या समझते हैं? उद्योग के विकास एवं वृद्धि के चरणों की व्याख्या करते हुए उद्योग की प्रकृति का भी वर्णन कीजिए।

उत्तर

उद्योग
(Industry)

एक उद्योग को सभी व्यावसायिक प्रक्रियाओं एवं आर्थिक गतिविधियों के एकीकरण के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो उत्पादों एवं सेवाओं के विकास, निर्माण तथा प्रसंस्करण से सम्बन्धित हैं। यह कच्चे माल को उपयोगी एवं मूल्यवान उत्पादों में परिवर्तित करने के लिए यांत्रिक एवं मानव शक्ति का उपयोग करता है। प्राय: उद्योग को समान उत्पादों एवं सेवाओं के उत्पादन में शामिल व्यावसायिक उद्योगों के समूह के रूप में निरूपित किया जाता है। एक उद्योग को किसी भी दीर्घ पैमाने की व्यावसायिक गतिविधि के रूप में भी जाना जाता है। यह एक वर्गीकरण है जो उन कम्पनियों के समूह को संदर्भित करता है जो उनकी प्राथमिक व्यावसायिक गतिविधियों के सन्दर्भ में सम्बन्धित है।

वेबस्टर्स न्यू वर्ल्ड डिक्शनरी के अनुसार, उद्योग से तात्पर्य "सामूहिक रूप से उत्पादक उद्योगों का निर्माण करना है जो विशेष रूप से कृषि से भिन्न होता है।"

एक व्यावसायिक उद्यम की सभी उत्पादन गतिविधियाँ औद्योगिक उपक्रम के अन्तर्गत आती हैं। इसमें मुख्य रूप से उपयोगी उत्पादों का उत्थान, निर्माण तथा प्रसंस्करण शामिल है। इस प्रकार इसे व्यावसायिक गतिविधि की एक मूलभूत श्रेणी के रूप में माना जाता है। अनेक बार उद्योग का प्रतिनिधित्व उपभोक्ता टिकाऊ वस्तु के रूप में किया जाता है या एयर कंडीशनर जैसी विशिष्ट व्यावसायिक गतिविधि के रूप में किया जाता है। सरल शब्दों में, एक उद्योग समान व्यवसायों के एक समूह का प्रतिनिधित्व करता है।

उदाहरण के लिए—वाहनों के निर्माण में शामिल विभिन्न व्यावसायिक इकाइयाँ, चाहें दोपरिया, वाणिज्यिक या भारी ट्रक हों, एक साथ आटोमोबाइल उद्योग के रूप में जाने जाएंगे। इसी प्रकार बैंकिंग उद्योग, दूरसंचार उद्योग, फिल्म उद्योग आदि जैसे—विभिन्न क्षेत्रों में अनेकों अन्य उद्योग स्थित हैं।

उद्योग का विकास एवं वृद्धि
(Development and Growth of Industry)

उद्योग के विकास एवं वृद्धि के विभिन्न चरण इस प्रकार हैं—

1. **हस्तशिल्प प्रणाली**—हस्तशिल्प प्रणाली उद्योगों का प्रथम चरण था। यह वस्तुओं का निर्माण करता था। स्थानीय व्यक्तियों की आवश्यकताओं को गाँव के कारीगरों द्वारा पूरा किया जाता था। किसानों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, ये कारीगर सामान्यत: आपूर्ति की गई वस्तुओं के विनिमय स्वरूप वार्षिक भुगतान के आधार पर कार्य करते हैं।
   हस्तशिल्प प्रणाली के अन्तर्गत उत्पादन प्रक्रियाएँ अत्यधिक सरल थी। कारीगरों द्वारा सस्ते, कच्चे तथा सरल औजारों का उपयोग किया जाता था। पूरा कार्य हाथों से होता था मशीनों का प्रयोग कम ही होता था। उद्योग द्वारा पूँजी की अधिक आवश्यकता नहीं थी क्योंकि अधिकांश कार्य मात्र हाथों से किए जाते थे। उद्योग में एक प्रारम्भिक संगठन था तथा संगठन की इकाई कारीगर का परिवार था। श्रमिकों का वितरण लघु पैमाने पर प्रारम्भ किया गया था और यह सरल प्रकार का था क्योंकि उत्पादन मुख्य रूप से लघु स्थानीय विपणन के लिए किया जाता था।
2. **संघ (श्रेणी)**—संघ या श्रेणी का विकास उद्योगों के विकास का अगला चरण था। कार्य करने की विधि एवं उसका संगठन वही था जो हस्तशिल्प प्रणाली में था। स्वयं के व्यावसायिक सम्बन्धों को सुरक्षित रखने एवं वृद्धि करने के लिए, स्थानीय क्षेत्र के दस्तकार को हस्तशिल्प श्रेणी नामक एक संघ में संयोजित किया गया था। ऐसे संघों का मुख्य उद्देश्य कारीगरों के उत्पादन मानकों एवं प्रतिष्ठा की रक्षा करना था।
   शिल्पकला का निरीक्षण करने के लिए शिल्प के कारीगरों द्वारा एक अधिकारी को नियुक्त किया जाता था। इसके द्वारा औद्योगिक विनियमन की एक प्रणाली स्थापित की गई थी। वस्त्रों एवं चमड़े के कार्य से सम्बन्धित शिल्प-पुरुष संघ बनाने के लिए संघ में शामिल होने लगे। गैर सदस्यों की अक्षमता एवं खराब कौशल-स्तर के लिए संघ को दोषी ठहराना अत्यधिक कठिन था, इसलिए इसकी सदस्यता अनिवार्य कर दी गई।
3. **घरेलू प्रणाली**—घरेलू व्यवस्था में व्यापारियों द्वारा यह आवश्यक पाया गया कि वस्तुओं का निर्माण विपणन की आवश्यकताओं के अनुसार किया जाए तथा विभिन्न स्थानों पर विपणन किया जाए। उत्पादों की आपूर्ति को पूर्ण करने के

लिए व्यापारियों ने श्रमिकों एवं कारीगरों के साथ अनुबन्ध करना प्रारम्भ कर दिया। प्रारम्भ में कार्य के स्थान पर आवश्यक उपकरण एवं कच्चे माल की व्यवस्था श्रमिकों या कारीगरों द्वारा की जाती थी तथा व्यापारी उत्पादित उत्पादों को प्राप्त करने के लिए निश्चित अंतराल पर श्रमिक के स्थान पर जाते थे।

जैसे-जैसे विपणन में उत्पादों की मांग में वृद्धि हुई, कारीगरों के लिए इतनी दीर्घ मात्रा में कच्चे माल की व्यवस्था करना असम्भव हो गया। इसलिए, व्यापारियों ने उत्पादन की सुविधा के लिए कारीगरों को उनके दरवाजे पर कच्चे माल की व्यवस्था तथा आपूर्ति करना प्रारम्भ कर दिया। इसे घरेलू उत्पादन प्रणाली कहा जाता था।

इस चरण में उद्यमशीलता की वृद्धि सरलता से दिखाई देती है। अनेक उत्पादकों में घरेलू प्रणाली का निरीक्षण करने के पश्चात् श्रम विभाजन की वकालत एडम स्मिथ द्वारा की गई है। यद्यपि श्रमिक कच्चे माल एवं आवश्यक उपकरणों की आपूर्ति के लिए व्यापारी पर निर्भर करता है, फिर भी यह उसकी प्रतिभा या कुशलता है, जिसका उपयोग वह उत्पाद बनाने के लिए करता है। इसलिए श्रमिक के पास स्वयं की उत्पादन प्रणाली प्रारम्भ करने का अवसर होता है।

उद्योग की प्रकृति (Nature of Industry)

निम्नलिखित बिन्दु उद्योग की प्रकृति को दर्शाते हैं—

1. **विपणन का आकार एवं विकास दर**—एक उद्योग के भीतर कार्य करने वाले व्यवसायों की कुल संख्या को विपणन के आकार के रूप में जाना जाता है। उद्योग की प्रकृति को निर्धारित करने के लिए विपणन के आकार एवं विकास दर की पहचान महत्त्वपूर्ण है। इस उद्देश्य के लिए एक उद्यमी को ज्ञात होना चाहिए कि उद्योग स्थिर है, बढ़ रहा है या घट रहा है। इसका विश्लेषण व्यावसायिक जीवनचक्र में उद्योग की स्थिति, अर्थात् परिचय, विकास परिपक्वता, स्थिरता तथा गिरावट को देखकर भी किया जा सकता है।
2. **प्रतिस्पर्धियों की संख्या**—किसी उद्योग की प्रकृति का आकलन करने के लिए, संगठनों को उद्योग के प्रतिस्पर्धियों की संख्या एवं आकार ज्ञात होना चाहिए। इसके साथ ही उन्हें अन्य गतिविधियों; जैसे—विलय और अधिग्रहण, अधीनीकरण आदि का भी ज्ञान होना चाहिए।
3. **उत्पाद विशिष्टीकरण की मात्रा**—समग्र औद्योगिक स्थिति को निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण कारकों में से एक उत्पाद विशिष्टीकरण की मात्रा जानना है। यदि किसी उद्योग में सभी उत्पाद समान प्रकार के हैं तो यह प्रतिस्पर्धा के स्तर में वृद्धि करता है। इसलिए एक उद्योग में सभी इकाइयों के लिए विविध उत्पादों का उत्पादन करना आवश्यक है। यह एक ही उद्योग की विभिन्न इकाइयों के मध्य आन्तरिक प्रतिस्पर्धा का विरोध करने में सहायता करता है।
4. **तकनीकी परिवर्तन की गति**—उद्योग जो निरन्तर अंतराल पर तकनीकी परिवर्तन करने के लिए बाध्य है, उन्हें उत्पाद में आवश्यक विकास का पालन एवं कार्यान्वयन करना चाहिए। उदाहरण के लिए, मोबाइल फोन निर्माण उद्योगों में तकनीकी परिवर्तन की तीव्र गति होनी चाहिए अन्यथा वो विपणन में पुराने हो जाएंगे।
5. **उर्ध्वाधर एकीकरण**—उर्ध्वाधर एकीकरण लागू करने वाला उद्योग उत्पादन भिन्नताओं की महत्त्वपूर्ण लागत का कारण बन सकता है। इस प्रकार संगठनों को पूर्ण एवं आंशिक एकीकरण के पेशेवरों एवं विपक्षों का ज्ञान होना चाहिए। इसी प्रकार प्रतियोगियों द्वारा लागू किए गए एकीकरण के प्रकार के बारे में भी ज्ञात होना चाहिए। आंशिक या गैर-एकीकृत औद्योगिक इकाइयों की तुलना में पूर्ण रूप से एकीकृत औद्योगिक इकाई में विभिन्न प्रतिस्पर्धी विशेषताएँ होगी।
6. **पैमाने की अर्थव्यवस्थाएँ**—पैमाने की अर्थव्यवस्थाओं को जानना संगठन के लिए भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। यह क्रय, उत्पादन, विपणन आदि जैसी गतिविधियों से सम्बन्धित है। उच्च पैमाने के संचालन को लागू करने से पूर्व लागत लाभ का उचित विश्लेषण किया जाना चाहिए। सभी औद्योगिक इकाइयों को यह समझना चाहिए कि उत्पादन लागत को न्यूनतम करके ही उच्च लाभ प्राप्त किया जा सकता है, जिससे उच्च प्रतिस्पर्धा होती है।

प्र.9. आधुनिक व्यवसाय का परिचय दीजिए तथा इसकी प्रमुख विशेषताओं का भी उल्लेख कीजिए।

उत्तर

आधुनिक व्यवसाय
(Modern Business)

एक व्यवसाय जिसमें विभिन्न पृष्ठभूमि के व्यक्तियों का एक साथ आना शामिल है तथा जिनके पास किसी सामान्य लक्ष्य या उद्देश्य की पूर्ति के लिए भिन्न-भिन्न कौशल हैं, आधुनिक व्यवसाय के रूप में जाने जाते हैं। यह वैश्विक उत्पादों एवं ब्राण्डों के

निर्माण पर केन्द्रित है। वैश्विक मांगों का विश्लेषण करने के पश्चात् एक उत्पाद विकसित किया जाना चाहिए। इस पहलू को अनेकों कम्पनियाँ स्वयं की नई उत्पाद विकास प्रक्रिया के दौरान ध्यान में रखती हैं, जबकि अनेक कम्पनियाँ ऐसी हैं जो केवल वैश्विक प्रसिद्धि एवं प्रशंसा प्राप्त करने पर ध्यान केन्द्रित करती है। इसके अतिरिक्त जब कोई उत्पाद अपेक्षित रूप से वितरित करने में असमर्थ होता है तो इससे ग्राहकों में निराशा हो सकती है। विनिर्माण एवं संगठनों को यह समझ में आ गया कि पैमाने की अर्थव्यवस्थाओं को प्राप्त करने के लिए आधुनिक व्यावसायिक रणनीतियों के आधार पर प्रबन्धन नीतियों को तैयार करने की आवश्यकता होती है। विज्ञापन, दृश्य तथा पैकेजिंग जैसी सम्बन्धित औद्योगिक गतिविधियों के सम्बन्ध में संगठन स्वयं की दक्षता के स्तर में वृद्धि कर सकते हैं। ऐसे संगठनों द्वारा सामान्य प्रौद्योगिकी, कच्चे माल तथा उत्पाद विनिर्देशों के उपयोग से होने वाले विभिन्न अन्य लाभ भी प्राप्त किए जाते हैं।

ऐसे विविध व्यावसायिक वातावरण में विश्वव्यापी उपस्थिति बनाए रखना सरल नहीं है। एक सरल उपाय यह हो सकता है कि विभिन्न राष्ट्रों या देशों में सामान्य उत्पाद वरीयताओं की पहचान करके मूल उत्पाद में सामान्य संशोधन किया जाए। ऐसा करके संगठन स्वयं के उत्पादों को स्थानीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय दोनों विपणनों के लिए एक साथ अधिक प्रभावी बना सकते हैं।

दूसरी ओर, व्यावसायिक रणनीतियाँ, जनशक्ति संशाधनों, उत्पादन के कारकों एवं पूँजी के आवागमन के प्रबन्धन से भी सम्बन्धित है। उत्पादन के कारकों, मानव संसाधनों तथा पूँजी प्रवाह को प्रभावी रूप से प्रबन्धित करना भी व्यावसायिक रणनीतियों से सम्बन्धित है।

लगभग प्रत्येक प्रकार की औद्योगिक प्रक्रिया में सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोग के कारण रणनीति तथा रणनीतियों का विकास सम्भव हुआ है। किसी भी नए उत्पाद डिजाइन या विचार के बारे में किसी भी सूचना का प्रसार इंटरनेट के प्रारम्भ होने के साथ सार्वभौमिक रूप से सम्भव हो गया है। परिणामस्वरूप, रणनीतियों उत्पाद या सुविधाओं के विकास का समर्थन करने के लिए, संचार की बहुत तीव्र गति की आवश्यकता होती है। इसलिए आधुनिक व्यापार रणनीति एवं कार्यनीति ही प्रभावी प्रमाणित होगी। यह भी सुनिश्चित करेगा कि संगठनात्मक एवं विभागीय लक्ष्यों को पूरा किया जाए।

आधुनिक व्यापार रणनीतियों का बल संचार के आधुनिक उपकरणों, जैसे—ई-मेल एवं वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग को नियोजित करने पर है। यह ग्राहकों के साथ तथा संगठन के अन्दर संचार में वृद्धि करता है। इसके अतिरिक्त, आधुनिक व्यावसायिक रणनीतियाँ अनेकों दीर्घ बहराष्ट्रीय कम्पनियाँ; जैसे—टाइम, माइक्रोसॉफ्ट, इंटेल, सोनी आदि में स्वीकृत की जा रही परियोजना प्रबन्धन तकनीकों का आधार है, इससे पूरे व्यापार में सुसंगति तथा अर्थव्यवस्था प्राप्त करने में सहायता प्राप्त होती है।

संगठन आधुनिक समय में पूर्व से ही स्थापित प्रबन्धन विधियों के अतिरिक्त अद्वितीय एवं रचनात्मक रणनीति तैयार करने पर ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं। मर्क एवं ग्लैक्सो वेल्कम जैसे विलय एवं अधिग्रहण के माध्यम से विकसित संगठनों ने स्वयं की अन्तर्राष्ट्रीय उत्पाद पद्धतियों के पुनर्गठन के लिए आधुनिक व्यापार रणनीतियों का उपयोग किया है।

दीर्घ संगठनों ने आधुनिक क्रय रणनीतियों के माध्यम से विश्व के विभिन्न भागों में न्यूनतम समय में तथा न्यूनतम सम्भव लागत पर उत्पादन केन्द्रों का निर्माण एवं प्रबन्धन किया है। आधुनिक व्यापार रणनीतियों का उचित कार्यान्वयन विश्व के विविध देशों के मध्य उपस्थित मतभेदों को अत्यधिक उचित प्रकार से अवशोषित कर सकता है। ऐसी रणनीतियाँ ज्ञान-आधारित नवाचार में वृद्धि करती हैं, तथा प्रतिबद्धताओं एवं ग्राहक संतुष्टि मानकों के विकास में योगदान करती है।

आधुनिक व्यवसाय की विशेषताएँ
(Characteristics of Modern Business)

व्यवसाय के नवीन वातावरण से उत्पन्न व्यवसाय की कुछ आधुनिक विशेषताएँ निम्नानुसार हैं जो व्यवसाय के आधुनिक स्वरूप को स्पष्ट करती हैं—

1. **बहुवर्गीय संस्था**—आधुनिक व्यवसाय एक बहुवर्गीय संस्था है। इसकी स्थापना, संचालन एवं सफलता में किसी एक व्यक्ति या वर्ग का ही हाथ नहीं होता है, बल्कि यह अनेक वर्गों के सामूहिक प्रयासों का परिणाम है। इन वर्गों में हम साहसी, विनियोजक, प्रबन्धक, कर्मचारी, सरकार, जनसामान्य आदि को सम्मिलित कर सकते हैं। ये सभी वर्ग व्यवसाय की सफलता को प्रभावित करते हैं तथा व्यवसाय को इन सभी के हितों में समन्वय स्थापित करना पड़ता है।
2. **सामाजिक-आर्थिक क्रिया**—आज व्यवसाय शुद्ध आर्थिक क्रिया को सामाजिक-आर्थिक क्रिया बनता जा रहा है। आधुनिक युग में व्यवसायी केवल निजी लाभ के लिए ही कार्य नहीं करते हैं, बल्कि उन्हें सामाजिक हितों के लिए भी कार्य करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त, आज व्यवसाय को 'समाज का अंग' (Organ of society) भी माना जाने लगा है। यह

समाज में, समान साधनों से समाज के हित के लिए, समाज के लोगों द्वारा संचालित किया जाता है। अत: यह एक ऐसी संस्था बनती जा रही है जो सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति से ही आर्थिक । उद्देश्यों की पूर्ति में विश्वास करती है।

3. **विभिन्न आर्थिक क्षेत्र**—आधुनिक व्यवसाय अनेक क्षेत्रों के व्यवसायियों द्वारा संचालित किया जाता है। अत: निजी, सार्वजनिक, सहकारी, संयुक्त क्षेत्र तथा विदेशी सहयोग के उपक्रम आदि सभी व्यवसाय के क्षेत्र में सम्मिलित हो गए हैं।
4. **संस्थागत ढाँचा**—आधुनिक व्यवसाय की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसका संस्थागत ढाँचा बन चुका है। व्यवसाय की प्रारम्भिक अवस्थाओं में लोग व्यक्तिगत एवं पारिवारिक स्तर पर ही व्यावसायिक कार्य करते थे। किन्तु, आज उन्हीं कार्यों को करने के लिए संस्थागत ढाँचा तैयार किया जाता है। आज प्राय: छोटे व्यवसाय करने से पूर्व भी उसे संस्थागत रूप में स्थापित किया जाता है और उसे एक औपचारिक नाम दिया जाता है। इसकी स्थापना भी विधिवत् रूप से ही की जाती है।
5. **ग्राहक-सृजन एवं सन्तुष्टि**—आधुनिक व्यवसाय की सफलता ग्राहक-सृजन एवं उनकी सन्तुष्टि पर ही निर्भर करती है। **पीटर ड्रकर** का मानना है कि "व्यवसाय की एक ही वैध परिभाषा है, ग्राहक सृजन करना।" उन्होंने एक अन्य जगह यह भी लिखा है कि "ग्राहक व्यवसाय की आधारशिला है और वही उसके अस्तित्त्व को बनाए रखता है।" वस्तुत: आधुनिक व्यवसायी ग्राहकों के सृजन एवं उनकी सन्तुष्टि को परम आवश्यक मानने लगे हैं।
6. **सामाजिक दायित्व**—आधुनिक युग में व्यवसाय के सामाजिक दायित्व की अवधारणा का व्यापक प्रचार-प्रसार हो रहा है। सामाजिक दायित्व की विचारधारा व्यवसायी से यह आशा कर रही है कि वे अपने सभी व्यावसायिक कार्यों एवं निर्णयों का सामाजिक दृष्टि से मूल्यांकन करें। अत: व्यवसायी को अपने प्रत्येक निर्णय एवं कार्य से पूर्व अपने उनसे समाज पर पड़ने वाले प्रभावों को देखना पड़ता है। वे समाज के किसी भी वर्ग के हितों की अनदेखी करने की जोखिम उठाने की स्थिति में प्रतीत नहीं होते हैं।
7. **विश्वव्यापी व्यवसाय**—आधुनिक व्यवसाय विश्वव्यापी हो गया है। अब प्रत्येक देश अन्य सभी देशों के साथ व्यवसाय करने लगे हैं। परिणामस्वरूप, कई बहुराष्ट्रीय निगमों तथा भूमण्डलीय/विश्वव्यापी अथवा राष्टेतर निगमों का जन्म एवं विकास होता जा रहा है।

   यहाँ बहुराष्ट्रीय निगम/कम्पनी (Multinational Corporation or MNC) से तात्पर्य ऐसी व्यावसायिक संस्था से है जिसका मुख्यालय किसी एक देश में होता है तथा जिसका व्यवसाय स्वयं के देश के अतिरिक्त दो या अधिक अन्य देशों में भी होता है।
8. **पूँजी की प्रधानता या गहनता**—आधुनिक व्यवसाय पूँजी-प्रधान हो गया है और मानव श्रमिकों का उपयोग कम होता जा रहा है। आधुनिक यन्त्रों एवं मशीनी श्रमिकों (Robots, computers etc.) का उद्योग एवं वाणिज्य में उपयोग बढ़ता जा रहा है।
9. **संयोजनों की बढ़ती प्रवृत्ति**—आधुनिक व्यावसायिक जगत् में व्यावसायिक संयोजन की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। अनेक बड़ी संस्थाओं ने छोटी-छोटी कम्पनियों या रुग्ण इकाइयों को अपने साथ मिला लिया (Amalgamation or merger) है। कई औद्योगिक घरानों ने तो बड़ी-बड़ी कम्पनियों तक को हथिया लिया है।
10. **सामाजिक परिवर्तन का उपकरण—पीटर एफ० ड्रकर** का कथन है कि "व्यवसाय सामाजिक परिवर्तन का यन्त्र या उपकरण है।" वस्तुत: व्यवसाय अपने शोध, विकास तथा नवाचार कार्यक्रमों से समाज को नवीन वस्तुएँ उपलब्ध कराता है। वह रूढ़ियों, दूषित परम्पराओं तथा भ्रान्तियों से मुक्ति दिलाता है। इतना ही नहीं, व्यवसाय समाज को नई जीवन-शैली तथा नवीन मन्यताएँ स्थापित करने में भी योगदान देता है।
11. **सरकार द्वारा नियमन एवं नियन्त्रण**—व्यवसाय समाज की एक ऐसी संस्था है जिसका नियमन एवं नियन्त्रण सरकार द्वारा किया जाता है। सरकार ने इस हेतु अनेक कानून तथा नियम बनाए हैं तथा नीतियाँ निर्धारित की हैं। इनके माध्यम से सरकार उत्पादन की मात्रा तथा किस्म, उत्पादन विधियाँ, आयात-निर्यात, व्यवसाय संगठनों की स्थापना, विस्तार, उपभोक्ताओं के संरक्षण आदि का नियमन एवं नियन्त्रण करती है।
12. **व्यावसायिक वातावरण**—आधुनिक व्यवसाय का एक महत्त्वपूर्ण लक्षण यह भी है कि यह एक वातावरण या पर्यावरण में कार्य करता है। व्यवसाय का अपना आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार का वातावरण होता है। इसके विभिन्न साधन कर्मचारी, संगठन, विभाग, प्रबन्धकीय नीतियाँ आदि इसके आन्तरिक वातावरण का निर्माण करते हैं। ग्राहक, समाज,

सरकार, प्रतिद्वन्द्वी संस्थाएँ, आयात-निर्यात परिस्थितियाँ, धर्म, राजनीति आदि मिलकर व्यवसाय के बाह्य वातावरण का निर्माण करते हैं। व्यवसाय इन दोनों ही प्रकार के वातावरण में कार्य करता है।

13. **ई-व्यवसाय का विस्तार**—आधुनिक युग में ई-व्यवसाय का विकास एवं विस्तार हो रहा है। इन्टरनेट के माध्यम से क्रय-विक्रय के प्रस्ताव किए जाने लगे हैं या बोली लगाई जाने लगी है तथा सौदे किए जाने लगे हैं। आज दुनिया में हजारों करोड़ रुपयों का व्यापार इन्टरनेट के माध्यम से हो रहा है।
14. **प्रबन्धकीय दृष्टि से विशेषताएँ**—आधुनिक बड़े व्यवसाय की प्रबन्धकीय दृष्टि से कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नानुसार प्रकट होती हैं—
    (i) आधुनिक बड़े व्यवसाय की स्थापना तथा संचालन में तीन प्रमुख वर्गों का हाथ देखा जा सकता है। वे हैं—साहसी, स्वामी तथा प्रबन्धक।
    (ii) आधुनिक व्यावसायिक जगत में जाने-माने व्यवसायियों के साथ-साथ साहसियों की नवीन पीढ़ी भी देखी जा सकती है। इनमें प्रबन्धकीय तथा तकनीकी ज्ञान प्राप्त नवयुवक, गैर-निवासी भारतीय आदि प्रमुख हैं।
    (iii) प्रत्येक व्यवसायी के लिए अब कुछ प्रबन्धकीय कार्य करने आवश्यक हो गए हैं।
    (iv) आधुनिक बड़े व्यवसायों में परम्परागत मुनीमों तथा प्रबन्धकों का स्थान पेशेवर लेखाकार एवं प्रबन्धक लेते जा रहे हैं।
    (v) अब प्रत्येक व्यवसायी को उस संस्था के कार्यों का व्यवस्थित संगठन करना पड़ता है। उसे कर्मचारियों को अभिप्रेरित करना पड़ता है तथा उनके कार्यों का नियन्त्रण भी करना पड़ता है।
    (vi) सभी व्यवसायी न्यूनतम लागत पर अधिकतम कुशलता के साथ उद्देश्यों की प्राप्ति करने के लिए प्रयास करते हैं।
    (vii) सभी व्यवसायों में आवश्यकतानुसार दक्ष एवं सामान्य कर्मचारी नियुक्त किए जाते हैं।
    (viii) सभी बड़े व्यवसायों में कार्यों का कुशलतापूर्वक संचालन करने के लिए कुछ कार्यात्मक विभाग बनाए जाते हैं। इनमें प्राय: उत्पादन, विपणन, लेखाकर्म शोध एवं विकास आदि प्रमुख विभाग होते हैं।
    (ix) सभी व्यवसायों के संचालन में अब कम्प्यूटरीकरण (Computerisation) को अपनाया जाने लगा है।

प्र.10. व्यवसाय में सफलता के मूल तत्त्व कौन-से होने चाहिए? व्याख्या कीजिए।

उत्तर

व्यवसाय में सफलता के मूल तत्त्व
(Fundamental Elements for Success of Business)

आधुनिक व्यवसाय इतना जटिल और प्रतिस्पर्धापूर्ण है कि इसमें सफलता के लिए विभिन्न तत्त्वों का होना आवश्यक है। ये तत्त्व निम्नलिखित हैं—

1. **कुशल नियोजन**—स्पष्ट एवं पूर्वनिश्चित उद्देश्य के बिना कोई भी व्यवसाय सफल नहीं हो सकता। स्पष्ट लक्ष्यों, उचित नीतियों और उनकी प्राप्ति के लिए आवश्यक योजनाएँ बनाना एक कुशल नियोजन व्यवस्था द्वारा ही सम्भव है। उचित नियोजन के द्वारा भविष्य में होने वाली घटनाओं का पूर्वानुमान करके आकस्मिकताओं का सामना सफलतापूर्वक किया जा सकता है।
2. **सुदृढ़ संगठन**—विभिन्न व्यावसायिक क्रियाओं का उचित विभाजन और संगठन होना चाहिए। व्यवसाय के विभिन्न विभागों और तत्त्वों में पूर्ण सामंजस्य तथा समन्वय होना चाहिए ताकि व्यवसाय के लक्ष्यों की प्राप्ति हो सके। स्वामित्व का स्वरूप, संगठन व्यवस्था और विभागीकरण प्रणाली उपक्रम के उद्देश्यों, आकार आदि के अनुरूप होना आवश्यक है।
3. **उचित आकार एवं कार्य-स्थल**—फर्म का आकार तथा कार्य-स्थल ऐसा होना चाहिए जिससे कम लागत पर उच्च किस्म का उत्पादन किया जा सके।
4. **उत्तम संयन्त्र, उपकरण एवं भवन**—सुव्यवस्थित कार्य तभी सम्भव है जबकि फर्म के पास उत्तम संयन्त्र, अच्छा भवन और आधुनिक उपकरण हों। इनके अभाव में प्रबन्ध की कुशलता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
5. **कुशल श्रमशक्ति**—एक व्यावसायिक उपक्रम की सफलता अधिकतर उसमें काम करने वाले व्यक्तियों की कार्यकुशलता एवं लगन पर आधारित होती है। अत: कर्मचारियों के चयन, प्रशिक्षण, देख-रेख, मजदूरी, भुगतान, श्रम कल्याण आदि की उचित व्यवस्था आवश्यक है।

6. **पर्याप्त वित्त**—वित्त किसी भी व्यवसाय का जीवन रक्त (Life blood) है और पर्याप्त वित्त के अभाव में कुशल नियोजन तथा उत्तम संगठन बेकार है। व्यवसाय की दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त वित्त की व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक है। वित्त की मात्रा आवश्यकताओं से कम या अधिक नहीं होनी चाहिए और अथवा साधनों से इकट्ठी करनी चाहिए। वित्तीय नियोजन एवं नीतियाँ दूरदर्शिता पर आधारित होंगी तो व्यवसाय में विस्तार का सामर्थ्य रहेगा।
7. **सुव्यवस्थित कार्यालय**—एक कुशल कार्यालय सफल व्यावसायिक संगठन का आवश्यक तत्त्व है। डिक्सी के अनुसार, "व्यवसाय में कार्यालय का वही स्थान है जो घड़ी में मुख्य स्प्रिंग का होता है।" व्यावसायिक कार्यालय की कार्य-प्रणाली कुशल बनाने के लिए उपयुक्त लिपिक, कुशल कार्यालय अधीक्षक तथा आधुनिक मशीनों का प्रयोग किया जाता है।
8. **सुदृढ़ वितरण व्यवस्था**—उत्पादित वस्तुओं को उपभोक्ताओं तक सही मात्रा तथा सही समय पर पहुँचाने के लिए उचित वितरण प्रणाली आवश्यक है। विपणन तथा वितरण के ऐसे तरीके अपनाने चाहिए जिनसे कम लागत पर माल की बिक्री की जा सके तथा माल की मांग और बिक्री बढ़ सके। इसके लिए विज्ञापन तथा विक्रय-कला के वैज्ञानिक ढंगों और साधनों का उपयोग करना चाहिए। माल की क्रय-प्रणाली भी ऐसी होनी चाहिए कि सही समय और उचित मूल्य पर माल की सही मात्रा उपलब्ध की जा सके। ग्राहकों की सन्तुष्टि एवं व्यावसायिक ख्याति किसी व्यवसाय की सफलता के आधार-स्तम्भ हैं और इसके लिए उत्तम वितरण व्यवस्था आवश्यक है।
9. **कुशल प्रबन्ध एवं प्रगतिशील नेतृत्व**—कुशल प्रबन्ध व्यावसायिक सफलता की कुंजी है। साधनों का उचित नियोजन, निर्देशन एवं नियन्त्रण करना आवश्यक है। व्यवसाय के विभिन्न भागों के मध्य उचित और लचीला समन्वय कुशल प्रबन्ध के बिना असम्भव है। दूरदर्शी एवं प्रगतिशील नेतृत्व व्यवसाय से सम्बन्धित विभिन्न वर्गों से सहयोग प्राप्त करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। किसी व्यवसाय का प्रबन्ध तभी प्रभावशाली बन सकता है जब इसके प्रबन्धकों का व्यक्तित्त्व प्रभावशाली और उनका चरित्र उच्च कोटि का हो। उनका व्यवहार सद्भावपूर्ण और सजग होना चाहिए।
10. **शोध सम्बन्धी सुविधाएँ**—आधुनिक व्यवसाय में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। व्यवसाय की लगातार सफलता के लिए उत्पादन, वितरण आदि की कार्य प्रणाली में निरन्तर सुधार आवश्यक है। नवीन एवं श्रेष्ठतर तकनीकों का पता लगाने के लिए निरन्तर शोध तथा विकास आवश्यक है। इसीलिए बड़ी-बड़ी फर्मों ने अनुसन्धान एवं विकास के लिए पृथक् विभाग तथा शोधशालाएँ स्थापित की हैं।

प्र.11. व्यापार, वाणिज्य तथा उद्योग में क्या अन्तर्सम्बन्ध होता है? समझाइए।

उत्तर

व्यापार, वाणिज्य तथा उद्योग में अन्तर्सम्बन्ध
(Inter-relationship of Trade, Commerce and Industry)

यद्यपि व्यापार, वाणिज्य तथा उद्योग तीनों शब्दों का अर्थ भिन्न-भिन्न है परन्तु फिर भी ये तीनों एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। वाणिज्य और उद्योग दोनों ही व्यवसाय के दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग हैं। ये दोनों एक दूसरे पर निर्भर हैं। वाणिज्य उद्योग को कच्चा माल व साजो-सामान, जैसे उत्पादन की मशीन व उपकरण उपलब्ध कराता है जिससे वे उत्पादन कर सकें। औद्योगिक उत्पादन के दौरान भिन्न-भिन्न प्रकार की क्षतियों से बचाने के लिए बीमा कम्पनियाँ अपनी सेवाएँ प्रदान करती हैं, और जब तक माल बिक न जाये, भण्डारगृह इस माल को सुरक्षित रखते हैं। माल के शीघ्र विक्रय के लिए विज्ञापन व प्रचार का प्रयोग किया जाता है। उत्पादन-चक्र को बिना रोक-टोक चलाने के लिए वित्त की आवश्यकता पड़ती है और यह आवश्यकता बैंक पूरा कर देते हैं।

वाणिज्य यदि उद्योगों का सहायक है तो उद्योग वाणिज्य का आधार। व्यापार करने के लिए आवश्यक वस्तुएँ और सेवाएँ उद्योगों द्वारा ही उत्पन्न की जाती हैं, या बनाई जाती हैं। उनके अभाव में व्यापार की कल्पना ही अर्थहीन है। यदि व्यापार ही नहीं होगा तो व्यापार की सहायक क्रियाएँ; जैसे—परिवहन, बीमा, बैंक व विज्ञापन का तो प्रश्न ही नहीं उठता है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं यदि व्यापार वाणिज्य का अंग है तो उद्योग उसका आधार है। इस कथन को निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है—

1. **व्यापार वाणिज्य का अंग है**—वस्तुओं के उत्पादन सम्बन्धी क्रियाएँ उद्योग के अन्तर्गत आती हैं तथा उनके वितरण-सम्बन्धी क्रियाएँ वाणिज्य के अन्तर्गत आती हैं जिसका प्रमुख अंग व्यापार है। **इवलिन थॉमस** (Evelyn Thomas) के अनुसार, "वाणिज्यिक धन्धे माल के क्रय-विक्रय, वस्तुओं के विनिमय तथा तैयार माल के वितरण से

सम्बन्धित होते हैं।'' उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि क्रय-विक्रय का कार्य वाणिज्यिक क्रियाओं में सम्मिलित है तथा क्रय-विक्रय ही व्यापार कहलाता है। अर्थात् व्यापार के अन्तर्गत वस्तुओं का क्रय-विक्रय ही आता है, सहायक सेवाएँ (परिवहन, संचार, बीमा, बैंक, गोदाम आदि) इसमें सम्मिलित नहीं हैं। ये सहायक सेवाएँ वाणिज्य में सम्मिलित होती हैं। व्यापार तो वाणिज्य का केन्द्र-बिन्दु है, जिसके चारों तरफ अन्य क्रियायें चक्कर लगाती हैं। इस प्रकार व्यापार वाणिज्य का प्रमुख अंग है तथा इसके बिना वाणिज्य का अस्तित्त्व ही सम्भव नहीं है।

जेम्स स्टीफेन्सन (James Stephenson) के अनुसार, भी वस्तुओं के विनिमय में आने वाली व्यक्ति सम्बन्धी बाधाओं को दूर करने वाली क्रिया वाणिज्य का ही अंग है। व्यक्ति सम्बन्धी बाधा से तात्पर्य स्वयं व्यापार से है जो क्रय-विक्रय द्वारा दूर होती है अर्थात् व्यापार द्वारा अधिकार उपयोगिता के सृजन द्वारा यह बाधा दूर की जाती है। अत: स्पष्ट है कि वाणिज्य व्यवसाय का तथा व्यापार वाणिज्य का एक अंग अथवा भाग है।

2. **उद्योग वाणिज्य का आधार है**—वाणिज्य व उद्योग दोनों ही व्यवसाय के दो महत्त्वपूर्ण अंग हैं। वाणिज्य में व्यापार तथा व्यापार सहयोगी सेवाएँ सम्मिलित होती हैं तथा यह वस्तुओं के वितरण की बाधाओं को दूर करता है तथा वितरण को सम्भव बनाने की व्यवस्था करता है। उद्योग व्यावसायिक क्रिया का वह अंग है जिसमें वस्तुओं का उत्पादन होता है। उद्योग उपभोक्ता तथा पूँजीगत दोनों प्रकार की वस्तुओं का निर्माण करते हैं। उपभोक्ता वस्तुओं का वितरण उपभोक्ताओं को तथा पूँजीगत वस्तुओं का वितरण उत्पादकों के लिए किया जाता है। परन्तु वस्तुओं के वितरण के लिए यह आवश्यक है कि वितरण के लिए वस्तुएँ उपलब्ध हों। फलत: वितरण के पूर्व वस्तुओं का निर्माण अथवा उत्पादन उद्योग द्वारा होता है। उत्पादन होने पर ही वाणिज्यिक क्रियाओं की वितरण के लिए आवश्यकता होती है। अत: यह कहा जा सकता है कि उद्योग वाणिज्य का आधार है अर्थात् उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं का ही क्रय-विक्रय किया जा सकता है, उद्योग के अभाव में व्यापार की कल्पना नहीं की जा सकती और व्यापार के अभाव में व्यापार की सहायक क्रियाओं.यातायात, भण्डारण, बैंक तथा बीमा, सन्देशवाहन, विज्ञापन तथा संवेष्ठन का तो प्रश्न ही नहीं उठता है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि व्यापार वाणिज्य का अंग है तथा उद्योग इसका आधार है। किन्तु उद्योग तथा वाणिज्य परस्पर भी एक-दूसरे पर आधारित होते हैं। जिस प्रकार वाणिज्य के लिए उद्योगों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार उद्योगों के लिए भी वाणिज्यिक क्रियाएँ आवश्यक होती हैं क्योंकि—

1. व्यापारिक क्रियाओं द्वारा ही उद्योगों को कच्चा माल तथा अन्य सामग्री प्राप्त होती है।
2. औद्योगिक केन्द्रों तक कच्चा माल पहुँचाने के लिए यातायात व्यवस्था की आवश्यकता होती है।
3. उत्पादन-चक्र निरन्तर चलता रहे, इस हेतु आवश्यक पूँजी बैंक प्रदान करते हैं।
4. औद्योगिक उत्पादन के दौरान भिन्न-भिन्न प्रकार की जोखिमों से बचने के लिए बीमा कम्पनियाँ अपनी सेवाएँ प्रदान करती हैं।
5. जब तक माल बिक न जाय गोदाम पर माल को सुरक्षित रखने का आश्वासन दिया जाता है।
6. माल के शीघ्र विक्रय के लिए आधुनिक विक्रय कला, विज्ञापन तथा प्रचार का सहारा लिया जाता है।
7. सन्देशवाहन के साधनों के विकास से उद्योगों के लिए उपभोक्ताओं से सम्पर्क स्थापित करना सुविधाजनक हो गया है।
8. उद्योगों द्वारा उपभोक्ताओं की आवश्यकतानुसार विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है और उनके अनुरूप ही आधुनिक पैकेजिंग की आवश्यकता होती है।

❑

TOUCH 'n' PASS

UNIT-II

व्यवसाय का संवर्धन

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. व्यावसायिक संगठन के स्वरूप के चयन को प्रभावित करने वाले किन्हीं चार तत्त्वों को लिखिए।

उत्तर व्यावसायिक संगठन के स्वरूप के चयन को प्रभावित करने वाले तत्त्व निम्नलिखित हैं—

1. **कर का भार**—विभिन्न स्वरूपों पर कर की तुलनात्मक मात्रा भी स्वरूप का चुनाव करते समय ध्यान में रखनी चाहिए। यदि सम्भावित लाभ की मात्रा काफी अधिक है तो कम्पनी संगठन में कर का भार अपेक्षाकृत कम होगा। अन्यथा एकाकी व्यापारी तथा साझेदारी उपयुक्त है।
2. **व्यवसाय का स्थायित्व**—व्यवसाय की सफलता इसकी निरन्तरता पर निर्भर है। यदि अल्पकाल अथवा विशेष कार्य की पूर्ति के लिए व्यवसाय प्रारम्भ किया जाता है तो एकल स्वामित्व एवं साझेदारी उपयुक्त है किन्तु दीर्घकालीन उपक्रमों के लिए कम्पनी या सहकारी संगठन आवश्यक है क्योंकि इनका पृथक् वैधानिक अस्तित्व है और इनका जीवन स्थायी है।
3. **नियन्त्रण की सीमा**—यदि व्यवसायी प्रबन्ध पर व्यक्तिगत नियन्त्रण रखना चाहता है तो एकल स्वामित्व या साझेदारी आवश्यक है किन्तु यदि वह व्यवसाय संचालन का भार विशिष्ट प्रबन्धकों को सौंपना चाहता है तो कम्पनी संगठन अधिक उपयुक्त होगा।
4. **प्रबन्ध की जटिलता**—जिस व्यवसाय का संगठन एवं प्रबन्ध जटिल है, जैसे—अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, विभिन्न वस्तुओं का निर्माण करने वाला बहुत बड़ा कारखाना आदि, वहाँ पेशेवर प्रबन्ध की तथा विशिष्टीकरण की आवश्यकता पड़ती है जो कम्पनी संगठन में आसानी से सुलभ है। यदि सामान्य प्रबन्ध योग्यता पर्याप्त है, जैसे—सौन्दर्य प्रसाधन विक्रेता तो एकल स्वामित्व तथा साझेदारी उपयुक्त स्वरूप है।

प्र.2. क्या व्यावसायिक योग्यता अर्जित की जा सकती है? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर **व्यावसायिक योग्यता** से आशय है व्यवसाय को सफलतापूर्वक संचालित करने की क्षमता। यह क्षमता दो प्रकार की हो सकती है—(i) प्रकृति-दत्त, और (ii) अर्जित। प्राचीन काल से लेकर 18वीं शताब्दी तक प्राय: लोगों की, यह धारणा रही है कि **'व्यावसायिक क्षमता एक जन्मजात प्रतिभा है**, अर्थात् कुशलतापूर्वक व्यवसाय का संचालन करने के लिए एक व्यक्ति में जिन गुणों व विशेषताओं का होना आवश्यक होता है, वे गुण कुछ व्यक्ति विरासत में लेकर पैदा होते हैं। इस विचारधारा के समर्थकों का कहना है कि जिस प्रकार कुशल गायक कलाकार के कण्ठ एवं कुशल नर्तकी के पांव ईश्वर की देन हैं, उसी प्रकार व्यवसायी के गुण भी भगवत् कृपा के परिणाम हैं, उन्हें विकसित नहीं किया जा सकता। किन्तु ज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं प्रशिक्षण की सुविधाओं में विकास ने उपर्युक्त विचारधारा में एक इन्कलाब पैदा कर दिया है। आज व्यवसाय का स्वामित्व एवं प्रबन्ध अलग-अलग हो गये हैं, प्रशिक्षण प्रदान करने को नई-नई प्रणालियाँ विकसित हो गयी हैं तथा प्रशिक्षण देने वाली संस्थाओं का भी विकास हो गया है और सफल व्यवसायियों का स्थान प्रशिक्षित व पेशेवर लोग ग्रहण करने लगे हैं। ऐसी स्थिति में व्यावसायिक योग्यता को केवल जन्मजात प्रतिभा के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। वर्तमान युग में ऐसे अनेक व्यवसायी हैं जिन्होंने देश-विदेश में प्रबन्ध विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त विभिन्न व्यवसायों में विशिष्ट उपलब्धियाँ प्राप्त की जबकि उनके माता-पिता का व्यवसाय से कोई सम्बन्ध नहीं रहा। अत: यह कहा जा सकता है कि 'व्यावसायिक योग्यता **एक जन्मजात प्रतिभा ही नहीं है वरन् अर्जित प्रतिभा भी है।'**

प्र.3. प्रवर्तक (Promoter) किसे कहते हैं?

उत्तर प्रवर्तक—एक प्रोत्साहक एक व्यक्ति, एक फर्म, एक कम्पनी, एक संस्था, या यहाँ तक कि एक सरकारी विभाग है जो एक व्यावसायिक अवसर का लाभ प्राप्त करने के विचार की कल्पना करता है, इस विचार की जाँच करता है कि क्या यह कार्य करने योग्य है, पुरुषों धन, सामग्री तथा मशीनों की व्यवस्था करता है तथा एक लाभदायक उद्यम बनाता है।

ए०एस० ड्यूइंग के अनुसार, "प्रवर्तक वह व्यक्ति होता है जो किसी विचार को लाभ अर्जित करने में सक्षम व्यवसाय में परिवर्तित करने की सम्भावना के प्रति जागरूक होता है, जो सम्बन्धित विभिन्न व्यक्तियों को एक साथ लाता है तथा जो अन्ततः एक नए व्यवसाय को अस्तित्व में लाने के लिए आवश्यक विभिन्न चरणों का पर्यवेक्षण करता है।"

प्र.4. निजी कम्पनी किसे कहते हैं?

उत्तर निजी कम्पनी—निजी कम्पनी, जिसे नागरिक क्षेत्र भी कहा जाता है, यह अर्थव्यवस्था का वह भाग है जिसका प्रबन्धन निजी समूहों या व्यक्तियों द्वारा लाभ अर्जित करने के मुख्य उद्देश्य के साथ सरकार के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप के बिना किया जाता है। निजी एवं गैर-लाभकारी संगठनों को अर्थव्यवस्था के स्वैच्छिक क्षेत्र का भाग माना जाता है, दूसरी तरफ सरकार से सम्बन्धित उद्यम सार्वजनिक क्षेत्र का निर्माण करते हैं। लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से निजी समूहों या संस्थाएँ निजी कम्पनियों के स्वामित्व तथा प्रबन्धन में निहित है। विपणन में विभिन्न प्रकार की निजी कम्पनियाँ उपलब्ध है जैसे—एकल व्यापारी, साझेदारी फर्म, संयुक्त स्कन्ध कम्पनियाँ आदि।

उदाहरण के लिए—बाटा शू, रिलायंस इंडस्ट्रीज, हिन्दुस्तान यूनिलीवर, हिंडाल्को, आदि निजी कम्पनियों के वर्तमान उदाहरण है। उच्च जोखिम के साथ लघु एवं अनिश्चित जीवन निजी कम्पनियों की मुख्य विशेषता है। परन्तु इन संगठनों को सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों की तुलना में विकास एवं लाभप्रदता का लाभ प्राप्त हो सकता है यदि उन्हें कुशलतापूर्वक प्रबन्धित किया जाए। कुछ स्थितियों में, इन निजी कम्पनियों के मालिकों/स्वामियों ने उच्च एकाधिकार प्राप्त करने या देश के आर्थिक एवं राजनीतिक कारकों को उनके पक्ष में प्रभावित करने के लिए उत्पादक संघ का निर्माण किया है।

प्र.5. सार्वजनिक उपक्रम के प्रकारों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर सार्वजनिक उपक्रम के प्रकार—एक सार्वजनिक क्षेत्र का उपक्रम निम्नलिखित प्रकार का हो सकता हैं—

1. **सरकारी कम्पनी**—एक अन्य प्रकार का सार्वजनिक उपक्रम सरकारी कम्पनी है। अधिकांश देशों में, कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत एक कम्पनी, जिसमें न्यूनतम 51 प्रतिशत समता पूँजी का निवेश सरकार द्वारा किया जाता है, सरकारी कम्पनी कहलाती है।
2. **विभागीय संगठन**—रेलवे, मीडिया प्रसारण, डाक सेवाओं आदि जैसी—आधारभूत सेवाओं को प्रस्तुत करने के लिए, विभागीय संगठन का उपयोग सार्वजनिक क्षेत्र में किया जाता है। ऐसे संगठनों का समग्र नियंत्रण सरकार के मंत्रालय के पास होता है। किसी भी अन्य सरकारी विभाग के समान भी विभागीय संगठनों को भी सरकार द्वारा वित्तपोषित किया जाता है। यह उन सेवाओं को प्रदान करने के लिए सबसे उपयुक्त सिद्ध होता है जहाँ सरकार जनता के कल्याण के लिए उन्हें प्रबन्धित करने में अभिरुचि रखते हैं।
3. **वैधानिक निगम**—एक वैधानिक निगम कानून द्वारा स्थापित निगम को संदर्भित करता है। प्रभावशाली प्राधिकरण के आधार पर उनकी मूल प्रकृति में भिन्नता हो सकती है। इसलिए, ऐसे सामान्य वैधानिक संगठन जो सरकार द्वारा अधिकृत होते है जिनके पास अंशधारक हो या नहीं भी हो सकते हैं। बिना किसी अंशधारक के भी संगठन हो सकते हैं जो दिशा-निर्देश प्रदान करने की सीमा तक राज्य या केन्द्र सरकार के प्रत्यक्ष नियंत्रण में हैं।

प्र.6. सहकारी संगठन की उपयुक्तता को समझाइए।

उत्तर सहकारी संगठन की उपयुक्तता—सहकारी संगठन उन व्यवसायों के लिए उपयुक्त है जो गैर-लाभकारी सेवाएँ प्रदान करने एवं समाज के आर्थिक हित को प्रोत्साहित करने पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। इन संगठनों पर इसलिए भी विचार किया जाता है क्योंकि विभिन्न संस्थानों से वित्तीय सहायता के माध्यम से व्यवसाय के लिए पूँजी सरलता से एकत्रित की जा सकती है। अनेकों बार, एक व्यक्तिगत प्रयास एक लक्ष्य प्राप्त करने के लिए पर्याप्त नहीं होता है इसलिए सामूहिक प्रयास की आवश्यकता होती है, जिसे सहकारी संगठन के रूप में प्राप्त किया जा सकता है। इन सहकारी समितियों का गठन सदस्यों के आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने और समाज के अशक्त वर्गों; जैसे—विपणन सहकारी समितियों, आवास सहकारी समितियों, आदि की भी रक्षा करने के लिए किया जाता है।

यह लघु-उद्योगों या मध्यम आकार के व्यावसायिक उद्यमों के लिए सर्वाधिक प्रासंगिक है। हालाँकि, कुछ दीर्घ स्तर पर उद्यम है जो सहकारी समितियों के अपवाद है जैसे—कि कायरा सहकारी दुग्ध (अमूल का एक भाग) तथा भारतीय किसान एवं उर्वरक सहकारी (इफ्को) आदि। सहकारी समितियों का व्यापक क्षेत्र है तथा इसे अनेकों विपणन समितियों, उत्पादकों के समाजों, भवन निर्माण समितियों, फुटकर दुकानों एवं ऋण समितियों पर लागू किया जा सकता है। ये सभी समाज सहकारिता की विशेषताओं पर आधारित है।

प्र.7. एकल व्यक्ति कम्पनी की स्थापना के चरणों को बताइए।

उत्तर एकल व्यक्ति कम्पनी की स्थापना के चरण—एकल व्यक्ति कम्पनी के स्थापना के चरण निम्न प्रकार है—

1. प्रस्तावित निदेशक के लिए डिजिटल हस्ताक्षर प्रमाणपत्र प्राप्त करना।
2. प्रस्तावित निदेशक के लिए निदेशक पहचान संख्या प्राप्त करना।
3. कम्पनी के लिए उचित नाम का चुनाव करना, तथा इसकी उपलब्धता के लिए कॉर्पोरेट कार्यालय मन्त्रालय को आवेदन देना।
4. पार्षद सीमानियम एवं पार्षद अंतर्नियम के ज्ञापन का प्रारूप तैयार करना।
5. कम्पनियों के रजिस्ट्रार के साथ पार्षद सीमानियम एवं पार्षद अन्तर्नियम सहित विभिन्न दस्तावेजों पर इलेक्ट्रॉनिक हस्ताक्षर तथा उनको दाखिल करना।
6. कॉर्पोरेट मामलों के मन्त्रालय को शुल्क एवं स्टाम्प शुल्क देना।
7. कम्पनियों के रजिस्ट्रार के पास दस्तावेजों की जाँच करना।
8. आर.ओ.सी. से पंजीकरण प्रमाणपत्र या निवेश के लिए रसीद प्राप्त करना।

प्र.8. सरकारी संगठन की उन्नति के लिए सुझाव दीजिए।

उत्तर सहकारी संगठन की उन्नति के लिए सुझाव निम्न प्रकार हैं—

1. सहकारी समितियों को अपने सुरक्षित कोषों में पर्याप्त वृद्धि करनी चाहिए।
2. बहु-उद्देशीय समितियों (Multi-Purpose Societies) की स्थापना करनी चाहिए, क्योंकि वे अपेक्षाकृत अधिक सुदृढ़ और स्थायी होती हैं।
3. कर्मचारियों के प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।
4. ऋण स्वीकृत करने में शीघ्रता तथा सावधानी बरतनी चाहिए।
5. समितियों द्वारा अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन ऋण अलग-अलग दिए जाएँ।
6. ऋण वसूल करने की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।
7. यथासम्भव उत्पादक कार्यों के लिए ही ऋण दिए जाने चाहिए।
8. प्राथमिक समितियों (Primary Societies) में सुधार करना चाहिए।
9. केन्द्रीय सहकारी संस्थाओं में निजी व्यक्तियों की सदस्यता समाप्त की जानी चाहिए।
10. केन्द्रीय सरकार तथा विभिन्न वित्तीय संस्थाओं द्वारा सहकारिता के लिए पर्याप्त वित्तीय सहायता उपलब्ध करानी चाहिए।

प्र.9. निजी कम्पनी क्यों लोकप्रिय है? कारण बताइए।

उत्तर वर्तमान समय में निजी कम्पनी व्यावसायिक संगठन के विभिन्न रूपों में से अत्यन्त प्रचलित हो रही है। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

1. **बड़े पैमाने पर व्यवसाय**—अधिक पूँजी एकत्रित करने की क्षमता के कारण निजी कम्पनी भी सार्वजनिक कम्पनी की तरह साझेदारी संगठन की तुलना में बड़े पैमाने पर व्यापार कर सकती है। यह नहीं, सीमित देनदारी के कारण निजी कम्पनी अधिक जोखिम भी उठा सकती है।
2. **अधिक वित्तीय साधन**—एक निजी कम्पनी साझेदारी की तुलना में अधिक पूँजी एकत्रित कर सकती है, क्योंकि इसके सदस्यों की संख्या 50 तक हो सकती है। साझेदारी में यह संख्या 20 तक सीमित है।
3. **स्थिरता**—निजी कम्पनी का अस्तित्व भी सार्वजनिक कम्पनी की तरह शाश्वत या अविच्छिन्न बना रहता है.अर्थात् सदस्य शेयरधारियों के मर जाने, पागल हो जाने या दिवालिया हो जाने से इसके अस्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, यह यथावत चलती रहती है। फलतः इसका जीवन साझेदारी की तुलना में ज्यादा स्थिर है।

4. **सीमित देनदारी**—सार्वजनिक कम्पनी की भांति ही कम्पनी के शेयरधारियों की देनदारी उनके द्वारा खरीदे गए शेयरों के अंकित मूल्य तक सीमित होती है। व्यवसाय की जोखिम के लिए उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति जिम्मेदार नहीं होती। साझेदारी में देनदारी असीमित होती है।
5. **सरल स्थापना**—साझेदारी की भांति निजी कम्पनी केवल दो सदस्यों द्वारा प्रारम्भ की जा सकती है। पंजीकरण कराना सरल है और पंजीकरण होते ही निजी कम्पनी अपना व्यवसाय प्रारम्भ कर सकती है। इसे व्यवसाय प्रारम्भ करने का प्रमाण-पत्र लेने की आवश्यकता नहीं होती।

प्र.10. सहकारी समिति तथा कम्पनी में कोई पाँच अन्तर लिखिए।

उत्तर सहकारी समिति तथा कम्पनी में अन्तर निम्न तालिका से स्पष्ट हो जाता है—

क्र० सं०	अन्तर का आधार	सहकारी समिति	कम्पनी
1.	**स्थापना**	सहकारी समिति की स्थापना 'भारतीय सहकारी समिति अधिनियम' के अन्तर्गत होती है।	कम्पनी की स्थापना 'भारतीय कम्पनी अधिनियम' के अन्तर्गत होती है।
2.	**उद्देश्य**	सहकारी समिति की स्थापना का मुख्य उद्देश्य सदस्यों की सेवा करना है।	कम्पनी की स्थापना का मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना है।
3.	**सदस्यों की संख्या**	सहकारी समिति की स्थापना के लिए कम-से-कम 10 सदस्यों का होना आवश्यक है।	पब्लिक कम्पनी की स्थापना के लिए कम-से-कम 7 व्यक्ति तथा प्राइवेट कम्पनी के लिए कम-से-कम 2 व्यक्तियों का होना आवश्यक है।
4.	**सदस्यों का दायित्व**	समितियों की प्रकृति के आधार पर सदस्यों के दायित्व सीमित तथा असीमित दोनों ही हो सकते हैं।	कम्पनी के सदस्यों का दायित्व प्राय: सीमित होता है।
5.	**मतदान**	सहकारी समिति में एक सदस्य को केवल एक ही वोट देने का अधिकार होता है।	कम्पनी में 'एक अंश, एक वोट' के आधार पर प्रत्येक सदस्य को अंशों की संख्या के हिसाब से मत देने का अधिकार है।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. प्रवर्तकों के प्रकारों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

प्रवर्तक के प्रकार
(Kinds of Promoters)

व्यवसाय संवर्धन गतिविधि एक फर्म, एक बैंकर एक निगमित निकाय या एक व्यक्ति के माध्यम से की जा सकती है। संचालन की प्रकृति के आधार पर, प्रवर्तक को निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है—

1. **वित्तीय प्रवर्तक**—वित्तीय प्रवर्तकों को तभी स्थानान्तरित किया जाता है जब प्रतिभूति विपणन अनुकूल स्थिति में होते हैं। उनके पास वित्तीय क्षमता होती है इसलिए वे नए व्यवसाय में वृद्धि करने के लिए नए अवसरों की खोज करते हैं।
2. **पेशेवर प्रवर्तक**—व्यावसायिक प्रवर्तक, किसी नए व्यवसाय के संवर्धन में विशेषज्ञ या अनुभवी होते हैं। वे पेशेवर प्रवर्तक होते है तथा वे इसे पूर्णकालिक आधार पर करते हैं। वे नए व्यवसाय की स्थापना में शामिल सभी चरणों को आरम्भ करते हैं तथा उन व्यक्तियों की खोज करना आरम्भ करते हैं जो नए उद्यम के लिए धन उपलब्ध करा सकते हैं। सभी औपचारिकताओं को पूरा करने के पश्चात् वे स्वयं के स्वामियों या निवेशकों को प्रशासन देते हैं तथा बाद में एक नए व्यवसाय का संवर्धन करने के लिए अग्रिम वृद्धि करते हैं।

TOUCH 'n PASS

3. **उद्यमी प्रवर्तक**—एक व्यक्ति जो व्यवसाय के लिए नवीन विचारधारा तैयार करता है, व्यवसाय की इकाई स्थापित करने के प्रकारों को खोजता है तथा जो व्यवसाय को आकार देता है उसे उद्यमी प्रवर्तक के रूप में परिभाषित किया जाता है। **उदाहरण के लिए**—बिडला, अम्बानी तथा टाटा भारत के उद्यमी प्रवर्तक हैं।
4. **तकनीकी प्रवर्तक**—तकनीकी प्रवर्तक विभिन्न क्षेत्रों में तकनीकी रूप से विशेषज्ञ होते हैं। वे नए व्यवसाय की अग्रिम वृद्धि करने में स्वयं के विशेष अनुभव, ज्ञान तथा अभ्यास का उपयोग करते हैं। ये प्रवर्तक सामान्यत: उनके द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं के लिए शुल्क लेते हैं।
5. **सरकार**—केन्द्र एवं राज्य दोनों सरकार उन स्थितियों में एक प्रवर्तक के रूप में कार्य करती हैं जहाँ नया व्यवसाय या तो संयुक्त क्षेत्र में या सार्वजनिक क्षेत्र में प्रारम्भ होता है जिसमें भारी जोखिम तथा दीर्घ मात्रा में पूँजी शामिल होती हैं। उदाहरण के लिए—एच.एम.टी., ओ.एन.जी.सी., सेल, भेल आदि सरकार द्वारा स्थापित इकाइयाँ हैं।
6. **विशिष्ट संस्थान**—कुछ वित्तीय संस्थान हैं जो नए उद्यम प्रारम्भ करने में वित्तीय सहायता तथा मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। यह नए व्यवसायों में वृद्धि करने के लिए नए उद्यमियों के साथ भी सहयोग करते है। ये संस्थान उपस्थित व्यवसाय को प्रबन्धन एवं तकनीकी विशेषज्ञता प्रदान करते हैं।

प्र.2. प्रवर्तकों के कार्यों तथा कर्त्तव्यों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर प्रवर्तकों के कार्य एवं कर्त्तव्य—कम्पनी निर्माण में प्रथम चरण संवर्धन है। कम्पनी के विचार से लेकर लाइसेंस प्राप्त करने तक की सभी गतिविधियाँ संवर्धन चरण में शामिल हैं। इसमें निम्नलिखित कार्य शामिल हैं—

1. **विचार**—विचार प्रवर्तक द्वारा किया जाने वाला प्रथम एवं आवश्यक कार्य है क्योंकि यह प्रत्येक महत्वपूर्ण व्यावसायिक गतिविधि का मूल है। प्रवर्तकों को भविष्य की कम्पनी की प्रकृति, आकार, रूप तथा लक्ष्यों के बारे में एक विचार होना चाहिए।
2. **प्रारम्भिक जाँच**—प्रवर्तक द्वारा उस स्थान पर उपलब्ध सुविधाओं की जाँच करना आवश्यक है जहाँ व्यवसाय का निर्माण किया गया है। उसे यह परीक्षण करने की आवश्यकता है कि भूमि, श्रमिक, कच्चा माल, संचार तथा परिवहन सुविधाएँ आदि उपलब्ध है या नहीं है।
3. **उत्पादन के साधनों/कारकों की व्यवस्था करना**—प्रवर्तक को यह भी देखना होगा कि व्यवसाय के पास आवश्यक वित्त उपलब्ध है या नहीं। यद्यपि कम्पनी प्रतिभूतियों एवं ऋणपत्रों को विक्रय करके धन की व्यवस्था करती है, परन्तु प्रवर्तक द्वारा अंश जारी करने से वित्त एकत्र करने से पूर्व कुछ व्ययों को कवर करना आवश्यक है। इस प्रकार, प्रवर्तक को स्वयं के संसाधनों का उपयोग करने की आवश्यकता होती है। प्रवर्तन स्वयं की वित्तीय आवश्यकताओं के लिए बैंकों एवं वित्तीय संस्थानों से भी सम्पर्क कर सकते हैं।
4. **वित्त की व्यवस्था करना**—प्रवर्तक विभिन्न व्यक्तियों एवं विशेषज्ञों से सम्पर्क करता है तथा मशीनों, भूमि, संयंत्र आदि के क्रय से सम्बन्धित अनेकों अनुबन्ध करता है, जब वह प्रारम्भिक परीक्षण के पश्चात् आश्वस्त हो जाता है कि विचार प्रभावी है तथा पर्याप्त लाभ प्राप्त करने के लिए अवसर है।
5. **प्रारम्भिक दस्तावेज तैयार करना**—प्रवर्तक को उन दस्तावेजों को भी तैयार करना होता है जो कम्पनी के निगमन के लिए आवश्यक हैं। कम्पनी को स्वयं के दैनिक कार्यों के लिए पार्षद अन्तर्नियम स्वयं के लक्ष्यों एवं संचालन का वर्णन करने के लिए पार्षद सीमानियम तथा व्यक्तियों को स्वयं की प्रतिभूतियों तथा ऋणपत्रों की सदस्यता के लिए, प्रसन्न करने के लिए विवरण-पुस्तिका तैयार करने की आवश्यकता होती है।
6. **प्रारम्भिक अनुबन्ध**—कम्पनी के निगमन से पूर्व प्रवर्तक कम्पनी के हित में पक्षों के साथ आवश्यक प्रारम्भिक अनुबन्ध भी करता है। ये अनुबन्ध प्रवर्तक की व्यक्तिगत दायित्व पर किए जाते हैं। एक बार कम्पनी का निगमन हो जाने के पश्चात् यह इन अनुबन्धों को स्वीकृति प्रदान करता है। प्रवर्तक इन अनुबन्धों के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होते हैं यदि इन्हें कम्पनी द्वारा अनुमोदित नहीं किया जाता हैं। इसलिए, प्रवर्तकों को अनुबन्ध करने से पूर्व अत्यधिक सावधान रहने की आवश्यकता होती है।
7. **कम्पनी का नामकरण**—कम्पनी का नाम भी प्रवर्तक द्वारा निश्चित किया जाता है। उसे एक ऐसा नाम चयनित करने की आवश्यकता होती है जो अद्वितीय हो तथा यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि यह किसी उपस्थित ब्राण्ड एवं कम्पनी की प्रतिलिपी नहीं है।

8. **बैंकरों, दलालों, वकील तथा बीमाकर्त्ता की नियुक्ति**—प्रवर्तक इन आवश्यक नियुक्तियों को भी करता है। इन्हें बाद में कम्पनी द्वारा अनुमोदित किया जाता है।
9. **लाइसेंस प्राप्त करना**—यदि आवश्यक हो तो कम्पनी के लिए प्रवर्तक द्वारा अपेक्षित लाइसेंस प्राप्त किया जाना चाहिए।

प्र.3. व्यावसायिक संगठन के विभिन्न प्रारूपों को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर

व्यावसायिक संगठन के प्रारूप
(Forms of Business Organisation)

आधुनिक युग में व्यावसायिक संगठन के अनेक स्वरूप देखने को मिलते हैं। आज चूंकि सरकार भी व्यवसायी के रूप में मैदान में उतर आयी है, अत: समस्त व्यावसायिक संगठन को दो क्षेत्रों में विभक्त किया जा सकता है—(1) निजी स्वामित्व वाले व्यावसायिक संगठन, और (2) सार्वजनिक या सरकारी क्षेत्र के व्यावसायिक संगठन। इनको पुन: अनेक उप-भागों में बाँटा जा सकता है—

I. निजी क्षेत्र के व्यावसायिक संगठन
(Business Organisation of Private Sector)

जहाँ तक निजी क्षेत्र के व्यावसायिक संगठनों का सम्बन्ध है उनको दो भागों में बाँटा जा सकता है—अनिगमित क्षेत्र और निगमित क्षेत्र। प्रथम क्षेत्र में आने वाले प्रमुख व्यावसायिक संगठन निम्न हैं—

1. **एकाकी व्यवसाय**—यह व्यावसायिक संगठन का वह स्वरूप है जिसमें व्यवसाय का स्वामित्व एक ही व्यक्ति का होता है। वही उसमें पूँजी लगाता है, उसका प्रबन्ध करता है तथा समस्त लाभ-हानि के लिए भी स्वयं ही उत्तरदायी होता है।
2. **साझेदारी**—इसमें कम-से-कम दो और अधिक-से-अधिक बीस व्यक्ति (बैंकिंग व्यवसाय की दशा में अधिकतम दस व्यक्ति) मिलकर एक समझौते के अन्तर्गत व्यवसाय की स्थापना करते हैं एवं उनका संचालन करते हैं तथा होने वाले लाभ को आपस में बाँट लेते हैं। भारत में साझेदारी अधिनियम, 1932 ऐसे संगठनों के नियमन हेतु बनाया गया है।
3. **संयुक्त हिन्दू पारिवारिक व्यवसाय**—व्यावसायिक संगठन के इस स्वरूप का संगठन परिवार के मुखिया (या कर्त्ता) के हाथों में केन्द्रित रहता है तथा वही परिवार के अन्य सदस्यों के सहयोग से व्यवसाय को चलाता है। ऐसे प्रारूप में मुखिया को ही निर्णय लेने, ऋण लेने तथा अन्य समस्त व्यवहार करने का अधिकार होता है। यह प्रारूप केवल भारत में ही पाया जाता है तथा हिन्दू लॉ द्वारा संचालित होता है।
4. **संयुक्त पूँजी वाली कम्पनी**—निगमित क्षेत्र के अन्तर्गत 'कम्पनी' सर्वाधिक लोकप्रिय व्यावसायिक संगठन है। यह वह प्रारूप है जिसकी स्थापना भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 के अन्तर्गत होती है। कम्पनी विधान द्वारा निर्मित एक कृत्रिम व्यक्ति है जिसका उसके सदस्यों से पृथक् अस्तित्व होता है तथा जिसके पास एक सार्वमुद्रा होती है। कम्पनी भी दो प्रकार की हो सकती हैं—पब्लिक कम्पनी तथा प्राइवेट कम्पनी।
5. **सहकारी संस्था**—इस प्रारूप के अन्तर्गत कुछ व्यक्ति सहकारिता के आधार पर स्वेच्छा से संगठित होते हैं एवं पारस्परिक लाभ की दृष्टि से व्यवसाय का संचालन करते हैं। इसका सिद्धान्त है 'एक सबके लिए और सब एक के लिए।'

नोट—कभी-कभी अनेक व्यावसायिक संगठनों का प्रबन्ध एक व्यक्ति या कम्पनी द्वारा किया जाता है जिसे 'संयोजन' (Combination) कहते हैं। ये संयोजन भी अनेक प्रकार के हो सकते हैं, जैसे, एसोसिएशन, चेम्बर ऑफ कॉमर्स, प्रन्यास, कार्टेल, पूल, इत्यादि।

II. सरकारी क्षेत्र के व्यावसायिक संगठन
(Business Organisation of Government Sector)

सरकारी स्वामित्व वाली संस्थाएं व्यावसायिक संगठन का वह प्रारूप हैं जिन पर किसी-न-किसी रूप में सरकार का नियन्त्रण रहता है। इनके भी चार भेद हैं—(1) विभागीय उपक्रम जैसे—डाक-तार व रेलवे; (2) मण्डल परिषद् या प्राधिकरण जैसे—ग्वालियर प्राधिकरण या म०प्र० विद्युत् मण्डल; (3) वैधानिक निगम जैसे—जीवन बीमा निगम, औद्योगिक वित्त निगम आदि और (4) सरकारी कम्पनी जैसे—हिन्दुस्तान मशीन टूल्स कम्पनी।

प्र.4. एकल स्वामित्व के लाभ व हानियों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

एकल स्वामित्व के लाभ
(Advantages of Sole Proprietorship)

एकल स्वामित्व के लाभ इस प्रकार हैं—

1. **व्यवसाय में लचीलापन**—एकल स्वामित्व बाजार की बदलती परिस्थितियों के अनुसार अपने व्यवसाय में परिवर्तन कर सकता है। वह बाजार में बदलती माँग एवं आपूर्ति के अनुसार अपनी गुणवत्ता एवं उत्पाद की मात्रा को समायोजित कर सकता है क्योंकि कोई भी परिस्थिति हो, उसके निर्णय में हस्तक्षेप करने वाला कोई नहीं होता है।
2. **व्यवसायिक गोपनीयता**—नए उत्पाद विकास उपकरण का क्रय या कच्ची सामग्री का क्रय उत्पाद का विक्रय आदि के सम्बन्ध में प्रत्येक व्यापारिक संगठन के मध्य कुछ रहस्य एवं संवेदनशील सूचनाएँ होती है। एएकल्स स्वामित्व की स्थिति किसी को रहस्यों का खुलासा करने का कोई अवसर प्राप्त नहीं होता है।
3. **प्रारम्भ एवं समाप्त करने में आसान**—एकल स्वामित्व व्यवसाय स्वामित्व सबसे सरल रूप होता है। व्यावसायिक उपक्रम प्रारम्भ करते समय किसी कानूनी विधि या सरकारी औपचारिकताओं का पालन करने की आवश्यकता नहीं होती है। उपयुक्त प्राधिकारी से व्यवसाय प्रारम्भ करने के लिए केवल एक लाइसेंस की आवश्यकता होती है। इस प्रकार व्यवसाय का समापन करने पर किसी कानूनी औपचारिकता का पालन नहीं करना पड़ता है। स्वामी अपनी इच्छानुसार व्यवसाय को समाप्त कर सकता है।
4. **व्यक्तिगत सम्पर्क और सम्बन्ध**—एकल स्वामी के पास एक छोटे पैमाने का व्यवसाय होता है, जिसके कारण वह अपने ग्राहकों के साथ घनिष्ठ और व्यक्तिगत सम्पर्क बनाए रखने में सक्षम होता है। इससे उसे ग्राहकों की सटीक आवश्यकताओं और इच्छाओं को जानने और उन आवश्यकताओं को पूरा करने में भी सहायता प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए—एक नाई अपने ग्राहकों की प्राथमिकताओं को जानकर उनके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करता है तथा उन्हें अधिकतम संतुष्टि प्रदान करने का प्रयास करता है।
5. **समय पर निर्णय लेना**—एकल स्वामी किसी के साथ अपने व्यावसायिक मुद्दों पर चर्चा कर सकता है या नहीं भी कर सकता है। इसके पश्चात वह कुछ समय में स्थितियों के संदर्भ में शीघ्र निर्णय लेता है।
6. **न्यूनतम उत्पादन लागत**—व्यावसाय का एकल स्वामी अपने व्यवसाय की सफलता के लिए कठिन परिणाम करता है क्योंकि व्यवसाय विशेष रूप से उसके स्वामित्व में होता है। वह यह सुनिश्चित करता है कि संसाधनों का पूर्ण रूप से बिना किसी अपव्यय के प्रयोग किया जाए तथा सभी व्यावसायिक गतिविधियों पर ध्यान रखा जाए। इससे उत्पादन लागत में कमी होती है।

एकल स्वामित्व की हानियाँ
(Disadvantages of Sole Proprietorship)

एकल स्वामित्व की हानियाँ इस प्रकार हैं—

1. **बड़े स्तर पर उत्पादन की कोई अर्थव्यवस्था नहीं**—एकल स्वामित्व एक लघु स्तर का व्यवसाय है जिसमें अल्प मात्रा में उत्पादन (अर्थात् भूमि, श्रम, पूँजी, कच्ची सामग्री) आदि के सभी कारक शामिल होते हैं। इसके साथ स्वामी बड़े स्तर पर उत्पादन की अर्थव्यवस्थाओं को प्राप्त करने में असमर्थ होते हैं। इसके पश्चात् इस व्यवसाय में उत्पादों की उत्पादन लागत बड़े स्तर के व्यवसायों के उत्पादों की तुलना में अधिक होती है।
2. **सीमित कौशल एवं ज्ञान**—एक व्यक्ति के पास सीमित कौशल एवं ज्ञान होता है जिसे वह अपने व्यवसाय में प्रयोग करता है। इसके अतिरिक्त उसके पास सीमित पूँजी होती है, अत: वह अधिक कुशल व अनुभवी प्रबन्धकों, सलाहकारों या लेखापालक को कार्य पर रखने में असमर्थ होता है। इसके साथ वह उत्पादों एवं सेवाओं के विपणन एवं विज्ञापन में अधिक राशि निवेश करने में असमर्थ होता है।
3. **असीमित दायित्व**—व्यवसाय के स्वामी पर असीमित दायित्व होता है, जो उसे अपने व्यवसाय का विस्तार करने की अनुमति प्रदान करता है। परन्तु यदि स्वामी हानि वहन करता है, तो उसके द्वारा सम्पूर्ण ऋणों का भुगतान किया जाता है। इसमें ऋणों का भुगतान करने के लिए कम्पनी की सम्पत्ति तथा कभी-कभी उसकी निजी संपत्ति का भी प्रयोग शामिल होता है।

4. **अस्थिरता**—व्यवसाय संगठन का यह रूप स्वामी के अच्छे स्वास्थ्य तक सही एवं सुरक्षित रहता है। व्यवसाय की स्थिरता पूरी तरह से एकमात्र स्वामी पर निर्भर करती है। स्वामी की मृत्यु या बीमारी के संदर्भ में व्यवसाय काफी सीमा तक प्रभावित होता है तथा वर्तमान में यह समाप्त हो सकता है।
5. **अल्प आय**—लघु व्यवसाय के कारण एकल स्वामी मात्र कम आय अर्जित करने में सक्षम होता है। इसलिए स्वामी के लिए बड़े स्तर पर व्यवसाय प्रारम्भ करना अत्यन्त कठिन कार्य होता है। इसलिए, व्यवसाय वैसे ही बना रहता है, जैसे व्यवसाय प्रारम्भ करते समय था।
6. **उत्पादन के अपर्याप्त स्त्रोत**—एक लघु व्यवसायिक संगठन के पास सीमित संसाधन होते हैं। एक एकल स्वामी को व्यवसाय का विस्तार करते समय विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है क्योंकि वह अकेला व्यक्ति पर्याप्त राशि एकत्रित करने में सक्षम नहीं होता है। यह व्यवसाय के विस्तार को सीमित करता है तथा स्वामी केवल इस वित्तीय स्थिति के अनुसार इसे विकसित करने में सक्षम होता है।

प्र.5. आपके विचार से एकाकी स्वामित्व का भविष्य कैसा प्रतीत होता है? उल्लेख कीजिए।

उत्तर

एकाकी स्वामित्व का भविष्य
(Future of Sole Proprietorship)

एकाकी व्यापार या एकाकी स्वामित्व व्यवसाय जगत का सबसे पुराना फिर भी सबसे अधिक प्रचलित संगठन का स्वरूप है। सभ्यता की प्रगति के साथ-साथ, संगठन के स्वरूप में भी परिवर्तन आया और दिनों-दिन संगठन के कम्पनी प्रारूप का बोलबाला बढ़ता गया। फिर भी, आज इस आणविक तथा स्पुतनिक युग में भी, जबकि तकनीकी क्षेत्र में मौलिक व क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं, एकाकी व्यापार अपना अस्तित्व बनाये हुए है और निकट भविष्य में इसका स्थान गौण नहीं होगा। अपने गुणों के कारण तथा समाज की अधिकतम सेवा करने के फलस्वरूप इसका अस्तित्व बिल्कुल भी खतरे में नहीं है।

इसके भविष्य के प्रति प्राय: दो प्रमुख कारणों से आशंका प्रकट की जाती है—एक तो कम्पनी की लोकप्रियता अत्यधिक बढ़ना तथा दूसरे सरकारी उद्यमों का धीरे-धीरे अधिक प्रचलित होना। कम्पनी संगठन का विकास पिछली चार शताब्दी से हो रहा है, परन्तु इतने वर्षों के बाद भी एकाकी व्यापार जीवित और लोकप्रिय है। अत:, इस दृष्टि से इसका भविष्य अन्धकारमय नहीं है। दूसरी ओर, सरकारी या लोक उद्यमों के विकास की बात जहाँ तक है, अभी यह सोचना कि विश्व भर में साम्यवादी सरकार स्थापित हो जायेगी, निर्मूल है। भारत जैसे मिश्रित अर्थव्यवस्था वाले देश में, जहाँ लोक उद्यमों की प्रभुता आजकल घटी है, एकाकी व्यापार पूर्णतया सुरक्षित है। अत: इस दृष्टि से भी एकाकी व्यापार का भविष्य अन्धकारमय नहीं है।

एकाकी व्यापार की कुछ अपनी ऐसी विशेषताएं हैं और जनता की व्यक्तिगत सेवा करने की ऐसी क्षमता विद्यमान है कि यह अबाध गति से इक्कीसवीं सदी में भी जीवित रह सकने में समर्थ है। अनेक ऐसे आर्थिक व व्यावसायिक कार्य-कलाप हैं जिनके लिए आज भी केवल एकाकी व्यापार ही अधिक उपयुक्त है। ऐसे व्यवसाय व पेशे की जहाँ व्यक्तिगत गुण, सेवा, निजी साहस व प्रेरणा, हस्तगत कौशल आदि की आवश्यकता है, केवल एकाकी व्यापार ही सफलता के साथ चलाया जा सकता है। एकाकी व्यापार में अनेक ऐसे गुण हैं जो इसकी लोकप्रियता को बनाये रखेंगे।

भारत जैसे देश में, जहाँ पर कृषि तथा कुटीर एवं लघु उद्योग-धन्धों पर निर्भरता अत्यधिक है, इसका भविष्य निश्चित रूप से उज्ज्वल है। सरकार की नीति भी समय-समय पर इन्हें प्रोत्साहित करती रहती है। रोजगार प्रदान करने की जो असाधारण क्षमता है इसके फलस्वरूप यह आगे बढ़ता ही जायेगा और देश के बेरोजगारों को प्रेरणा देता रहेगा। नई दिशा नीति में भी रोजगारपरक शिक्षा देने की व्यवस्था है और इस बात पर बल दिया जा रहा है कि शिक्षा प्राप्त करके युवक स्वावलम्बी बनें और अपने आप कोई-न-कोई धंधा आरम्भ करें और बेरोजगारी की समस्या का निपटारा करने में अपना सहयोग प्रदान करें। ऐसे शिक्षित नवयुवकों के लिए निश्चय ही एकाकी व्यापार ही सबसे अधिक उपयुक्त है। देश में साधन सीमित हैं और लोगों की क्रय-शक्ति कम है। आज भी कितने लोग हैं जो किसी बड़ी दुकान के अन्दर जाने से घबराते हैं। ऐसी स्थिति में, एकाकी व्यापार ही उनके लिए सहारा है। दूर-दूर गांवों में, छोटी बस्तियों में, पहाड़ों पर आदि, एकाकी व्यापार ही जनता की सेवा कर रहा है।

एकाकी व्यापार के भविष्य के बारे में प्रमुख विद्वान **हैने** का विचार है कि "यह स्वरूप उस विस्तृत क्षेत्र में सदैव जीवित रहेगा जिसमें पूँजी की आवश्यकता कम होती है, किन्तु व्यक्तिगत योग्यता की अधिक आवश्यकता पड़ती है।" उसी प्रकार **टामस** का मत है कि "व्यापार के ऐसे क्षेत्र में जहाँ व्यापार स्थानीय हो, जहाँ अधिक प्रतियोगिता न हो,मांग नियमित हो तथा कम पूँजी की

आवश्यकता हो एवं परस्पर सम्पर्क की आवश्यकता हो और जहाँ जोखिम अधिक न हो, एकाकी व्यवसाय का ही पूर्ण साम्राज्य है।'' इस प्रकार इन विद्वानों का भी यही मत है कि स्थिति विशेष में एकाकी व्यापार की महत्ता अत्यधिक है। इस प्रकार एकाकी व्यापार का भविष्य निश्चित ही सुदूर भविष्य तक निर्बाध बना रहेगा।

एकाकी व्यापार, अपनी विशेषताओं के कारण सर्वाधिक लोकप्रिय रहा है और रहेगा। इक्कीसवीं सदी के आगमन पर इनकी महत्ता दिनोंदिन विशेष रूप से भारतवर्ष में बढ़ने की पूरी सम्भावना है। आज के वैज्ञानिक, आणविक तथा स्पुतनिक युग में भी, यह अपने अस्तित्व को बनाये रखने में पूर्णतया समर्थ है।

प्र.6. साझेदारी के आवश्यक लक्षण अथवा विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर

साझेदारी के आवश्यक लक्षण अथवा विशेषताएँ
(Essentials or Characteristics of Partnership)

भारतीय साझेदारी अधिनियम, 1932 की धारा 4 के अनुसार, साझेदारी संगठन के निम्नलिखित प्रमुख लक्षण हैं—

1. **दो या दो से अधिक व्यक्ति**—किसी भी साझेदारी में कम से कम दो व्यक्तियों का होना आवश्यक है, क्योंकि कोई अकेला व्यक्ति स्वयं से साझेदारी नहीं कर सकता है। कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा 464 के अनुसार साझेदारों की अधिकतम संख्या 100 अथवा निर्दिष्ट की गई अधिकतम संख्या से अधिक नहीं होगी अन्यथा साझेदारी अवैध समझी जायेगी। परन्तु अधिकतम संख्या का यह प्रतिबन्ध हिन्दू अविभाजित परिवार व्यवसाय एवं पेशेवर व्यक्तियों की साझेदारी फर्म पर लागू नहीं होगा।
2. **साझेदारों के बीच ठहराव अथवा अनुबन्ध**—साझेदारी का सम्बन्ध अनुबन्ध से उत्पन्न होता है, स्थिति (Status) के द्वारा नहीं। अत: साझेदारी निर्माण के लिए आवश्यक है कि उसके सदस्यों अथवा साझेदारों के बीच स्पष्ट (Express) अथवा गर्भित (Implied) ठहराव या अनुबन्ध हो।
3. **व्यवसाय**—साझेदारी के लिए व्यवसाय का होना आवश्यक है। यहाँ व्यवसाय के अन्तर्गत वे सभी कार्य आ जाते हैं जोकि लाभ कमाने के उद्देश्य से किये जाते हैं। जैसे—उद्योग, व्यापार, वाणिज्य तथा प्रत्यक्ष सेवाएँ। व्यवसाय वैधानिक होना चाहिए।
4. **व्यवसाय का उद्देश्य लाभ कमाना तथा उसका आपस में विभाजन करना**—साझेदारी का महत्वपूर्ण लक्षण व्यवसाय द्वारा लाभ कमाना तथा उसे साझेदारों के बीच बाँटना है। अत: साझेदारी का उद्देश्य (अ) लाभ कमाना, तथा (ब) कमाये हुए लाभ को साझेदारों में बाँटना है। लाभ में हिस्सा होना आवश्यक है, परन्तु हानि में हिस्सा होना आवश्यक नहीं है। अत: ऐसे साझेदार भी हो सकते हैं जो केवल लाभ में हिस्से के लिए साझेदार बनाये गये हों। कोई भी व्यवसाय जो लाभ के उद्देश्य से शुरू न किया जाकर जन-कल्याण अथवा परोपकार के लिए किया जाए वह साझेदारी का व्यवसाय नहीं कहा जा सकता।
5. **व्यवसाय का संचालन सभी साझेदारों द्वारा अथवा उनमें से किन्हीं के द्वारा होना**—साझेदारी व्यवसाय का संचालन सब साझेदारों के द्वारा अथवा उनकी सहमति से किन्हीं साझेदार या साझेदारों के द्वारा किया जा सकता है।
6. **फर्म एवं सदस्यों का अस्तित्व अलग न होना**—साझेदारी का अस्तित्व सदस्यों (साझेदारों) के अस्तित्व से भिन्न या पृथक् नहीं हो सकता जबकि एक कम्पनी का अस्तित्व समस्त अंशधारियों या सदस्यों के अस्तित्व से पूर्ण तथा भिन्न होता है।
7. **असीमित दायित्व**—साझेदारी की महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि फर्म के ऋण के भुगतान के लिए साधारणतया प्रत्येक साझेदार का दायित्व असीमित होता है। यह दायित्व सम्मिलित व पृथक् दोनों प्रकार का हो सकता है।
8. **अत्यन्त सद्विश्वास**—साझेदारों के आपसी सम्बन्धों की व्याख्या करते समय साझेदारी अधिनियम की धारा 9 में कहा गया है कि ''साझेदार एक-दूसरे के प्रति न्यायपरायण और निष्ठावान रहने और किसी साझेदार या उसके वैध प्रतिनिधि को सही लेखा देने और फर्म पर प्रभाव डालने वाली सभी बातों को पूरी जानकारी देने के लिए बाध्य होंगे।'' इसलिए बिना सर्वसम्मति के किसी व्यक्ति को साझेदारी में शामिल नहीं किया जा सकता।
9. **हित के हस्तान्तरण पर प्रतिबन्ध**—कोई भी साझेदार अन्य साझेदारों की सहमति के बिना अपना हिस्सा किसी बाहरी व्यक्ति को हस्तान्तरित नहीं कर सकता।

TOUCH 'n' PASS

प्र.7. साझेदारी के लाभ एवं हानि का वर्णन कीजिए।

उत्तर

साझेदारी के लाभ
(Advantages of Partnership)

साझेदारी के लाभ इस प्रकार हैं—

1. **व्यावसायिक गोपनीयता**—साझेदारी कम्पनियों के अन्तर्गत व्यावसायिक गोपनीयता को बनाए रखा जा सकता है क्योंकि जनता या सरकार को इसके लाभ एवं हानि विवरण निवेश व्यय आदि का प्रकट करने की कोई आवश्यकता नहीं है।
2. **विविध कौशल एवं ज्ञान का प्रयोग**—एक साझेदारी फर्म में विभिन्न प्रतिभा एवं कौशल वाले व्यक्ति होते हैं जिन्हें कार्य को साझेदारों के मध्य विभाजित करके पूरी तरह से प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए—यदि एक साझेदारी फर्म में चार साझेदार हैं तो पहला–विपणन एवं बिक्री विभाग का प्रबन्धन कर सकता है दूसरा साझेदार–वित्त विभाग का प्रबन्धन कर सकता है, तीसरा साझेदार–मानव संसाधन विभाग कर सकता है तथा चौथा साझेदार–परिवहन एवं रसद विभाग को नियंत्रित कर सकता है।
3. **उचित एवं शीघ्र निर्णयन**—साझेदारी फर्मों के अन्तर्गत सभी निर्णय सभी साझेदारी की सहमति से लिए जाते हैं। चूँकि साझेदार एक दूसरे के प्रत्यक्ष संपर्क में होते है, इसलिए निर्णय लेना सरल होता है। इसमें गलतफहमी या गलती की सम्भावना लगभग बहुत कम होती है क्योंकि किसी भी समस्या का सुझाव सभी साझेदारों द्वारा प्रदान किया जाता है।
4. **स्थापित करने में सरल**—साझेदारी फर्म को किसी कानूनी औपचारिकता की आवश्यकता नहीं है तथा इसलिए इसे स्थापित करना सरल होता है। साझेदारों एवं फर्मों के मध्य केवल एक समझौता किया जाता है। किसी फर्म का पंजीकरण अनिवार्य नहीं होता है, यह साझेदारों की इच्छा पर निर्भर करता है कि वे फर्म का पंजीकरण करवाना चाहते है या नहीं।
5. **बड़े स्तर पर उत्पादन का क्षेत्र**—उत्पादन का एक बड़ा भाग साझेदारी फर्म द्वारा प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि इसमें कुशल व्यक्तियों का प्रबन्धन शामिल होता है। इसके अतिरिक्त अधिक साझेदारों को नियुक्त करके अधिक मात्रा में पूँजी एवं संसाधन प्राप्त किये जा सकते हैं जो व्यवसाय फर्म की बिक्री वृद्धि में सहायक होता है।
6. **व्यक्तिगत रुचि एवं पहल**—एक साझेदारी फर्म में प्रत्येक एवं प्रत्येक साझेदारी लाभ एवं हानि के लिए समान रूप से उत्तरदायी है। वे पहल करते हैं एवं व्यवसाय की सभी गतिविधियों में अत्यधिक रुचि दिखाते हैं। वे यह सुनिश्चित करते हैं व्यवसाय का संचालन कुशलतापूर्वक व सफलतापूर्वक चल रहा है।
7. **व्यक्तिगत सम्पर्क एवं सम्बन्ध**—ग्राहकों एवं कर्मचारियों के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क एवं सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध आसानी से एक साझेदारी फर्म के अन्तर्गत विकसित किए जा सकते हैं क्योंकि यह एक मध्यम आकार का होता है। इससे फर्म को ग्राहकों एवं कर्मचारियों की राय एवं मुद्दों को समझने में सहायता प्राप्त होती है।

साझेदारी की हानियाँ
(Disadvantages of Partnership)

साझेदारी की हानियाँ इस प्रकार हैं—

1. **असीमित देयता**—साझेदारी के अवगुण या हानि में, सभी साझेदार असीमित देयता के लिए उत्तरदायी होते हैं। एक गलत कदम या एक साझेदार द्वारा लिया गया निर्णय फर्म को भारी मात्रा में नुकसान पहुचा सकता है, जो अन्य सभी साझेदारों को भी भुगतना पड़ता है।
2. **साझेदारी अंशों की गैर—हस्तान्तरणीयता**-एक साझेदार अपने अंश किसी भी अन्य व्यक्ति को सभी साझेदारों की मंजूरी या सहमति के बिना हस्तान्तरित नहीं कर सकता है। जिसके कारण, वह मौजूद रहने तक एक फर्म का हिस्सा बने रहने के लिए बाध्य होता है।
3. **कमजोर प्रबन्धन**—साझेदारी व्यवसाय के अन्तर्गत कुछ भागीदार आत्म-केन्द्रित हो जाते हैं। वे व्यवसाय में न्यूनतम प्रयास करना चाहते हैं और अधिकतम लाभ प्राप्त करना चाहते हैं। यह फर्म को खराब करता है और परिस्थितियों की ओर जाता है, जैसे यह व्यवसाय के विकास में बाधा उत्पन्न कर सकता है और दूसरों पर जोखिम हस्तान्तरित कर सकता है।

4. **बड़े स्तर पर व्यवसाय के लिए अनुचित**—बड़े स्तर के व्यवसायों के लिए एक साझेदारी उपक्रम उपयुक्त नहीं होता है। चूंकि सीमित पूँजी संसाधनों एवं प्रबन्धकीय कौशल के साथ सीमित संख्या में साझेदार होते हैं। बड़े स्तर के व्यवसाय जैसे कि तेल एवं स्टील संयंत्र, शिपिंग, बैंक इत्यादि के लिए अधिक मात्रा में निवेश की आवश्यकता होती है जो एक साझेदारी फर्म द्वारा वहन नहीं किया जा सकता है।
5. **साझेदारों के मध्य विवाद**—एक सफल साझेदारी फर्म होने के लिए, साझेदारों के मध्य एक सामंजस्य और सहयोग बनाए रखना अत्यन्त आवश्यक होता है। कई बार, किसी समस्या पर गलतफहमी या मतभेद के कारण कई संघर्ष या टकराव होते हैं और इनसे फर्म का विघटन हो सकता है।
6. **अनिश्चित अस्तित्व**—एक साझेदारी फर्म का अस्तित्व अनिश्चित है। एक साथी की मृत्यु, सेवानिवृत्ति या पागलपन के सम्बन्ध में, साझेदारी समाप्त हो जाती है या उसे भंग करना पड़ता है।

प्र.8. साझेदारी एवं एकाकी व्यवसाय में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर

साझेदारी एवं एकाकी व्यवसाय में अन्तर
(Differences between Partnership and Sole Tradership)

क्र० सं०	अन्तर का आधार	साझेदारी	एकाकी व्यवसाय
1.	**सदस्य संख्या**	साझेदारी में सदस्यों की संख्या कम-से-कम 2 और अधिक-से-अधिक 20 (बैंकिंग व्यवसाय की दशा में अधिक-से-अधिक 10) होती है।	एकाकी व्यवसाय में केवल एक ही सदस्य होता है जो सम्पूर्ण व्यवसाय का स्वामी होता है। हाँ, यह एक से अधिक कर्मचारियों की नियुक्ति कर सकता है, जिनकी गणना व्यवसाय के स्वामी में नहीं की जा सकती।
2.	**स्थापना में सुगमता**	साझेदारी की स्थापना में कुछ वैधानिक औपचारिकताओं का पालन करना पड़ता है (जैसे—समझौते का निर्माण करना), अत: एकाकी व्यवसाय की तुलना में इसकी स्थापना कुछ जटिल है।	एक ही स्वामी होने के कारण समझौता करने का प्रश्न ही नहीं उठता, अत: इसकी स्थापना अपेक्षाकृत अधिक सरल है।
3.	**अधिनियम**	साझेदारी का नियमन 'भारतीय साझेदारी अधिनियम, 1932' के द्वारा होता है।	इसके लिए कोई पृथक् अधिनियम नहीं है।
4.	**रजिस्ट्रेशन**	साझेदारी का रजिस्ट्रेशन करना अथवा न करना सदस्यों की स्वेच्छा पर निर्भर करता है, किन्तु रजिस्टर्ड होने पर फर्म को जो सुविधाएँ प्राप्त होती हैं उससे आकर्षित होकर प्राय: फर्में रजिस्ट्री करा लेती हैं।	एकाकी व्यवसाय के रजिस्ट्रेशन का प्रश्न ही नहीं उठता।
5.	**अनुबन्ध**	साझेदारी का सम्बन्ध अनुबन्ध से ही पैदा होता है, जो गर्भित या लिखित हो सकता है।	इसमें कोई समझौता नहीं होता क्योंकि एक व्यक्ति किससे अनुबन्ध करेगा।
6.	**आर्थिक साधन**	अनेक साझेदार होने के कारण आर्थिक साधन भी बढ़ते हैं। अत: एकाकी व्यवसाय की अपेक्षा अधिक पूँजी एकत्र की जा सकती है।	एकाकी व्यवसायी की 'पर्स' (पूँजी) सीमित होती है।
7.	**लाभ-हानि का विभाजन**	साझेदारी में लाभ-हानि का विभाजन समझौता द्वारा नियत अनुपात में अथवा (अनुबन्ध के अभाव में) समानुपात में किया जाता है।	यहाँ समस्त लाभ-हानि का अधिकारी केवल एकाकी व्यवसायी होता है।
8.	**प्रबन्ध**	साझेदारी में सब साझेदार अथवा सबकी ओर से कोई एक फर्म का प्रबन्ध कर सकता है।	प्रबन्ध का समस्त भार एकाकी व्यवसायी के कन्धों पर होता है।
9.	**परामर्श**	साझेदारी में सभी महत्त्वपूर्ण निर्णय समस्त साझेदारों के परामर्श से लिये जाते हैं।	एकाकी व्यवसायी सभी निर्णय अकेले ही करता है।

TOUCH 'n PASS

10.	**अवयस्क का प्रवेश**	एक अवयस्क साझेदार नहीं बन सकता किन्तु वह साझेदारी के लाभों में सम्मिलित किया जा सकता है।	एक अवयस्क एकाकी व्यवसायी नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें समझौता करने की क्षमता नहीं होती। अत: कोई भी अन्य पक्ष उससे व्यवहार करना पसन्द नहीं करेगा।
11.	**क्षेत्र**	विस्तृत साधन होने के कारण साझेदारी का क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक व्यापक होता है।	सीमित साधनों के कारण एकाकी व्यवसाय का क्षेत्र प्राय: सीमित होता है।
12.	**गोपनीयता**	साझेदारों की संख्या अधिक होने के कारण प्राय: गोपनीयता नहीं रहती।	इसमें पूर्ण गोपनीयता रहती है।
13.	**काम करने की प्रेरणा**	इसमें अपेक्षाकृत कम उत्साह व प्रेरणा रहती है।	इसमें उत्साह व काम की प्रेरणा अधिक होती है।
14.	**समापन**	इसके समापन में कुछ देर लगती है क्योंकि किंचित वैधानिक औचारिकताओं का पालन करना पड़ता है।	एकाकी व्यवसाय उसके स्वामी की इच्छा पर कभी भी समाप्त किया जा सकता है।

प्र.9. संयुक्त पूँजी वाली कम्पनी के प्रमुख दोषों का वर्णन कीजिए।

उत्तर

संयुक्त पूँजी वाली कम्पनी के दोष
(Demerits of Joint Stock Company)

संयुक्त पूँजी संगठन के अनेक महत्वपूर्ण गुण होते हुए भी कुछ ऐसी महत्वपूर्ण कमियाँ हैं जो इसको सार्वभौमिकता प्राप्त नहीं होने देती। कम्पनी संगठन के प्रमुख दोष निम्न प्रकार हैं—

1. **निर्माण में कठिनाई**—व्यावसायिक संगठन के अन्य स्वरूपों की अपेक्षा कम्पनी के निर्माण में वैधानिक हस्तक्षेप अत्यधिक है। अत: एक ओर तो निर्माण सम्बन्धी जटिलताओं में समय अधिक लगता है, साथ ही साथ धन का भी अपव्यय होता है।
2. **प्रवर्तकों द्वारा छलकपट**—सामान्यत: कम्पनी की स्थापना और संचालन में प्रवर्तकों की ही प्रमुख भूमिका होती है। प्रवर्तक कम्पनी में अनेकों प्रकार से छलकपट द्वारा अपनी स्वार्थ सिद्धि करते हैं। केवल अपने लोगों को संचालक नियुक्त करके तथा प्रविवरण में कम्पनी की झूठी शान दिखाकर प्रवर्तक कम्पनी के साधनों का शोषण करने लगते हैं।
3. **अनेक हितों का टकराव**—कम्पनी में विभिन्न हित आपस में टकराते हैं। उदाहरणार्थ, पूर्वाधिकार अंशधारी कम्पनी में अधिकाधिक रिजर्व चाहते हैं जबकि समता अंशधारी चाहते हैं कि कम्पनी अपना समस्त लाभ लाभांश के रूप में वितरित कर दे।
4. **संचालन सत्ता का केन्द्रीयकरण**—कम्पनी संगठन में प्रजातन्त्र केवल सिद्धान्तत: ही है यह केवल दिखावा मात्र है। वास्तव में कई प्रकार से प्रबन्ध एवं संचालन कुछ व्यक्तियों के हाथ में केन्द्रित हो जाता है। कम्पनी के विनियोक्ताओं के पास प्रथम तो समय नहीं होता, न योग्यता, न लगन। दूसरे, वे दूर-दूर बिखरे होने के कारण सम्पर्क और विचार विनिमय स्थापित नहीं कर पाते हैं। इसके साथ-साथ संचालक, योग्य और जानकारी रखने वाले व्यक्तियों को अपने कुछ विशेषाधिकारों के कारण सदस्य बनने ही नहीं देते हैं। इस प्रकार कम्पनी की संचालन व्यवस्था पर संचालकों का मनमाने ढंग से नियन्त्रण होता है।
5. **एक व्यक्ति वाली कम्पनी के दोष**—कम्पनी अधिनियम के अनुसार, एक पब्लिक कम्पनी में कम से कम सात और प्राइवेट कम्पनी में कम से कम दो व्यक्ति होने चाहिए। परन्तु एक व्यक्ति जो मुख्य प्रवर्तक के रूप में कार्य करता है, अपने मेल वाले छ: अन्य व्यक्तियों से दिखावे के लिए पार्षद सीमानियम पर हस्ताक्षर कराकर उन्हें न्यूनतम अंश देकर और लगभग सारे या अधिकांश अंश स्वयं लेकर कम्पनी की वास्तविक सत्ता और स्वामित्व अपने हाथ में ले सकता है।
6. **गोपनीयता का अभाव**—एकाकी अथवा साझेदारी व्यवसाय की तुलना में कम्पनी में गोपनीयता बहुत कम रहती है। इसके दो मुख्य कारण हैं—(i) कम्पनी को अनिवार्य रूप से अपने वार्षिक खातों का प्रकाशन करना पड़ता है। (ii) कम्पनी का प्राय: प्रत्येक महत्वपूर्ण प्रलेख कम्पनी रजिस्ट्रार के कार्यालय में फाइल किया जाता है तथा कोई भी व्यक्ति उचित शुल्क देकर उनका अवलोकन कर सकता है।

TOUCH 'n PASS

7. **अंशधारियों का शोषण**—कम्पनी व्यवसाय में स्वामित्व, प्रबन्ध से पृथक होता है इसलिए प्रबन्धकर्त्ताओं को अंशधारियों के शोषण के अवसर मिल जाते हैं। यद्यपि सरकार ने इस पर नियन्त्रण रखने के लिए नियम बनाये हैं किन्तु वे पूर्ण रूप से अंशधारियों के हित की रक्षा नहीं कर पाते हैं।
8. **कुछ सामाजिक दोष**—कम्पनी व अंशधारी दो पृथक् अस्तित्व हैं। अत: संचालक तथा अंशधारियों के हितों में प्राय: वैमनस्य बना रहता है। दूसरे, कभी-कभी कम्पनियाँ राजनीतिक भ्रष्टाचार का कारण भी बन जाती हैं।

उपरोक्त दोषों के आधार पर यह निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिए कि कम्पनी प्रारूप उपयुक्त नहीं है। वास्तव में ये दोष व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण उत्पन्न होते हैं। यदि इस बुराई को दूर कर दिया जाए तो कम्पनी, व्यावसायिक संगठन का एक श्रेष्ठतम स्वरूप है।

प्र.10. सहकारी संगठन की सीमाओं की व्याख्या कीजिए।

उत्तर

सहकारी संगठन के दोष/सीमाएँ
(Demerits Limitations of Co-operative Organisation)

उपर्युक्त लाभों के होते हुए भी इस संगठन में निम्नलिखित दोष हैं—

1. **सदस्यों में परस्पर झगड़े**—यद्यपि सहकारिता का आधार आपसी सहयोग है, किन्तु इनके सदस्य केवल अपने स्वार्थों की पूर्ति में लग जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि धीरे-धीरे सदस्यों में आपसी झगडे प्रारम्भ हो जाते हैं जिससे इनकी प्रगति रूक जाती है। अन्त में ये समितियां असफल ही सिद्ध होती हैं।
2. **अकुशल प्रबन्ध**—सहकारी संगठनों का प्रबन्ध सदस्यों के द्वारा स्वयं चलाया जाता है। अधिकांशत:, ये सदस्य प्रबन्ध-कला में न तो योग्य होते हैं और न चतुर। फलस्वरूप इनका प्रबन्ध कमजोर रहता है।
3. **अधिकतम सरकारी हस्तक्षेप**—सहकारी समितियों में 'सहकारी समिति अधिनियम' के अतिरिक्त भी अन्य कई प्रकार के सरकारी हस्तक्षेप होते हैं। इनके लेखों का निरीक्षण आदि भी सरकारी अधिकारियों के द्वारा ही किया जाता है।
4. **प्रत्यक्ष प्रेरणा का अभाव**—सहकारिता संगठन से प्रबन्ध और स्वामित्व का पूर्णतया जनतन्त्रीकरण होता है। फलस्वरूप, सदस्य कोई विशेष व्यक्तिगत रुचि नहीं लेते। इस रुचि के अभाव में इसका संचालन, प्रेरणाविहीन तथा यान्त्रिक बन जाता है जो इनकी कुशलता व लाभ को कम कर देता है।
5. **सीमित पूँजी**—सहकारी समितियां अधिकतर सीमित मात्रा में ही पूँजी जुटा सकती हैं क्योंकि उनके सदस्य अधिकतर सीमित क्षेत्र के होते हैं एवं उनकी आय भी सीमित होती है। एक व्यक्ति एक वोट का सिद्धान्त एवं लाभांश की निश्चित सीमा भी उत्सुक विनियोक्ताओं को निरूत्साहित करती है।
6. **लोच का अभाव**—सहकारी समितियों के अधिकांश लेनदेन नकद होते हैं जिससे निर्धन तथा मध्यम वर्ग के व्यक्तियों को इन समितियों से व्यवहार करने में कठिनाई होती है। इसी प्रकार इनके अन्य नियम भी निश्चित तथा कठोर होते हैं।
7. **भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति**—सहकारी संगठनों में इनके सदस्यों में स्वार्थ भावना की प्रवृत्ति होने के कारण भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति में वृद्धि हुई है।
8. **उचित लेखा पद्धति का अभाव**—सहकारी समितियों के हिसाब-किताब में भी कई प्रकार की गड़बड़ियां पाई जाती हैं। स्वार्थी सदस्य समिति के धन का भी गबन कर लेते हैं।
9. **गोपनीयता की कमी**—सहकारी समितियों का समस्त प्रबन्ध इनके सदस्यों द्वारा ही चलाया जाता है। अत: इनसे सम्बन्धित सभी बातों का पता सभी सदस्यों को होने के कारण गोपनीयता का अभाव रहता है।

प्र.11. निजी कम्पनी की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

निजी कम्पनी की विशेषताएँ
(Characteristics of Private Company)

एक निजी संगठन की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. **निजी वित्त**—निजी कम्पनियों की एक और विशेषता यह है कि आवश्यक वित्त निजी रूप से प्राप्त किया जाता है। यहाँ, कम्पनियों के स्वामी स्वयं के सम्बन्धित व्यावसायिक उपक्रमों के लिए वित्त का प्रबन्धन करते हैं, जबकि एक साझेदारी फर्म में, धन का प्रबन्धन उसके साझेदारों द्वारा किया जाता है। इसलिए, एकल स्वामित्व में, एकल व्यापारी द्वारा कुल पूँजी

का अंशदान किया जाता है। इसी प्रकार, साझेदारी फर्मों में शामिल साझेदार आवश्यक कुल पूँजी की व्यवस्था करते हैं। संयुक्त स्कन्ध कम्पनियों के सम्बन्ध में, अंश तथा ऋणपत्र जारी किए जाते हैं जिससे पूँजी प्राप्त हो सके। निजी कम्पनियों द्वारा स्वयं की लघु एवं दीर्घ अवधि की आवश्यकताओं के लिए विभिन्न ऋण भी लिए जा सकते हैं।

2. **लाभ उन्मुख**—निजी कम्पनियों की दूसरी विशेषता यह है कि ये लाभ उन्मुख होते हैं। लाभ को अधिकतम करना सभी निजी कम्पनियों का मुख्य उद्देश्य है। उद्यमियों को निजी कम्पनी में जाने के लिए प्रेरित करने वाला एकमात्र कारक 'लाभ' हैं। यह वह लाभ है जो उद्यमियों को उद्यमशीलता के जोखिमों के लिए पुरस्कारों के साथ-साथ निवेशित पूँजी पर अपेक्षित प्रतिफल के बारे में सुनिश्चित करता है।
3. **निजी स्वामित्व एवं नियन्त्रण**—निजी कम्पनियों की सर्वप्रथम विशेषता यह है कि उनका स्वामित्व एवं नियन्त्रण निजी उद्यमियों द्वारा किया जाता है। ये उद्यमी व्यक्तिगत रूप से या सामूहिक रूप से एक निजी कम्पनी को नियन्त्रित करते हैं। जब एक निजी उद्यमी पूर्ण रूप से निजी कम्पनी का स्वामी होता है तथा उसका प्रबन्धन करता है, तो इसे "एकल स्वामित्व" कहा जाता है। साझेदारी फर्मों, संयुक्त स्कन्ध कम्पनियों, सरकारी समितियों आदि में, कम्पनी का संयुक्त स्वामित्व तथा प्रबन्धन विभिन्न निजी उद्यमियों के समूह द्वारा किया जाता है।
4. **सदस्यों की संख्या**—निजी कम्पनियों को न्यूनतम एवं अधिकतम सदस्यों की पूर्व-निर्धारित संख्या द्वारा भी निरूपित किया जाता है। कम्पनियों को इन मानदण्डों को पूरा करने की आवश्यकता होती है। निजी स्वामित्व वाली कम्पनी में न्यूनतम सीमा 2 सदस्यों की है तथा अधिकतम सीमा 50 सदस्यों से अधिक नहीं होती है।
5. **पूँजी**—एक निजी कम्पनी के लिए न्यूनतम एवं अधिकतम प्रदत्त पूँजी के लिए कोई सीमा नहीं है। स्वामी कम्पनी को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए अपेक्षित धनराशि जितना सम्भव हो, उसका प्रबन्ध कर सकते हैं।
6. **सरकार की कोई भूमिका नहीं होना**—निजी कम्पनियों की एक और विशेषता यह है कि ये सरकार से प्रभावित नहीं होते हैं। निजी कम्पनियों के नियन्त्रण एवं स्वामित्व में राज्य या केन्द्र सरकार की कोई भूमिका नहीं होती है।
7. **स्वतन्त्र प्रबन्धन**—निजी कम्पनियों को में स्वतन्त्र प्रबन्धन की विशेषता होती है। स्वामियों पर निजी कम्पनियों के समग्र प्रबन्ध का दायित्व होता है। ये स्वामी/मालिक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निजी कम्पनियों के प्रबन्धन में शामिल होते हैं। इस प्रकार एकल व्यापारी या साझेदार प्रत्यक्ष रूप से कम्पनी का प्रबन्धन करते हैं जबकि संयुक्त स्कन्ध कम्पनियों का प्रबन्धन इसके निदेशक मण्डल द्वारा स्वामियों द्वारा चयनित किया जाता है।

प्र.12. निजी कम्पनी के प्रमुख लाभ व हानि का वर्णन कीजिए।

उत्तर

निजी कम्पनी के लाभ
(Advantages of Private Company)

निजी कम्पनी के लाभ निम्नलिखित दिए गए हैं—

1. **रोजगार**—निजी कम्पनियाँ व्यक्तियों के लिए रोजगार के अधिक अवसर प्रकट करती हैं। राज्य द्वारा संचालित अर्थव्यवस्था में रोजगार के सीमित अवसर होने के कारण रोजगार सीमित है। उच्च प्रतिस्पर्धा के साथ-साथ रोजगार सृजन के अवसर निजी कम्पनियों का सार है। निजी क्षेत्र में कर्मचारियों के लिए आय प्राप्त करने के अवसर सार्वजनिक क्षेत्र के कर्मचारियों की तुलना में अधिक होते हैं।
2. **अल्प मूल्यों के साथ विकल्पों की विविधता**—सार्वजनिक उद्यमों की स्थिति में उपलब्ध वस्तुओं एवं सेवाओं की विविधता अत्यधिक सीमित होती हैं जबकि निजी उद्यम विभिन्न विकल्पों के साथ ग्राहकों को वस्तुएँ प्रदान करते हैं। ग्राहकों की विविध माँगों को पूर्ण करने के लिए विपणन में एक से अधिक विनिर्माण की उपस्थिति मूल्यों में प्रतिस्पर्धा प्रकट करती है। परिणामस्वरूप ग्राहकों को उत्पादों एवं सेवाओं के मूल्यों में कमी से लाभ प्राप्त होता है।
3. **लचीलापन**—इन निजी कम्पनियों की संगठनात्मक संरचना प्रकृति में लचीली होती है तथा निधि को एकत्रित करने के लिए अंशों को शीघ्रता से स्थानांतरित या सूचीबद्ध किया जा सकता है।
4. **ग्राहक केन्द्रित**—सार्वजनिक क्षेत्र के विपरीत, निजी क्षेत्र की फर्मों का मुख्य उद्देश्य उत्पादन तकनीकों में सुधार करना होता है, जो व्यक्तियों को वांछित उत्पादों सेवाओं को प्रस्तुत करने की सुविधा प्रदान करता है। इसलिए निजी क्षेत्र की फर्मों

की सफलता ग्राहकों की गतिशील आवश्यकताओं एवं स्वेच्छाओं को अनुकूलित करने, नियमित रूप से निगरानी करने तथा तुरन्त प्रतिक्रिया प्रदान करने में उनकी कुशलता का परिणाम है।

5. **नवीनीकरण**—निजी कम्पनियों का एक और गुण यह है कि वे प्रौद्योगिकी में नवीनीकरण तथा नए विकास का समर्थन करते हैं। निजी कम्पनियों द्वारा समाज को विभिन्न नए एवं नवीन उत्पादों तथा सेवाओं को प्रस्तुत किया जाता है। इन नवाचारों से व्यक्तियों के जीवन स्तर में सुधार होता है।

निजी कम्पनी की हानियाँ
(Disadvantages of Private Company)

निजी कम्पनी की हानियाँ इस प्रकार हैं—

1. **सीमित कार्य के भत्ते**—कुछ व्यक्तियों द्वारा प्रदत्त सीमित बीमा एवं सेवानिवृत्ति योजनाओं के अतिरिक्त सरकारी क्षेत्र के कार्यों की तुलना में निजी कम्पनियों में कार्य से सम्बन्धित भत्ते बहुत कम हैं।
2. **गला काट प्रतिस्पर्धा**—निजी फर्मों में कर्मचारियों के मध्य गला काटने की प्रतिस्पर्धा होती है। स्वयं के कार्य को बनाए रखने तथा विकास सुनिश्चित करने के लिए कर्मचारियों को अत्यधिक परिश्रम करना पड़ता है।
3. **व्यस्त कार्य वातावरण**—निजी क्षेत्र की फर्मों में कार्य का वातावरण सार्वजनिक क्षेत्र के संगठनों की तुलना में अत्यधिक व्यस्त है। यहाँ, एक निश्चित समय-अवधि के अन्दर लक्ष्य प्राप्त करने के लिए निर्धारित किया जाता है तथा उत्पादन प्रक्रियाओं में पूर्णता की आवश्यकता होती है। दीर्घ समय तक कार्य करने के घण्टे तथा अतिरिक्त कार्य पाली निजी फर्मों की सामान्य विशेषता है। यह सब कर्मचारियों के मध्य मानसिक एवं शारीरिक तनाव उत्पन्न करता है।
4. **लघु व्यवसायों को हानि**—निजी कम्पनियाँ सदैव लाभदायक नहीं होती है। कुछ अवगुण होते हैं जैसे—वे स्वयं के व्यवसाय को दबाकर लघु व्यावसायिक फर्मों के विकास में बाधा उत्पन्न करते हैं। इसलिए ये फर्म ग्राहकों को दीर्घ मात्रा में वस्तुएँ एवं सेवाएँ प्रदान करती हैं जिसके परिणामस्वरूप विपणन में उच्च प्रतिस्पर्धा होती है। इस बीच, इस प्रक्रिया में ये निजी कम्पनियाँ लघु व्यवसायों को कुचल सकती हैं।
5. **नौकरी जाने का भय**—सार्वजनिक क्षेत्र के तुलना में निजी क्षेत्र की की फर्में अधिक अस्थिर होती हैं। नियोक्ता कुछ कर्मचारियों को गैर प्रतिकूल परिस्थितियों में जैसे—धीमा व्यवसाय या खराब आर्थिक परिस्थितियों में बर्खास्त कर सकते हैं। इस प्रकार निजी कम्पनियों में कार्य करने से इसके साथ विशेष रूप से अस्थिर आर्थिक परिस्थितियों में अत्यधिक जोखिम रहता है।
6. **पारदर्शिता में कमी**—निजी कम्पनियों में पारदर्शिता की कमी होती है तथा वे अपने निवेशकों तथा व्यावसायिक सहयोगियों को स्वयं के आंतरिक कार्यों के बारे में पूर्ण प्रमाणिक सूचना नहीं प्रदान करते हैं। इससे अंशधारकों तथा प्रबन्धन के मध्य संघर्ष का विकास होता है। इस स्थिति के कारण कम्पनियों का समग्र प्रदर्शन व्यर्थ हो जाता है।
7. **लाभ पर अधिक ध्यान**—सार्वजनिक क्षेत्र के फर्म के विपरीत, जो आपात स्थिति या कठिनाइयों के दौरान सामाजिक रूप से व्यवहार्य पहल करती है, निजी क्षेत्र की फर्मों का मुख्य उद्देश्य समाज कल्याण की चिन्ता किए बिना लाभ में वृद्धि करना होता है। निजीकरण के कारण एक फर्म की स्थापना का उद्देश्य खो जाता है तथा विभिन्न अनैतिक गतिविधियों जैसे—छिपी अप्रत्यक्ष लागतों में वृद्धि करना, निम्न गुणवत्ता वाले उत्पादों का उत्पादन, मूल्य में अनावश्यक वृद्धि आदि को बढ़ावा देने के माध्यम से पूरा ध्यान लाभ को अधिकतम करने के लिए स्थानांतरित हो जाता है।
8. **भ्रष्टाचार**—भ्रष्टाचार तथा लाइसेंस प्राप्त करने के लिए अनैतिक प्रकार से व्यापारिक सौदे ऐसी हानियाँ हैं जिन्हें इन सार्वजनिक क्षेत्र की फर्मों द्वारा सरकारी एवं निजी बोलीदाताओं के मध्य बढ़ावा दिया जाता है। भ्रष्टाचार की कुछ लोकप्रिय समस्याएँ रिश्वतखोरी एवं पैरवी हैं।

प्र.13. भारतीय अर्थव्यवस्था में निजी कम्पनियों की क्या भूमिका है? समझाइए।

उत्तर

भारतीय अर्थव्यवस्था में निजी कम्पनियों की भूमिका
(Role of Private Companies in Indian Economy)

निजी कम्पनियाँ भारतीय अर्थव्यवस्था में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं जिसे अग्रलिखित बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया गया है—

1. **जीवन स्तर में वृद्धि**—निजी कम्पनियाँ उपलब्ध विपणन के अवसरों का लाभ उठाती हैं जिससे देश में रोजगार का सृजन किया जा सके। इस रोजगार से व्यक्तियों की उच्च गुणवत्ता के उत्पाद एवं सेवाएँ प्राप्त की जाती हैं। इस प्रकार निजी कम्पनियों के माध्यम से जीवन की समग्र गुणवत्ता में सुधार किया जाता है।
2. **अनिवार्य वस्तुओं एवं सेवाओं तक पहुँच में वृद्धि**—इस प्रकार की प्रणाली में जैसा कि निजी कम्पनियाँ विभिन्न मूल्यों में विभिन्न प्रकार के वस्तुएँ एवं सेवाएँ प्रदान करती हैं, यह उपभोक्ताओं को उनकी आय के अनुसार विभिन्न प्रकार के विकल्प प्रदान करती है। इस प्रकार, समाज के विभिन्न वर्ग की आवश्यक वस्तुओं एवं सेवाओं का लाभ प्राप्त कर सकते हैं।
3. **उत्पादन के अवसरों में वृद्धि**—पूर्व कुछ वर्षों में निजी कम्पनियों के देश की जीडीपी (सकल घरेलू उत्पाद) में योगदान को देखकर यह स्पष्ट है कि उनके पास अच्छे उत्पादन के अवसर हैं। यह सरकारी कम्पनियों के निष्पादन से कहीं बेहतर हैं।
4. **मानव पूँजी मूल्य में वृद्धि**—निजी कम्पनियाँ सदैव स्वयं के उद्देश्य दृष्टि, मूल मूल्यों, नीतियों, रणनीतियों आदि को प्रारूपित करते समय विभिन्न मानवीय एवं सामाजिक विचारों पर विचार करती हैं।
5. **भारतीय मध्यम वर्ग का बेहतर सामाजिक जीवन**—निजी कम्पनियों ने समाज के निम्न एवं मध्यम वर्ग दोनों के सामाजिक जीवन में सुधार किया है। समाज के लिए भिन्न-भिन्न मूल्य श्रेणियों में विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ एवं सेवाएँ उपलब्ध हैं।
6. **धारणा में परिवर्तन**—निजी कम्पनियों ने भारत के बारे में, विश्व की धारणा को परिवर्तित कर दिया है। पहले इसे कृषि अर्थव्यवस्था के रूप में माना जाता था परन्तु विभिन्न विनिर्माण एवं सेवा कम्पनियों के निर्माण के कारण, अब इसे एक बढ़ती हुई विशालता के रूप में माना जाता है। विभिन्न विदेशी कम्पनियों ने विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं की आपूर्ति के लिए देश की सीमाओं में प्रवेश किया है।

प्र.14. एकल व्यक्ति कम्पनी को प्राप्त विशेषाधिकारों का वर्णन कीजिए।

उत्तर

एकल व्यक्ति कम्पनी को विशेषाधिकार/छूटें
(Privileges/Exemptions to One Person Company)

एकल व्यक्ति कम्पनी को निम्नलिखित विशेषाधिकार/छूटें प्राप्त हैं—

1. **नकद प्रवाह विवरण तैयार करने की आवश्यकता नहीं है [धारा 2(40)]**—एकल व्यक्ति कम्पनी को अपने वित्तीय विवरण में नकद प्रवाह विवरण सम्मिलित नहीं करना पड़ता है अर्थात् एकल व्यक्ति कम्पनी को नकद प्रवाह विवरण तैयार करने की आवश्यकता नहीं है।
2. **वार्षिक विवरणी पर हस्ताक्षर [धारा 92]**—एकल व्यक्ति कम्पनी की वार्षिक विवरणी पर केवल कम्पनी सचिव के हस्ताक्षर होने आवश्यक हैं। यदि कोई कम्पनी सचिव नहीं है तो कम्पनी के संचालक द्वारा वार्षिक विवरणी पर हस्ताक्षर किये जा सकते हैं।
3. **वार्षिक साधारण सभा (AGM) बुलाने की आवश्यकता नहीं [धारा 96]**—एकल व्यक्ति कम्पनी को वार्षिक साधारण सभा बुलाने की आवश्यकता नहीं होती।
4. **अधिकरण असामान्य साधारण सभा (EGM) बुलाने का आदेश नहीं दे सकता [धारा 122]**—अधिकरण किसी भी एक व्यक्ति कम्पनी को असामान्य साधारण सभा बुलाने का आदेश नहीं दे सकता।
5. **वार्षिक साधारण सभा (AGM) एवं असामान्य साधारण सभा (EGM) के सम्बन्ध में धारा 100 से धारा 111 तक के प्रावधानों का लागू न होना**—किसी भी एकल व्यक्ति कम्पनी पर ये प्रावधान लागू नहीं होते हैं। इन धाराओं में असामान्य साधारण सभा, कम्पनियों की सभाओं की सूचना, सचना के साथ संलग्न किये जाने वाले महत्वपूर्ण तथ्यों का व्याख्यात्मक विवरण, सभाओं की गणपूर्ति की संख्या, सभाओं का अध्यक्ष, परोक्षी, मतदान, मतांकन की मांग, डाक मत-पत्र आदि से सम्बन्धित प्रावधान दिये गये हैं।
6. **संचालक मण्डल की सभाएँ [धारा 173]**—प्रत्येक एकल व्यक्ति कम्पनी को जिसमें संचालकों की संख्या 2 या 2 से अधिक हो प्रत्येक अर्द्ध-वर्ष अर्थात् छमाही में संचालक मण्डल की कम-से-कम एक सभा आयोजित करनी पड़ती है

अर्थात् प्रतिवर्ष कम-से-कम दो सभाएँ आयोजित करनी पड़ती हैं एवं दो सभाओं के बीच 90 दिन से कम का अन्तराल नहीं होना चाहिए। परन्तु यदि किसी एकल व्यक्ति कम्पनी में एक ही संचालक हो तो उसे संचालक मण्डल की सभा आयोजित करने की कोई आवश्यकता नहीं होती है।

7. **वित्तीय विवरण फाइल करना [धारा 137]**—एकल व्यक्ति कम्पनी (OPC) को अपना वित्तीय विवरण वित्तीय वर्ष की समाप्ति के 180 दिनों के भीतर रजिस्ट्रार के पास फाइल करना होता है।

प्र.15. एकल व्यक्ति कम्पनी की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

एकल व्यक्ति कम्पनी की विशेषताएँ
(Characteristics of One Person Company)

एकल व्यक्ति कम्पनी की विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

1. **व्यक्तिगत स्वतन्त्रता**—इसके अन्तर्गत व्यक्ति, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की इच्छाओं को पूरा करने के लिए अपनी आवश्यकताओं के अनुसार व्यवसाय का प्रकार चुन सकता है।
2. **व्यक्तिगत प्रतिबद्धता**—जैसा कि केवल एक सदस्य है व्यवसाय के लिए एक व्यक्तिगत प्रतिबद्धता होती है।
3. **पंजीकरण की न्यूनतम लागत**—ओपीसी की पंजीकरण लागत एक निजी लिमिटेड कम्पनी की तुलना में अपेक्षाकृत कम होती है।
4. **अंशधारक के लिए नामांकन**—एक व्यक्ति, कम्पनी के अन्तर्गत अंशधारक अन्य व्यक्ति को अंशधारक बनने के लिए नामित कर सकते हैं यदि मूल अंशधारक की मृत्यु या अक्षमता की स्थिति होती है। इस प्रयोजन के लिए नामांकित व्यक्ति को नियुक्त होने के लिए सहमति प्रदान करनी होगी। उसे भारतीय नागरिकता के साथ भारत में रहने वाला एक वास्तविक व्यक्ति होना चाहिए।
5. **निरन्तर उत्तराधिकार**—एक व्यक्ति कम्पनी एकल सदस्य की मृत्यु या अक्षमता के कारण भंग नहीं होती है। निरन्तर उत्तराधिकार (ओपीसी) ही इसकी मूल विशेषता है। एकल सदस्य का जीवन कम्पनी (ओपीसी) के जीवन का निर्धारण नहीं करता है, क्योंकि ये कम्पनियाँ एकल सदस्य के जीवन से पूरी तरह से स्वतन्त्र होती हैं। जब तक एक व्यक्ति कम्पनी का परिसमापन नहीं होता है तब तक फर्म का संचालन इसके एकल सदस्य के जीवन की परवाह किए बिना जारी रहता है।
6. **सीमित दायित्व**—एक व्यक्ति कम्पनी की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ एकल सदस्य का सीमित दायित्व होता है। इन कम्पनियाँ को पृथक कानूनी संस्थाओं के रूप में माना जाता है और ऐसी कम्पनियों की सभी देनदारियों का भुगतान सम्पत्ति के स्वामी द्वारा किया जाता है। सरल शब्दों में, एकल सदस्य का दायित्व सीमित होता है। उनका योगदान कम्पनी के नाममात्र मूल्यों से अधिक नहीं हो सकता। एक व्यक्ति ऐसी स्थितियों में, जहाँ फर्म की कुल सम्पत्ति कम्पनी के लेनदारों को भुगतान करने के लिए पर्याप्त नहीं है, कम्पनी (ओपीसी) की पूँजी से अधिक किसी भी कारण से भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं होता है।

प्र.16. एकल व्यक्ति कम्पनी के लाभ व हानि बताइए।

उत्तर

एकल व्यक्ति कम्पनी के लाभ
(Advantages of One Person Company)

एकल व्यक्ति कम्पनी के गुण निम्नलिखित हैं—

1. **पर्याप्त सुरक्षा उपाय**—एकल सदस्य की मृत्यु या विकलांगता की स्थिति होने पर एक व्यक्ति को नामित निदेशक के रूप में नियुक्त किया जा सकता है। फर्म के सभी संचालन को मूल निदेशक की मृत्यु की स्थिति में नामित निदेशक द्वारा प्रबंधित किया जाएगा, जब तक कि मरने वाले सदस्य के कानूनी उत्तराधिकारियों को अंशों का हस्तान्तरण नहीं किया जाता है।
2. **बैंकों से सरल ऋण**—व्यावसायिक फर्मों के बजाय ओपीसी के लिए बैंकों से ऋण प्राप्त करना काफी सरल है। किसी भी प्रकार के ऋण प्रदान करने से पहले, बैंक उद्यमियों से अनुरोध करते हैं कि वे अपनी फर्मों को एक निजी लिमिटेड कम्पनी में परिवर्तित करें। इस प्रकार, व्यवसायिक व्यक्तियों के लिए अपनी कम्पनियों को एक व्यक्ति निजी लिमिटेड कम्पनी के रूप में पंजीकृत करना सरल होता है।

TOUCH 'n PASS

3. **व्यवसाय के लिए कानूनी स्थिति और सामाजिक मान्यता**—ओपीसी के पास एक व्यवसाय सेटअप होता है जो निजी सीमित संगठन के समान है और इसे पूरे विश्व में सबसे लोकप्रिय व्यवसाय के रूप में जाना जाता है। इस प्रकार की व्यावसायिक संरचनाएँ व्यवसाय का संचालन करने में ग्राहकों और आपूर्तिकर्त्ताओं के प्रति विश्वास की भावना प्रदान करती हैं। बड़े संगठन व्यावसायिक गतिविधियों के संचालन के लिए स्वामित्व फर्मों के विरूद्ध निजी सीमित कम्पनियों को उच्च प्राथमिकता देते हैं। समाज इन संगठनों को निजी सीमित संगठनों के समान मानता है, जो उन्हें निगमित पदनाम जैसे निर्देशन की पेशकश करके गुणात्मक जनशक्ति को आकर्षित करने और बनाए रखने में सक्षम बनाते हैं। इस प्रकार, इसे कानूनी और सामाजिक मान्यता प्राप्त है।
4. **स्वामित्व कम्पनी का संगठित क्षेत्र**—स्वामित्व का असंरचित क्षेत्र ओपीसी की सहायता से एक निजी लिमिटेड कम्पनी के संरचित रूप में परिवर्तित हो सकता है। वे विभिन्न लघु और मध्यम उद्यमों को जो निगम के क्षेत्र में एकमात्र स्वामी के रूप में कार्य कर रहे हैं, निर्देशित कर सकते हैं। साथ ही, ओपीसी के संगठित रूप से बेहतर और अनुकूल बैंकिंग सुविधाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। जब असीमित दायित्व वाले स्वामित्व ओपीसी के साथ अपने व्यवसाय के संचालन का प्रदर्शन करना प्रारम्भ करते हैं, तो इसमें शामिल सदस्यों का दायित्व सीमित हो जाता है।

एकल व्यक्ति कम्पनी की हानियाँ
(Disadvantages of One Person Company)

निम्नलिखित एकल कम्पनी के हानि निम्नलिखित हैं—

1. **उच्च अनुपालन लागत**—एक व्यक्ति कम्पनी को कम्पनी अधिनियम, 2013 के अन्तर्गत कम्पनियों के रजिस्ट्रार के साथ नामांकित किया जाना आवश्यक है। यह आवश्यकता विशेषज्ञों (जैसे चार्टर्ड एकाउंटेंट) और सरकारी शुल्क के लिए भुगतान किए गए शुल्क सहित उच्च अतिरिक्त लागतों को पूरा करती है।
2. **केवल लघु व्यवसाय के लिए उपयुक्त**—एक ओपीसी के लिए, अधिकतम प्रदत्त अंशपूँजी पूँजी 50 लाख या 2 करोड़ का है। यदि यह राशि उल्लिखित राशि से अधिक होती है, तो ओपीसी को एक निजी लिमिटेड कम्पनी में परिवर्तित करना पड़ता है। इस प्रकार, एक व्यक्ति वाली कम्पनी केवल छोटे व्यवसाय के संचालन के लिए उपयुक्त है।
3. **कर दायित्व**—आईटी अधिनियम ओपीसी की अवधारणा की पहचान नहीं करता है और इसलिए यह उन्हें कराधान के लिए निजी कम्पनियाँ के कर स्लैब के अन्तर्गत वर्गीकृत करता है। इसका तात्पर्य यह है कि ओपीसी को अन्य निजी फर्मों द्वारा भुगतान किए गए करों के समान भुगतान करना होगा। आयकर अधिनियम, 1961 के अनुसार, निजी कम्पनियों को कुल आय पर 30 प्रतिशत के कर स्लैब के अन्तर्गत रखा गया है। हालांकि, एकमात्र स्वामी के लिए कर स्लैब सामान्य व्यक्तियों के समान हैं। इसका तात्पर्य है कि ऐसी कम्पनियों को अपनी अर्जन के हिसाब से कर देना होगा।
4. **सदस्यों की न्यूनतम संख्या**—ओपीसी के अन्तर्गत सदस्यों की न्यूनतम और अधिकतम संख्या केवल एक है। इसमें कोई भी सामान्य व्यक्ति सदस्य के रूप में नामांकित होने के योग्य नहीं होता है। एकल व्यक्ति जिसे एक व्यक्ति वाली कम्पनी के लिए नामित किया जा सकता है, उसे भारतीय नागरिकता के साथ भारत में रहने वाला एक वास्तविक और प्राकृतिक व्यक्तित्व का होना चाहिए।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. व्यवसाय प्रवर्तन के अर्थ को समझाते हुए इसकी परिभाषा दीजिए। प्रवर्तन की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर

व्यवसाय प्रवर्तन का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definition of Business Promotion)

सबसे पहले किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह के मस्तिष्क में किसी व्यवसाय के सम्बन्ध में विचार उत्पन्न हो। तत्पश्चात इस विचार के आधार पर व्यवसाय की स्थापना के लिए कुछ प्रारम्भिक कार्यों को पूरा करना पड़ता है। यह विचार वस्तुओं या सेवाओं के क्रय-विक्रय सम्बन्धी हो सकता है या वस्तुओं के उत्पादन के लिए नवीन कारखाना स्थापित करने के सम्बन्ध में हो सकता है अथवा किसी विद्यमान व्यवसाय को ही खरीदने से सम्बन्धित हो सकता है।

अत: व्यवसाय की स्थापना करने से पहले यह अत्यन्त आवश्यक है कि विचार की उपयोगिता, क्रियात्मक एवं आर्थिक औचित्य की पूर्ण जाँच की जाये। इस सम्बन्ध में यह जाँच करनी चाहिए कि व्यवसाय का क्षेत्र क्या होगा, आवश्यक सामग्री, श्रम, मशीनें, भूमि, भवन एवं अन्य सुविधाएं (शक्ति, जल, परिवहन, बैंकिंग आदि) कैसे प्राप्त होगी, प्रबन्ध-व्यवस्था क्या होगी, कितनी पूँजी की आवश्यकता होगी तथा वह किस प्रकार जुटाई जाएगी? इन सभी बातों की जाँच-पड़ताल के लिए, अनुभवी एवं दक्ष विशेषज्ञों की सलाह व सेवाएँ भी प्राप्त की जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त, इस बात पर भी विचार करना होगा कि व्यवसाय की स्थापना के सम्बन्ध में क्या-क्या वैधानिक कार्यवाहियाँ करनी होंगी। व्यवसाय के निर्माण सम्बन्धी इन कार्यों को ही प्रवर्तन (Promotion) कहा जाता है।

प्रवर्तन की परिभाषा—प्रवर्तन की कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती क्योंकि विभिन्न विद्वानों ने इसकी परिभाषा भिन्न-भिन्न प्रकार से दी है जिनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं—

सी० डब्ल्यू० गर्टनबर्ग के अनुसार, "व्यावसायिक अवसरों की खोज एवं तत्पश्चात् धन सम्पत्ति और प्रबन्धकीय योग्यता को एक व्यावसायिक संस्था के रूप में संगठित करने को 'प्रवर्तन' कहते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन के पश्चात् हम 'प्रवर्तन' को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं—"प्रवर्तन किसी व्यावसायिक उद्यम को स्थापित करने की प्रविधि है जिसके अन्तर्गत व्यवसाय सम्बन्धी सुअवसरों की खोज की जाती है तथा उनकी अच्छी तरह जाँच पड़ताल कर लाभार्जन हेतु, उन्हें कार्य रूप में परिणत करने के लिए समस्त आवश्यक साधनों एवं सेवाओं आदि को जुटाकर, संस्था को व्यवसाय करने योग्य बनाया जाता है।"

प्रवर्तन की अवस्थाएँ/पद्धतियाँ
(Methods/Stages of Promotion)

1. **व्यवसाय-स्थापना का विचार**—सर्वप्रथम व्यवसाय आरम्भ करने का विचार किसी के मस्तिष्क में आता है। यह कल्पनाशील विचार रचनात्मक होना चाहिए। केवल हवाई-महल बनाने से कोई लाभ नहीं हो सकता। रचनात्मक काल्पनाशील विचार के लिए ठोस योजना, महान अनुभव एवं ज्ञान की आवश्यकता होती है। ठोस विचार ही व्यवसाय को मूर्त रूप दे सकता है। कपोल-कल्पित व्यवसाय सम्बन्धी मनसूबे स्वप्न-मात्र हैं जो आगे चलकर उड़ान लेने में बिल्कुल असमर्थ होते हैं। **प्रो० मैकनोटन** ने ठीक ही व्यक्त किया है—"प्रत्येक व्यावसायिक उद्यम का उड़ान-बिन्दु एक विचार होता है। विचार वह शक्ति है जो प्रत्येक व्यावसायिक उद्यम को इसके गति-मार्ग पर रखता है। वे उद्यम जिनके पास मौलिक एवं व्यावहारिक विचारों का शक्ति-साधन नहीं होता प्रकाशहीन हो जायेंगे और लुप्त हो जायेंगे।"
   अत: यह स्पष्ट है कि व्यवसाय के बारे में सबसे पहले सुदृढ़ विचार जो क्रियान्वित किया जा सके एक व्यवसायाकांक्षी व्यक्ति के मस्तिष्क में अवश्य आना चाहिए इससे ही व्यवसाय का सूत्रपात होता है।
   व्यवसाय सम्बन्धी विचार नई वस्तुओं के उत्पादन के लिए कारखाना लगाना हो सकता है अथवा पुरानी वस्तु का उपयोगी सुधार करना हो सकता है। इस प्रकार का कोई भी व्यवसाय आरम्भ करना हो तो सर्वप्रथम इससे सम्बद्ध विचार मस्तिष्क में आना आवश्यक हैं।
2. **प्रारम्भिक अन्वेषण**—व्यवसाय स्थपना से पूर्व व्यवसाय सम्बन्धी सभी बातों की भली प्रकार से जाँच-पड़ताल कर लेनी चाहिए, जिससे व्यावसायिक सुअवसरों का पता लग सके और व्यवसाय को मूर्तरूप देने के लिए आवश्यक उपलब्ध साधनों का भी ठीक अनुमान लगाया जा सके। आजकल नवीन व्यवसाय की स्थापना या संविलियन के समय प्रतिष्ठित शोध संस्थानों को पारिश्रमिक देकर इस प्रारम्भिक अन्वेषण-कार्य के लिए विशेषज्ञ की सेवाएँ प्राप्त की जा सकती हैं एवं जो साधन हमारे देश में उपलब्ध हैं, उनका पूरा उपयोग कर प्रारम्भिक अन्वेषण का कार्य ठीक प्रकार सम्पन्न करना ही व्यावसायिक सूझ-बूझ है। इसमें शीघ्रता नहीं करनी चाहिए। भारत में टाटा का विशाल लोहा व इस्पात का कारखाना इस प्रारम्भिक अन्वेषण का ही सफल प्रयोग है। इसके संस्थापक जमशेदजी टाटा ने इसकी स्थापना के पूर्व वर्षों विदेशों में भ्रमण किया और इसकी सम्भावनाओं के प्रति पूरी तरह खोज करके ही इसकी स्थापना की।
3. **योजना का निर्माण**—योजनाबद्ध कार्य सफलता के लिए आवश्यक है। अत: व्यवसाय प्रारम्भ करने से पूर्व उसकी योजना बना लेनी चाहिए जिससे व्यवसाय सम्बन्धी सारी बातों का ज्ञान हो सके। बिना योजना के व्यवसाय आरम्भ करना अंधेरे में कूदने के समान है। **विलियम एच० न्यूमैन** के शब्दों में, "सामान्यत: भविष्य में क्या करना है, इसे पहले से ही निश्चय करना नियोजन कहलाता है।"

अत: यह स्पष्ट है कि नियोजन व्यवसाय का आधारभूत कार्य है। इसके बिना व्यवसाय दिशाहीन तथा निरुद्देश्य हो जाता है, फलत: साधनों का दुरुपयोग होता है, व्यवसाय-परिचालन में कुशलता नहीं आती और भविष्य के बारे में अनिश्चितता बनी रहती है। इसीलिए व्यवसाय आरम्भ करने से पूर्व सुनिश्चित योजना तैयार कर लेनी चाहिए जिससे व्यवसाय का कार्य सुचारू रूप से चल सके। यह ठीक ही कहा गया है—"किसी कार्य को भली प्रकार आरम्भ करना आधा कार्य पूरा हो जाना है।"

4. **पूँजी एवं अन्य साधनों को जुटाना**—प्रत्येक व्यवसाय को प्रारम्भ करने से पूर्व उसके लिए पर्याप्त पूँजी की आवश्यकता पर विचार करना चाहिए। बिना धन के कोई भी व्यवसाय आरम्भ नहीं किया जा सकता। कितना ही छोटे से छोटा व्यवसाय क्यों न हो, कुछ-न-कुछ पूँजी की आवश्यकता तो उसे पड़ती ही है। अत: यह स्पष्ट है कि पूँजी के बिना व्यवसाय की कल्पना ही नहीं की जा सकती। व्यवसाय आरम्भ करने से पूर्व व्यवस्थापक को यह देख लेना चाहिए कि व्यवसाय-परिचालन के लिए पूँजी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है।

पूँजी का संग्रहण व्यवसाय की आवश्यकता के अनुसार ही होना चाहिए। पूँजी की मात्रा न तो आवश्यकता से अधिक होनी चाहिए और न आवश्यकता से कम। आवश्यकता से कम पूँजी होने पर व्यवसाय की उन्नति में बाधाएँ उत्पन्न हो सकती है और ऋणदाताओं को भुगतान समय पर न होने से व्यावसायिक संस्था की प्रतिष्ठा को क्षति पहुंचना स्वाभाविक है। इसके विपरीत, यदि पूँजी आवश्यकता से अधिक हुई तो व्यवसायी सट्टे की ओर प्रवृत्त हो सकता है तथा व्यवसाय को प्रबन्धकीय क्षमता की सीमा से परे तक बढ़ाने का प्रलोभन हो सकता है जिससे अकुशलता उत्पन्न हो सकती है। यही नहीं, लाभांश की दर में गिरावट आ जाती है और उस व्यवसाय के बाजार में अंशों का मूल्य घट जाता है।

प्र.2. नए व्यवसाय को प्रारम्भ करते समय किन-किन कारकों पर विचार किया जाना चाहिए? वर्णन कीजिए।

उत्तर

नए व्यवसाय की स्थापना करने पर विचार करना
(Considerations in Establishing New Business)

व्यवसाय प्रारम्भ करते समय, निम्नलिखित कारकों पर विचार किया जाना चाहिए—

1. **व्यावसायिक इकाई का आकार**—व्यवसाय इकाई के आकार तथा उसके संचालन की सीमा का निर्धारण करना एक नया व्यवसाय स्थापित करने के निर्णय को प्रभावित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण कारक है। एक उद्यमी का उद्देश्य एक ऐसा आकार प्राप्त करना होना चाहिए जिस पर विपणन के क्षेत्र, वित्त उपलब्धता, उत्पादन तकनीक, उत्पाद की प्रकृति एवं व्यावसायिक योग्यता आदि जैसे कारकों को ध्यान में रखते हुए प्रति इकाई न्यूनतम औसत लागत होना चाहिए। दूसरी ओर दीर्घ पैमाने पर संचालन अनेकों लाभ प्रदान करता है, परन्तु दूसरी ओर, इसमें भारी पूँजी निवेश तथा प्रबन्धकीय विशेषज्ञता भी शामिल होती है। यदि उद्यमी में दीर्घ मात्रा में निवेश करने तथा उससे संयोजित जोखिम को नियंत्रित करने की क्षमता एवं योग्यता है तो दीर्घ पैमाने के उद्यम से प्रारम्भ कर सकते हैं। यद्यपि, यदि कोई उद्यमी व्यवसाय प्रारम्भ करने के लिए एकन्या विचार लेकर आ रहा है या इस व्यवसाय से संयोजित उच्च जोखिम है, तो एक लघु आकार के उद्यम के साथ प्रारम्भ करने की सलाह देनी चाहिए तथा व्यवसाय को चरणबद्ध प्रकार से विस्तारित करना चाहिए।
2. **व्यावसायिक स्थान**—प्रत्येक उद्यमी को उस स्थान का चयन करना चाहिए जो उसकी व्यावसायिक इकाई के लिए उपयुक्त हो। कच्चे माल, परिवहन, बैंकिंग, अपशिष्ट निपटान, विद्युत, जल जैसे—विभिन्न कारकों की उपलब्धता तथा पहुँच को ध्यान में रखते हुए व्यवसाय के स्थान का चयन किया जाना चाहिए। यह एक महत्त्वपूर्ण निर्णय है क्योंकि यह उद्यम के विकास, सफलता तथा लागत पर प्रभाव डालता है।
3. **व्यवसायिक पद्धति का चयन**—विपणन में प्रस्तुत किए जाने वाले उत्पाद के प्रकार का चयन एक व्यावसायिक उद्यम के प्रारम्भ होने के दौरान सबसे आधारभूत एवं महत्त्वपूर्ण समस्या है। उद्यमी को उस उत्पाद का विश्लेषण करने की आवश्यकता होती है जिसकी विपणन में माँग में है तथा उसके पश्चात् स्वयं के विश्लेषण से एक संगठित विवरण तैयार करता है। उद्यमी द्वारा तैयार किए गए विवरण को परियोजना विवरण या व्यवहार्यता विवरण के रूप में जाना जाता है। एक उद्यमी को व्यवसाय की पद्धति के चयन के दौरान विभिन्न कारकों को ध्यान में रखना चाहिए। निवेश से उत्पन्न होने वाले लाभ वापसी की राशि व्यवसाय इकाई के चयन के लिए प्रमुख मानदंड होना चाहिए। व्यवसाय की वह पद्धति जिस पर किए गए निवेश पर अधिक वापसी उत्पन्न होने की भविष्यवाणी की जाती है, उसे प्राथमिकता देना चाहिए। प्रत्येक व्यापार

के पास जोखिम उठाने की स्वयं की क्षमता होती है, इसलिए व्यवसाय की पद्धति के साथ संयोजित जोखिम की मात्रा पर भी विचार किया जाना चाहिए।

4. **प्रक्रियात्मक औपचारिकताएँ**—एक सफल व्यावसायिक उद्यम स्थापित करने के लिए विभिन्न औपचारिकताओं को पूरा करना पड़ता है। संयुक्त स्कन्ध कम्पनी के सम्बन्ध में निगमन के समय तथा उसके पूर्ण जीवनकाल के दौरान विभिन्न कानूनी औपचारिकताएँ पूरी करनी होती हैं जैसे कि विभिन्न दस्तावेज तैयार करना, कम्पनी के रजिस्ट्रार के पास शुल्क जमा करना आदि। सार्वजनिक लिमिटेड कम्पनी को एक प्रमाण पत्र की आवश्यकता होती है तथा इस प्रमाण पत्र को प्राप्त करने के पश्चात् ही व्यवसाय स्वयं का संचालन प्रारम्भ कर सकता है। जबकि, साझेदारी तथा एकल स्वामित्व के सम्बन्ध में लगभग ऐसी किसी भी प्रकार की कोई कानूनी औपचारिकताएँ नहीं होती हैं, परन्तु पंचायत या नगरपालिका से व्यवसाय या निगम प्रारम्भ करने की अनुमति प्राप्त करनी होती है।
5. **जनशक्ति**—कार्यबल के साथ नए उद्यम का भरण भी एक गम्भीर समस्या है। संगठनात्मक उद्देश्यों को तब पूर्ण किया जाता है जब संगठन के कर्मचारी पूर्ण रूप से स्वयं का योगदान दे रहे हों। इसलिए कर्मचारियों को मौद्रिक एवं गैर मौद्रिक लाभ प्रदान किए जाने चाहिए जिससे उन्हें प्रेरित किया जा सके।
6. **निर्माण की समस्या**—नई व्यावसायिक इकाइयों के निर्माण से संयोजित अनेकों समस्याएँ हैं। जैसे—कि सिविल कार्य (जल एवं विद्युत सम्बन्ध), निर्माण कार्य का पर्यवेक्षण, उपकरण एवं मशीन की स्थापना, तथा भूमि का अधिग्रहण आदि।
7. **वित्त**—कार्यकारी व्यावसायिक उद्यम के लिए कोष की आवश्यकता का अनुमान लगाना महत्त्वपूर्ण है। धन एकत्र करने के स्रोतों से सम्बन्धित निर्णय किए जाने चाहिए एवं पुन: एक उचित व्यवस्था के माध्यम से धन एकत्र किया जाना चाहिए। उद्यमी को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि व्यवसाय को उचित प्रकार से प्रारम्भ करने एवं बनाए रखने के लिए आवश्यक वित्त उचित समय पर उपलब्ध है। सामान्य जनता, वाणिज्यिक बैंक तथा विभिन्न अन्य वित्तीय संस्थान दीर्घ पैमाने पर संगठन के लिए धन एकत्रित करने के स्रोत के रूप में कार्य करते हैं। जबकि, प्रवर्तक स्वयं की बचत का उपयोग लघु पैमाने के उद्यम के लिए कोष के रूप में कर सकते हैं।
8. **संगठन का रूप**—उद्यमी का व्यवसाय पर अधिकार एवं नियंत्रण का निर्धारण संगठन के रूप के चुनाव द्वारा निर्धारित किया जाएगा। स्वामियों के कर्त्तव्य, अधिकार, कर दायित्व तथा उत्तरदायित्व स्वामित्व के प्रकार के चयन से प्रभावित होते हैं। यद्यपि व्यवसाय की कुछ पद्धतियाँ हैं जो संगठन के रूप को चयनित करने में किसी भी प्रकार का कोई विकल्प प्रदान नहीं करती हैं। उदाहरण के लिए, मात्र एक संयुक्त स्कन्ध कम्पनी ही बीमा एवं बैंकिंग व्यवसाय में निवेश कर सकती है। सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यमों के लिए स्वामित्व या साझेदारी अधिक उपयुक्त है, जबकि, व्यावसायिक संगठन का कम्पनी रूप दीर्घ पैमाने के उद्यमों के लिए अधिक उपयुक्त है।

प्र.3. नया उद्यम स्थापित करने में आने वाली समस्याओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

नया उद्यम स्थापित करने में समस्या
(Problems in Setting up New Enterprise)

एक नया उद्यम स्थापित करते समय, निम्नलिखित समस्याएँ हो सकती हैं—

1. **त्रुटिपूर्ण**—स्थान सर्वोत्तम व्यावसायिक रणनीति, विपणन योजना एवं नवीन उत्पाद वाला एक उद्यमी व्यवसाय चलाने में विफल हो सकता है, यदि किसी प्रक्रिया का स्थान अनुपयुक्त है। उदाहरण के लिए, एक शहरी कॉफी की दुकान उस क्षेत्र में स्थित होने पर सर्वाधिक लाभ अर्जित करेगी, जहाँ आस-पास पैदल चलने वालों का एक दीर्घ भाग है। इसी प्रकार, अन्य शॉपिंग विपणन के पास एक महिला के वस्त्रों की दुकान खोलने से लाभ होगा क्योंकि व्यक्तियों की प्रवृत्ति एक ही स्थान से क्रय करने की होती है, जहाँ आवश्यकताओं की सभी वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं।
2. **अव्यवहारिक अपेक्षाएँ**—इस प्रकार की अपेक्षाएँ किसी व्यवसाय के विफल होने के प्रमुख कारण हैं। शीघ्र अमीर बनना, स्वयं का स्वामी बनना, खाली वक्त का लाभ प्राप्त करना आदि जैसी अपेक्षाएँ एक उद्यमी के मनोबल को कम करती हैं, जब वह यह सब प्राप्त करने में विफल रहता है। यद्यपि, ये अपेक्षाएँ वास्तव में अव्यावहारिक नहीं है, परन्तु इसके लिए उद्यमी से अत्यधिक प्रयास एवं कठिन परिश्रम की आवश्यकता होती है।

3. **त्रुटिपूर्ण योजना**—व्यर्थ या अशुद्ध त्रुटिपूर्ण योजना भी उन कारकों में से एक है जो व्यवसाय की विफलता के लिए उत्तरदायी हैं। एक उद्यमी को विभिन्न एवं अनुसंधान गतिविधियों को निष्पादित करके शुद्ध योजना बनानी चाहिए। एक शुद्ध व्यावसायिक योजना व्यवसाय की वृद्धि के लिए एक रूपरेखा के रूप में कार्य करती है।
4. **अपर्याप्त पूँजी**—प्राय: उद्यमियों द्वारा किसी नए उद्यम को प्रारम्भ करने के लिए आवश्यक पूँजी की मात्रा को कम करके आंकते हैं, तथा उस लाभ को अधिक आँकते हैं जो वे पूर्व के कुछ माह या वर्षों में अर्जित करेंगे। विभिन्न प्रक्रियाओं जैसे—व्यावसायिक लाइसेंस के लिए आवेदन करना, दायित्व बीमा क्रय करना, रहतिया रखना, स्टोरफ्रंट का पट्टे पर देना आदि के लिए अत्यधिक धन की आवश्यकता होती है। अनेकों उद्यमी स्वयं का व्यवसाय प्रारम्भ करने से पूर्व इन कारकों को स्वयं के व्यय के रूप में नहीं मानते हैं।
5. **अप्रभावी विज्ञापन एवं विपणन**—नए उद्यमी सामान्यत: स्वयं के उत्पादों का विज्ञापन एवं विपणन स्वयं करना पसन्द करते हैं। उनका मानना है कि इस प्रकार वे लागत को उचित प्रकार से प्रबन्धित कर सकते हैं। परिणामस्वरूप, यह विफलता का कारण बन सकता है क्योंकि उद्यमी को पहले विपणन की प्रकृति, प्रतिस्पर्धा स्तर तथा प्रतिस्पर्धी के उत्पाद को समझने की आवश्यकता होती है, तभी वे स्वयं के विपणन अभियान को प्रभावी रूप से विकसित कर सकते हैं।
6. **अत्यधिक अल्प मूल्यों पर उत्पाद को विक्रय करना**—कई बार नए स्टार्ट-अप उद्यम उत्पादों को अत्यधिक अल्प मूल्यों पर विक्रय करते हैं ताकि उनकी बिक्री की मात्रा में वृद्धि हो जाए। हालाँकि, मूल्यों में कटौती करना विपणन के अधिग्रहण करने का उचित प्रकार नहीं है तथा यदि बिक्री की मात्रा में वृद्धि होने लगे तो अतिरिक्त उत्पन्न लाभ भी उत्पादन लागत एवं अन्य व्ययों को कवर करने के लिए पर्याप्त नहीं होता है।
7. **प्रतिस्पर्धा को न्यूनतम करके आंकलन करना**—अनेकों नए उद्यमी स्वयं के लक्षित विपणनों का आंकलन करते समय गलतियाँ करते हैं। वे प्राय: प्रारम्भिक चरण में प्रतिस्पर्धा तथा स्वयं के प्रतिस्पर्धियों का न्यूनतम आंकलन करते हैं। उन्हें यह समझना चाहिए कि कोई भी व्यवसाय नए प्रतिस्पर्धी के लिए सरलता से स्वयं के ग्राहकों को नहीं दे सकता है। प्रतिस्पर्धी ग्राहकों को बनाए रखने के लिए आक्रामक रणनीति को स्वीकृत कर सकते हैं। इसलिए एक उद्यमी को विपणन में प्रवेश करने से पूर्व व्यावसायिक वातावरण का सावधानीपूर्वक आकलन करना चाहिए।
8. **सटीक विपणन रणनीति का अभाव**—विपणन को किसी भी व्यावसायिक उद्यम की मुख्य गतिविधि माना जाता है। सामान्यत: व्यवसाय के स्वामी विपणन रणनीतियों को अधिक महत्त्व नहीं देते हैं। वे मानते हैं कि ग्राहक विपणन को अधिक प्राथमिकता दिए बिना ही उनके उत्पाद क्रय करेंगे परन्तु प्रत्येक उद्यमी के लिए यह प्रसारण करना अनिवार्य है कि वे विशिष्ट उत्पादों या सेवाओं के विक्रेता हैं तथा भावी ग्राहकों के साथ व्यवसाय करने के लिए खुले हैं।
9. **व्यर्थ उद्योग ज्ञान एवं विपणन की गतिशीलता**—प्राय: उद्यमी उपस्थित विपणन की पूर्व सूचना प्राप्त किए बिना ही स्वयं के व्यवसाय को प्रारम्भ करते हैं। वे स्वयं के नए उपक्रमों के लिए उन्हीं प्राचीन अवधारणाओं एवं ज्ञान को लागू करते हैं जो व्यवसाय को विफलता की ओर ले जाते हैं। इसीलिए विपणन में प्रवेश करने से पूर्व स्वामियों को उपस्थित परिदृश्य, अवसरों एवं जोखिमों की पूर्ण रूप से जाँच करनी चाहिए। विपणन एवं उद्योग के अद्यतन एवं सटीक ज्ञान से ही आज की विपणन प्रतिस्पर्धा का सामना किया जा सकता है।
10. **अपर्याप्त ग्राहक सूचना**—यदि कोई कम्पनी ग्राहकों के बारे में पर्याप्त सूचना एकत्र करने में असमर्थ है तो उसे एक असफल कम्पनी माना जाता है। उदाहरण के लिए, एक कम्पनी स्वयं के साख के बारे में पूर्व सूचना के बिना स्वयं के ग्राहकों को उत्पाद भेजती है, जिसके परिणामस्वरूप भुगतान में देरी हो सकती है।
11. **संसाधनों से अधिक विस्तार**—कभी-कभी व्यवसाय में उपलब्ध संसाधनों से अग्रिम वृद्धि हो जाती है। अनेक उद्यमी. स्वयं के संसाधनों की क्षमता का उचित आंकलन नहीं करते हैं जो उन्हें व्यवसाय के अनुचित संचालन की ओर ले जाते हैं। उदाहरण के लिए, किसी कम्पनी की बहीखाता प्रणाली व्यवसाय की तीव्र वृद्धि को नियन्त्रित करने के लिए पर्याप्त कुशल नहीं हो सकती है। बहीखाता किसी भी व्यावसायिक उद्यम का एक अनिवार्य भाग है परन्तु धन संचित करने के लिए अनेकों उद्यमी स्वयं की बहीखाता पद्धति को उन्नत नहीं करते हैं जो उन्हें प्रतिकूल परिस्थितियों की ओर ले जाता है।
12. **अपर्याप्त प्रबन्धन कुशलता**—कर्मचारी स्वयं की कम्पनियों के लिए एक सम्पत्ति होते हैं। एक कम्पनी को हमेशा स्वयं के कर्मचारियों के साथ अच्छा व्यवहार करना चाहिए तथा उनकी आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए। यदि कोई उद्यमी स्वयं के कर्मचारियों के साथ कठोर एवं लापरवाह है तो इससे कर्मचारी की अनुपस्थिति हो सकती है। परिणामस्वरूप

व्यवसाय को अनेकों चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है। किसी विशेष कार्य के लिए विशिष्ट कुशलता समूह की आवश्यकता होती है। यदि अन्य कुशलता वाले कर्मचारी किसी अन्य प्रकार के रोजगार के कार्य करते हैं, तो इससे उत्पाद के उत्पादन एवं गुणवत्ता में कमी आ सकती है तथा कम्पनी की छवि भी खराब हो सकती है।

प्र.4. व्यावसायिक सफलता के लिए एक व्यवसायी में किन गुणों का होना आवश्यक है? वर्णन कीजिए।

उत्तर

सफल व्यवसायी के गुण
(Qualities of a Successful Businessman)

विभिन्न विद्वानों तथा विचारकों ने सफल व्यवसायी के गुणों के सम्बन्ध में अपने भिन्न-भिन्न विचार दिये हैं। समस्त विद्वानों के विचारों के निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि व्यावसायिक सफलता के लिए एक व्यवसायी में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है—

1. **यथार्थ या शुद्धता**—व्यावसायिक सफलता का मुख्य तत्व यह भी है कि उसे इस बात का पूर्ण रूप से ज्ञान हो कि मैं क्या बात कह रहा हूँ तथा मेरा तात्पर्य क्या है, क्योंकि उसे अनेक सामान्य आवश्यकताओं से निपटना पड़ता है। उदाहरण के रूप में आदेश (Order) तथा उसकी कार्यान्विति (Execution) में यथार्थता का होना अनिवार्य है तथा इनमें बहुत ही उत्तरदायित्वपूर्ण रीति से कार्य करना चाहिए। शुद्ध कार्य बहुत कुछ शुद्ध चिन्तन पर निर्भर करता है।
2. **व्यावसायिक शिक्षा तथा प्रशिक्षण**—आधुनिक युग विशिष्टीकरण एवं प्रतिस्पर्धा का युग है, जिसमें सफलता प्राप्त करने के लिए सैद्धान्तिक (Theoretical), तकनीकी (Technical) और व्यावहारिक (Practical) तीनों प्रकार का ज्ञान एवं प्रशिक्षण आवश्यक है। **प्रो० डटन** के अनुसार, "वह व्यक्ति जो संगठन, आर्थिक प्रबन्ध, हिसाब-किताब, सहयोगियों के साथ कार्य एवं उनका प्रशासन, क्रय-विक्रय के मूलभूत सिद्धान्तों को सीख लेता है, बहुत ही शीघ्र व्यवसाय में कुशलता एवं सफलता प्राप्त कर लेता है।" ज्ञान एवं प्रशिक्षण के अतिरिक्त व्यवसाय के प्रति स्वाभाविक रुचि होना आवश्यक है अन्यथा आत्मसन्तुष्टि और सफलता प्राप्त नहीं होती।
3. **परिश्रमी**—व्यवसाय की सफलता कठोर परिश्रम पर ही निर्भर करती है। वास्तव में परिश्रम ही सफलता की कुंजी है। यदि किसी व्यवसाय का स्वामी स्वयं आलसी हो तो उसके नियन्त्रण में कार्य करने वाले कर्मचारी भी आलसी एवं निकम्मे होंगे। उसमें काम करने की ऐसी लगन होनी चाहिए कि जिस कार्य को वह एक बार अपने हाथ में ले उसको पूर्ण करके ही चैन ले। ऐसी अवस्था में सफलता स्वयं उसके एक न एक दिन अवश्य ही कदम चूमेगी। 'भाग्य भी परिश्रमी व्यक्ति का ही साथ देता है।'
4. **प्रभावशाली व्यक्तित्व**—व्यावसायिक सफलता बहुत कुछ व्यवसायी के व्यक्तित्व पर निर्भर करती है। व्यक्तित्व से लोगों का आशय सामान्यत: विशेष मुखाकृति से होता है परन्तु यह विचारधारा आंशिका रूप से ही सत्य है। प्रभावशाली व्यक्तित्व के अन्तर्गत निम्नलिखित गुणों का समावेश किया जाता है—
   (a) सामान्य सुन्दर आकृति अर्थात् चेहरा स्वस्थ व प्रभावशाली हो।
   (b) **हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ**—क्योंकि इसके अभाव में वह कुशलतापूर्वक व्यवसाय में कार्य नहीं कर सकता।
   (c) **प्रसन्न मुद्रा**—ताकि ग्राहकों तथा कर्मचारियों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डाल सके।
   (d) **व्यवसाय में रुचि**—जो भी व्यवसाय वह करे उसमें रुचि उत्पन्न करना आवश्यक है तभी सफलता प्राप्त हो सकती है।
   (e) **उत्साह**—आशावादी दृष्टिकोण से पूर्ण विश्वास रखकर तन-मन-धन से कार्य करना चाहिए।
   (f) **चातुर्य**—चातुर्य से आशय धूर्तता अथवा मक्कारी से नहीं वरन् विरोधी परिस्थितियों में भी कार्य निकालने की क्षमता से है।
   (g) **आत्म-विश्वास**—विभिन्न व्यक्तियों की राय लेकर निर्णय अपने अनुभव व ज्ञान के आधार पर दृढ़तापूर्वक लेना चाहिए।
5. **साहस और लगन**—एक आदर्श व्यवसायी वह है जिसमें अपने कार्य के प्रति लगन तथा लक्ष्य-प्राप्ति के लिए अदम्य उत्साह है। जो व्यक्ति अस्थिरचित्त है और बाधाओं से शीघ्र ही घबरा जाता है वह सफल नहीं हो सकता। व्यवसाय में

अनेकों जनर-चढ़ाव आते रहते हैं और पग-पग पर जोखिम का सामना करना पड़ता है। 'असफलता ही सफलता की सीढ़ी है' ऐसा मानकर चलने वाला व्यक्ति ही व्यवसाय में सफल हो सकता है।

6. **चतुर तथा चौकन्ना**—किसी भी व्यवसायी को, जो सफलता के लिए प्रयासरत है, अपने को, सदैव संसार के सम्पर्क में रखना पड़ता है तथा उसे अपनी जागरूकता सर्वदा रखनी पड़ती है। उसमें प्रत्येक बात को समझने की शक्ति का होना तो आवश्यक है ही, किन्तु साथ ही उसको विश्व में तथा उस व्यवसाय में होने वाली गतिविधियों के प्रति भी सतर्क रहना चाहिए। वास्तव में सफल व्यवसायी वही है जो पूर्णरूप से सतर्क रहता हो तथा वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति करने के साथ-साथ आवश्यकताओं को जन्म देने की क्षमता भी रखता हो।
7. **विवेक और कल्पना शक्ति**—किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व उस पर गम्भीरता से विचार कर लेना चाहिए। इस सम्बन्ध में कहावत है—"बिना विचारे जो करे सो पाछे पछताय" अर्थात कोई भी कार्य जो बिना विचार किया जाता है, बाद में उसके लिए पछताना पड़ता है। अमेरिका के एक विद्वान **एण्ड्रयू कार्नेगी** के अनुसार, "जो व्यक्ति कल्पनाशील नहीं है, जिनमें उन्नति को आकांक्षा नहीं है तथा जो अपने जीवन को उच्च ध्येय की ओर निर्देशित नहीं करता, वह मनुष्य कभी भी सफल नहीं हो सकता और न उसे कभी अन्य व्यक्तियों की सहायता ही प्राप्त हो सकती है।" इस प्रकार व्यावसायिक सफलता प्राप्त करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति में सबसे पहले महत्वाकांक्षा (Ambition) अर्थात् किसी भी कार्य को करने की तीव्र लालसा तथा इसके पश्चात् विवेकपूर्ण कल्पना-शक्ति होनी चाहिए। एक विवेकशील, महत्वाकांक्षी और उच्च कल्पना-शक्ति रखने वाला व्यक्ति नई-नई वस्तुओं का निर्माण करके और निरन्तर सुधार लाकर अपने प्रतिद्वन्दियों से आगे निकल सकता है।
8. **सहयोगात्मक क्षमता**—व्यवसायी का एक महत्वपूर्ण गुण यह भी है कि उसमें अधिक से अधिक लोगों के साथ मिलकर काम करने की क्षमता होनी चाहिए। उसमें समझौता करने, सामंजस्य (Adjustment) करने, अनुकूलित (To adapt) होने की क्षमता होनी चाहिए तथा समय आने पर उसे अपनी भूलों को स्वीकार करने में तनिक भी हिचकिचाहट महसूस नहीं करनी चाहिए। आज के प्रगतिशील युग में कदम-कदम पर सहकारिता की आवश्यकता होती है।
9. **चरित्र-बल**—व्यवसाय में बिना नैतिक चरित्र ऊँचा किए हुए सफलता नहीं मिल सकती। चरित्र-बल एक व्यापक शब्द है जिसके अन्तर्गत निम्न बातों का समावेश किया जाता है—(i) सत्य एवं ईमानदारी में विश्वास, (ii) नियमितता, (iii) कर्त्तव्य-परायणता, (iv) नम्रता और सहानुभूति, (v) कर्मचारियों के प्रति सद्व्यवहार आदि। वास्तव में इन समस्त बातों के होने पर ही किसी व्यक्ति को चरित्रवान कहा जा सकता है। इन बातों को न केवल कहना बल्कि अपने व्यवहार में पालन करना किसी भी व्यवसायी के लिए आवश्यक है।
10. **लाभ की अपेक्षा सेवा को प्राथमिकता**—एक सफल व्यवसायी को व्यवसाय में लाभ की अपेक्षा सेवा को प्राथमिकता देनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, 'लाभ की अपेक्षा सेवा को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए।' **श्री हेनरी फोर्ड** के अनुसार, "किसी भी व्यवसाय का सर्वप्रथम उद्देश्य सेवा और द्वितीय उद्देश्य लाभ होना चाहिए।" विख्यात उद्योगपति **श्री आर० के० बजाज** के अनुसार, "व्यवसाय को समाज की सेवा करते हुए लाभ कमाना चाहिए।" ग्राहकों की सेवा करने से उन्हें अधिक सन्तुष्टि मिलेगी जिसके कारण उनकी संख्या में तीव्र गति से वृद्धि होगी। ग्राहकों की संख्या में वृद्धि होने से बिक्री की मात्रा में भी वृद्धि होगी जिसके परिणामस्वरूप लाभ में वृद्धि होना स्वाभाविक ही है।
11. **अन्य गुण**—उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त व्यवसायी में अन्य गुण भी होने चाहिए, जैसे—अवसर न चूकना तथा उसका लाभ उठाना, प्रबन्ध ज्ञान की जानकारी तथा उसके सिद्धान्तों का उपयोग करना, अनुभव के अनुसार कार्य करना, इत्यादि।

प्र.5. एकल स्वामित्व का परिचय देते हुए इसकी विशेषताओं एवं उपयुक्तता का वर्णन कीजिए।

उत्तर

एकल स्वामित्व का परिचय
(Introduction to Sole Proprietorship)

एक ऐसा व्यवसाय जो एक व्यक्ति के स्वामित्व में होता है तथा जो सीमित देयता कम्पनी के रूप में राज्य के साथ पंजीकृत नहीं है। उसे 'एकल व्यापारी' या 'एकल स्वामित्व' के रूप में जाना जाता है। यह उद्यम स्वामित्व का सबसे सरल रूप है तथा इसके बारे में अधिक सूचना के बिना भी इसे सरलता से स्थापित किया जा सकता है। एकल स्वामित्व में एक व्यक्ति स्वयं का व्यवसाय स्थापित एवं संचालित करने हेतु स्वतन्त्र होता है। उदाहरण के लिए—एक उद्यमी जो एक फ्रीलांसर के रूप में कार्य करता है, एक

कमीशन आधारित विक्रेता, स्वतन्त्र ठेकेदार या संविदा आधारित कार्य पर एक शिल्पकार, इन सभी को एकल स्वामित्व कहा जाता है। **एल०एच० हैने** के अनुसार, "व्यक्तिगत स्वामित्व व्यावसायिक संगठन का एक रूप है जिसके शीर्ष पर एक व्यक्ति होता है जो किसी कार्य के प्रति स्वयं उत्तरदायी होता है, इसके संचालन को निर्देशित करता है और जो अकेले विफलता के जोखिम को वहन करता है।"

जे०एल० हैन्सन के अनुसार, "एकल व्यापारी व्यवसाय एक प्रकार की व्यावसायिक इकाई है जहाँ एक व्यक्ति पूँजी प्रदान करने, उद्यम के जोखिम को वहन करने तथा व्यवसाय के प्रबन्धन के लिए पूर्ण रूप से उत्तरदायी होता है।"

एकल स्वामित्व असम्य युग का अवशेष है, क्योंकि यह इन दिनों में बहुत दुर्लभ है।

एकल स्वामित्व की विशेषताएँ
(Characteristics of Sole Proprietorship)

एकल स्वामित्व की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

1. **असीमित दायित्व**—स्वामी अपने सभी ऋणों के लिए उत्तरदायी एकमात्र व्यक्ति है। यदि कम्पनी के ऋण अधिक हैं और सम्पत्तियों द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता है, तो स्वामित्व सभी बकाया राशि को वहन करने के लिए अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति को शामिल कर सकता है।
2. **कोई पृथक कानूनी अस्तित्त्व नहीं**—एकल स्वामित्व अपने स्वामी से कोई पृथक कानूनी अस्तित्त्व नहीं रखता है। कानून की दृष्टि में स्वामी एवं व्यवसाय एक साथ विद्यमान हैं। यदि व्यवसाय के स्वामी की मृत्यु हो जाती है या दिवालिया हो जाता है तो व्यवसाय का कोई अस्तित्त्व नहीं होता है। क्योंकि दोनों को एक ही इकाई माना जाता है।
3. **एकल स्वामित्व**—इस रूप में, एकल स्वामित्व में उद्यमी स्वयं व्यवसाय का स्वामी होता है। व्यवसाय के लिए आवश्यक पूँजी एवं धन का प्रबन्धन वह स्वयं या दूसरों से धन उधार लेकर करता है।
4. **कोई कानून औपचारिकताएँ नहीं**—एकल व्यवसाय की स्थापना या प्रबन्धन के लिए किसी कानूनी औपचारिकताओं की आवश्यकता नहीं होती है। हालाँकि व्यवसाय के संचालन के लिए एक लाइसेंस की आवश्यकता होती है।
5. **लाभ साझाकरण नहीं**—एकल स्वामित्व के रूप में एक व्यक्ति संपूर्ण लाभ व हानि वहन करता है। उसके साथ लाभ या हानि साझा करने वाला कोई नहीं होता है। वह कम्पनी की सम्पूर्ण हानि वहन करने वाला एकमात्र व्यक्ति होता है।

एकल स्वामित्व की उपयुक्तता
(Suitability of Sole Proprietorship)

निम्नलिखित बिन्दु एकल स्वामित्व की उपयुक्तता को दर्शाते हैं—

1. **जब ग्राहकों के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क आवश्यक होता है**—अनेक व्यवसाय विपणन में किसी भी वस्तुओं या सेवाओं को प्रस्तुत करने से पूर्व स्वयं के ग्राहकों के स्वाद एवं प्राथमिकताओं पर विचार करते हैं। उदाहरण के लिए—सिलाई की दुकानें, ब्यूटी सैलून, कैंटीन, कैफेटेरिया, आदि एकल स्वामित्व है और इनका ग्राहकों के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। इसलिए सभी एकल स्वामित्व व्यक्तिगत स्वाद एवं ग्राहकों की प्राथमिकताओं को पूर्ण करते हैं। इसलिए इसे स्वामित्व का सबसे लोकप्रिय रूप माना जाता है।
2. **जहाँ विपणन स्थानीय है**—एकल स्वामित्व को स्थानीय विषणनों के लिए स्वामित्व का सबसे उपयुक्त रूप माना जाता है। जब वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए एक स्थानीय विपणन होता है तो इसके लिए आवश्यक पूँजी अन्य रूपों की तुलना में कम होती है। उदाहरण के लिए—फुटकर व्यापारी सामान्यत: एकल स्वामित्व होते हैं।
3. **जहाँ निर्णय लेने में तत्परता की आवश्यकता हो**—विभिन्न व्यवसायों में स्थिति के अनुसार त्वरित निर्णय लेना अत्यधिक अधिमान्य होता है। स्कन्ध विनिमय विपणन की तरह, अंशों के मूल्य प्रकृति में अत्यधिक अस्थिर है तथा तुरन्त निर्णय लेने की आवश्यकता होती है।

   इसलिए, एक व्यवसायी के पास दूसरों से सुझाव लेने के लिए अधिक समय नहीं होता है। ऐसे व्यवसाय जहाँ अस्थिर माँग एवं आपूर्ति उपस्थित है वहाँ एकल स्वामित्व को सबसे उपयुक्त रूप माना जाता है।

TOUCH 'n' PASS

4. **जहाँ एक व्यक्ति स्वयं का स्वामी होना पसन्द करता है**—एकल स्वामित्व उन व्यक्तियों के लिए उपयुक्त है जो किसी अन्य व्यक्ति के अन्तर्गत कार्य नहीं करना चाहते हैं। ये व्यक्ति स्वयं का स्वामी बनना पसन्द करते हैं तथा सभी लाभ स्वयं के पास रखना चाहते हैं, जो एक उद्यमी होने का मुख्य उद्देश्य है।
5. **जहाँ पूँजी की आवश्यकता कम है तथा जोखिम अधिक मात्रा में शामिल नहीं है**—एकल स्वामित्व उन व्यवसायों के लिए उपयुक्त है जिनमें कम जोखिम तथा न्यूनतम पूँजी शामिल है। इस प्रकार के व्यवसायों में सिलाई, नाई की दुकान, ऑटोमोबाइल मरम्मत की दुकान, टी-स्टॉल आदि शामिल हो सकते हैं।
6. **जहाँ व्यवसाय की प्रकृति सरल है**—एकल स्वामित्व. अधिकतर उन व्यवसायियों द्वारा स्वीकृत किया जाता है, जिनके पास पर्याप्त तकनीकी ज्ञान एवं सरल व्यापार प्रणाली है। ये व्यवसाय टेलीफोन बूथ, किराना व्यवसाय, व्यापार आदि हो सकते हैं।
7. **जहाँ हस्त कौशल की आवश्यकता हो**—एकल स्वामित्व उन व्यवसायों के लिए उपयुक्त होता है जिन्हें स्वयं के उत्पादों एवं सेवाओं के उत्पादन के लिए हस्त कुशलता का उपयोग करने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के व्यवसायों में आभूषण बनाना, लघु रेस्तरां, नाई, ऑटोमोबाइल मरम्मत आदि शामिल होते हैं।

प्र.6. एकाकी स्वामित्व के विस्तार की कौन-सी समस्याएँ हो सकती हैं? व्याख्या कीजिए।

उत्तर

एकाकी स्वामित्व के विस्तार की समस्याएँ
(Problems of Expansion of Sole Proprietorship)

व्यवहार में, एकाकी स्वामित्व का शुभारम्भ छोटे पैमाने पर होता है और वह धीरे-धीरे अपना विस्तार करता रहता है, परन्तु इसके विस्तार की एक सीमा है जिसके आगे यह नहीं बढ़ पाता। एक ही व्यक्ति द्वारा साधनों को जुटाने में, प्रबन्धन करने में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। विस्तार के लिए उसे मुख्य रूप से दो प्रमुख समस्याओं का सामना करना पड़ता है—(1) पूँजी की समस्या तथा (2) प्रबन्ध की समस्या । पूँजी की समस्या दूर करने के लिए उसके सामने दो व्यावहारिक विकल्प हैं—पूँजी की समस्या को दूर करने के लिए या तो वह ऋण ले या इसे साझेदारी संस्था में बदल कर साझीदार से पूँजी प्राप्त करके पूँजी की समस्या को दूर करे। उसी प्रकार,प्रबन्ध की समस्या को दूर करने के लिए भी उसके सामने दो विकल्प हैं—या तो प्रबन्धक को नियुक्त करे या साझेदार से प्रबन्धन में सहयोग ले। इन विकल्पों के गुण-दोषों का विवेचन संक्षेप में निम्नलिखित है—

1. पूँजी के लिए ऋण बनाम साझीदार (Loan Vs. Partner for Capital)

साझीदार की अपेक्षा ऋण लेने से लाभ—

(i) ऋण को आवश्यकतानुसार निश्चित समय पर व सस्ती दर पर प्राप्त करके पूँजी की समस्या को दूर किया जा सकता है।
(ii) एक ही व्यक्ति पर ऋण-पूँजी के उपयोग का भार रहता है, अत: वह उसका समुचित उपयोग करके व्यवसाय के हित में उसे लगा सकता है।
(iii) ऋण का सदुपयोग करके उस पर निश्चित दर से ब्याज देकर अतिरिक्त लाभ एकाकी व्यापारी स्वयं प्राप्त कर सकता है।
(iv) एकाकी व्यापारी ऋण लेकर स्वतन्त्र रूप से बिना किसी के हस्तक्षेप के व्यवसाय को चला सकता है क्योंकि ऋणदाता को व्यवसाय का स्वामित्व नहीं प्राप्त होता जबकि साझीदार उसका मालिक होता है।

साझीदार की अपेक्षा ऋण लेने के दोष—

(i) साख सीमित होने के फलस्वरूप, एकाकी व्यापारी को पर्याप्त मात्रा में सस्ते दर पर ऋण नहीं प्राप्त हो पाता है। ऋण लेने में उसे कठिनाई होती है।
(ii) ऋण मिल भी जाय तो उसके ब्याज, जो निश्चित दर पर होता है, के तथा मूलधन के भुगतान में भी अत्यधिक कठिनाई हो सकती है, यदि पर्याप्त लाभ न प्राप्त हो। साझीदार को किसी निश्चित दर से लाभ देना आवश्यक नहीं होता है।
(iii) कोई भी ऋण एक निश्चित काल के लिए ही मिलता है और उसके अवधि की समाप्ति पर उसका भुगतान आवश्यक होता है। यदि सगे-सम्बन्धियों या मित्रों से ऋण लिया हो तो वे कभी भी उसे वापस माँग सकते हैं। यह और अधिक कठिनाई उत्पन्न कर सकता है। साझीदार से मिली पूँजी तो व्यवसाय के चलते रहने तक के लिए प्राप्त होती है।

2. प्रबन्ध के लिए कर्मचारी बनाम साझीदार (Employee Vs. Partner for Management)

साझेदार की अपेक्षा कर्मचारी रखने से लाभ—

(i) साझीदार योग्य प्रबन्धक हो यह आवश्यक नहीं। आवश्यकतानुसार किसी योग्य व अनुभवी व्यक्ति को प्रबन्ध के लिए रखना अधिक उपयुक्त होता है।

(ii) कर्मचारी को देय वेतन भी साझीदार को देय लाभ की अपेक्षाकृत कम होता है। इससे एकल व्यापारी को अधिक लाभ मिल सकता है।

(iii) यदि कर्मचारी को प्रबन्धक रखा जाए तो व्यवसाय पर पूरा नियन्त्रण एकल व्यापारी का ही रहता है जो कि साझीदार के रखने पर सम्भव नहीं।

(iv) कर्मचारी-प्रबन्धक को हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं प्राप्त होता जबकि साझीदार को होता है।

(v) कर्मचारी प्रबन्धक को रखने से गोपनीयता भी बनी रहती है।

(vi) साझीदार की अपेक्षाकृत कर्मचारी प्रबन्ध को हटाना आसान होता है।

(vii) यदि कर्मचारी प्रबन्धक को रखा जाता है तो व्यवसाय के पुनसंगठन की आवश्कता नहीं रहती, जबकि साझीदार लेने पर यह आवश्यक होता है।

साझीदार की अपेक्षा कर्मचारी रखने के दोष—

(i) व्यवहार में, योग्य व अनुभवी प्रबन्धक मिलना कठिन होता है क्योंकि एकाकी व्यापार के साधन सीमित होते हैं।

(ii) साझीदार संस्था का मालिक भी होता है अत: वह अधिक लाभ कमाने के लिए अधिक उत्साह से काम करता है। इसके अपेक्षाकृत कर्मचारी प्रबन्धक का वेतन निश्चित होता है और उसे काम करने का कोई विशेष उत्साह व प्रेरणा नहीं रहती।

(iii) साझीदार की अपेक्षाकृत एक कर्मचारी प्रबन्धक अधिक जिम्मेदारी व लगन से कार्य नहीं करता है। वह जिम्मेदारियों से बचने का प्रयास करता रहता है।

(iv) साझीदार तो संस्था में स्थायी रूप से रहता है जबकि कर्मचारी प्रबन्धक प्रलोभन मिलने पर इसे छोड़कर दूसरी संस्था में जा सकता है।

(v) कर्मचारी प्रबन्धक व्यवसाय के गोपनीय रहस्य को जान जाते हैं और वे उसे संस्था के प्रतियोगियों को बता सकते हैं।

(vi) प्राय: व्यवहार में यह भी देखा जाता है कि कर्मचारी व्यवसाय के बारे में सभी जानकारी प्राप्त कर लेने के पश्चात् संस्था को छोड़कर उसी प्रकार का अपना व्यवसाय आरम्भ कर देते हैं और प्रतिस्पर्धा करने लगते हैं। यह संस्था के विकास में बाधा पहुंचाता है।

प्र.7. साझेदारी का अर्थ एवं परिभाषा लिखिए। साझेदारी की कसौटी से आपका क्या आशय है? आप साझेदारी की विद्यमानता का निर्णय कैसे करेंगे?

उत्तर

साझेदारी का अर्थ एवं परिभाषाएँ
(Meaning and Definitions of Partnership)

साझेदारी दो या दो से अधिक व्यक्तियों का एक ऐसा समूह अथवा संगठन है जिसकी स्थापना स्वेच्छा से किसी वैध कारोबार से लाभ कमाने एवं उस लाभ को पारस्परिक समझौते के अनुसार, आपस में बाँटने के लिये की जाती है। व्यवसाय का संचालन सभी साझेदारों द्वारा अथवा उनकी ओर से कुछ या एक साझेदार द्वारा किया जा सकता है। जो लोग ऐसा व्यवसाय चलाने का समझौता करते हैं, उन्हें साझेदार कहते हैं तथा सम्बन्धित व्यावसायिक संस्था को साझेदारी फर्म के नाम से जाना जाता है। साझेदारी फर्म का प्रत्येक साझेदार एक-दूसरे का एजेन्ट/प्रतिनिधि माना जाता है।

प्रो. हैने के अनुसार, "साझेदारी ऐसे व्यक्तियों का पारस्परिक सम्बन्ध है जो अनुबन्ध करने के योग्य हैं तथा जो निजी लाभ के लिये एक वैध व्यवसाय साझे में चलाने के लिये सहमत हैं।"

डॉ० विलियम आर० स्प्रीगल के अनुसार, "साझेदारी में दो या दो से अधिक सदस्य होते हैं, जिनमें से प्रत्येक साझेदारी के कार्यों के लिए उत्तरदायी होता है। प्रत्येक साझेदार दूसरे को अपने कार्यों के द्वारा बाध्य कर सकता है तथा प्रत्येक साझेदार की निजी सम्पत्ति को फर्म के ऋणों के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है।"

TOUCH 'n PASS

भारतीय साझेदारी अधिनियम, 1932 की धारा 4 के अनुसार, "साझेदारी ऐसे व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध को कहते हैं जो एक व्यवसाय के लाभ को आपस में बाँटने के लिए सहमत हुए हों, और यह व्यवसाय सभी व्यक्तियों द्वारा अथवा सभी की ओर से उनमें से किसी एक व्यक्ति द्वारा चलाया जाता हो।"

साझेदारी की विद्यमानता का निर्णय या साझेदारी की कसौटी
(Determining the Existence of Partnership or Test of Partnership)

किन्हीं दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच साझेदारी है अथवा नहीं इसका निर्णय करना वास्तव में एक जटिल प्रश्न है। इसका निर्णय करने के लिए हमें साझेदारी की परिभाषा तथा उसके विभिन्न लक्षणों को देखना होगा। परन्तु फिर भी कुछ परिस्थितियों में यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि साझेदारी विद्यमान है, अथवा नहीं। यद्यपि दो व्यक्ति एक लिखित समझौते में स्पष्ट रूप से यह कह सकते हैं कि वे साझेदार नहीं हैं, फिर भी प्रमाणित हो सकता है कि वे साझेदार हैं। इसी प्रकार यद्यपि वे कहते हैं कि वे साझेदार हैं परन्तु समस्त तथ्यों का विस्तृत रूप से अध्ययन करने के पश्चात् यह प्रमाणित हो सकता है कि वे साझेदार नहीं हैं।

साझेदारी अधिनियम की धारा 6 के अनुसार, इस बात का निर्णय करने के लिए कि व्यक्तियों का एक समूह साझेदार है या नहीं अथवा एक व्यक्ति फर्म में साझेदार है या नहीं, "पक्षकारों के बीच वास्तविक सम्बन्धों (Real Relations) को देखना होगा।" इसके लिए पक्षकारों के बीच अनुबन्ध (Contract) की एक प्रतिलिपि (Copy) लेकर उसका विस्तृत रूप से अध्ययन करना चाहिए तथा निम्नलिखित तत्वों पर विचार करना चाहिए—

1. **साझेदारी के लिए सकल आय में हित रखना ही पर्याप्त नहीं है**—भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 6 के अनुसार किसी सम्पत्ति से होने वाली सकल आय में से, उस सम्पत्ति में संयुक्त हित रखने वाले व्यक्तियों द्वारा अपना भाग प्राप्त करने से ही साझेदारी उत्पन्न नहीं होती। जैसे एक सिनेमा हॉल का स्वामी तथा एक ड्रामा कम्पनी का मैनेजर यह अनुबन्ध करते हैं कि ड्रामा के लिए टिकटों की बिक्री से प्राप्त धन को वे दोनों बराबर-बराबर बाँट लेंगे, तो वे साझेदार वहीं कहलायेंगे क्योंकि यहाँ वे केवल सकल आय को बाँटने का अनुबन्ध करते हैं और सिनेमा हॉल का स्वामी अपना भाग किराये के रूप में प्राप्त करता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि शुद्ध लाभ पाने के प्रत्यक्ष अधिकार के अभाव में साझेदारी की उत्पत्ति नहीं हो सकती।
2. **साझेदारी के लिए कारोबार के लाभ में एक भाग प्राप्त करना ही पर्याप्त नहीं है**—कोई व्यक्ति किसी कारोबार के लाभ में से एक भाग प्राप्त कर लेने मात्र से कारोबार चलाने वाले व्यक्ति का साझेदार नहीं हो सकता। अर्थात् लाभों में हिस्सा प्राप्त कर लेना ही साझेदारी का अकाट्य प्रमाण नहीं है। भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 6 यह स्पष्ट करती है कि निम्नलिखित व्यक्ति यद्यपि कारोबार के लाभ में से भाग प्राप्त करते हैं, परन्तु साझेदार नहीं हैं क्योंकि उनके पास लाभ प्राप्ति का स्पष्ट अधिकार नहीं होता—
   (i) **ऋणदाता**—यदि कोई ऋणदाता इस शर्त पर ऋण देता है कि वह ब्याज के अतिरिक्त लाभ में से एक भाग भी प्राप्त करेगा तो वह फर्म में साझेदार नहीं हो सकता, भले ही वह व्यापार के संचालन पर नियन्त्रण रखता हो। ऐसा व्यक्ति केवल ऋणदाता माना जाता है।
   (ii) **नौकर या एजेन्ट**—यदि कोई नौकर या एजेन्ट अपने पारिश्रमिक के रूप में कारोबार के लाभों में से एक भाग प्राप्त करता है तो भी वह अपने नियोक्ता का साझेदार नहीं कहलायेगा।
   (iii) **मृत साझेदार की विधवा या बच्चे**—किसी मृत साझेदार के बच्चों या विधवा को फर्म के लाभों में से वार्षिक धनराशि दी जा सकती है, परन्तु इसके लिए उन्हें साझेदार नहीं माना जा सकता।
   (iv) **कारोबार का भूत-पूर्व स्वामी**—किसी कारोबार का भूत-पूर्व स्वामी अपनी ख्याति के प्रतिफल के रूप में कारोबार के लाभ में से कोई भाग प्राप्त कर सकता है, परन्तु वह साझेदार नहीं माना जायेगा।
3. **साझेदारी को सह-स्वामित्व से भिन्न समझना चाहिए**—सह-अस्तित्व का अर्थ किसी वस्तु के एक से अधिक स्वामी से है, जबकि साझेदारी का अर्थ किसी कारोबार (Business) के लाभ को एक निश्चित अनुपात में बाँटने के लिए एक से अधिक व्यक्तियों का मिलना है। इसीलिए यदि दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी वस्तु को मिलकर खरीद लेने तथा बाद में उसे परस्पर बाँट लेने के लिए कुछ पूँजी एकत्र करते हैं तो वे साझेदार नहीं कहलायेंगे। उदाहरण के लिए, अ, ब और स मिलकर एक मकान खरीदते हैं, इसका किराया लेते हैं तथा उसको परस्पर बाँट लेते हैं, ऐसी दशा में अ, ब और स

का सम्बन्ध साझेदारी का नहीं है क्योंकि वे किसी कारोबार से सम्बन्धित नहीं हैं। वह मकान के केवल सह-स्वामी हैं। यदि वे उस मकान को अपने लाभ के लिए होटल के रूप में प्रयोग करते हैं तो वे होटल के कार्य के लिए साझेदार हैं।

4. **संयुक्त हिन्दू परिवार व्यवसाय साझेदारी नहीं है**—सामान्यत: लोग संयुक्त हिन्दू परिवार व्यवसाय को साझेदारी व्यवसाय अवश्य समझ लेते हैं, जबकि हिन्दू परिवार व्यवसाय एक व्यक्ति की प्रधानता में एक बड़ा व्यवसाय है जबकि साझेदारी में सभी साझेदारों की प्रधानता होती है। अत: संयुक्त हिन्दू परिवार व्यवसाय को साझेदारी नहीं कहा जा सकता।
5. **क्या उसे फर्म के प्रबन्ध एवं संचालन में भाग लेने का अधिकार है**—साझेदारी फर्म में प्रत्येक साझेदार फर्म के प्रबन्ध एवं संचालन में भाग ले सकता है। यदि सब साझेदार चाहें तो एक अथवा एक से अधिक साझेदारों को व्यवसाय संचालन का भार सौंप सकते हैं।
6. **क्या एक साझेदार अपने सह-साझेदारों के कार्यों से बद्ध होता है?**—साझेदारी संस्था में साझेदारों के बीच जो सम्बन्ध होता है वह वैसा ही होता है जैसा कि प्रधान एवं एजेन्ट के बीच। इस प्रकार प्रत्येक साझेदार फर्म का प्रधान है और सह-साझेदारों द्वारा किया गया कोई कार्य इसी प्रकार वैध माना जाता है माना कि वह कार्य उस साझेदार के द्वारा ही किया गया हो।
7. **क्या एक साझेदार के कार्य से उसके अन्य साझेदार बद्ध होते हैं?**—साझेदारी संस्था में प्रत्येक साझेदार फर्म का प्रधान ही नहीं होता बल्कि उसका एजेन्ट भी है। दूसरे शब्दों में, एक साझेदार के द्वारा किये गये कार्यों के लिए फर्म के अन्य साझेदार भी उत्तरदायी हो जाते हैं।
8. **क्या वह फर्म की पुस्तकों एवं खातों तक पहुँच रखता है?**—साझेदारी में प्रत्येक साझेदार को यह अधिकार होता है कि वह फर्म की कोई पुस्तक एवं खाताबही देख सके, जाँच कर सके अथवा उनकी प्रतिलिपि ले सके।
9. **साझेदारी अनुबन्ध में समस्त आवश्यक तत्वों का समावेश होना**—साझेदारी अनुबन्ध में वह सभी बातें होनी चाहिये जोकि एक वैधानिक अनुबन्ध के लिए आवश्यक हैं-जैसे साझेदारों की स्वतन्त्र सहमति, अनुबन्ध करने की क्षमता, प्रतिफल आदि। अनुबन्ध कारोबार करने के उद्देश्य से होना चाहिए। यदि साझेदारी का उद्देश्य कारोबार करना नहीं है तो उसे साझेदारी नहीं कहा जा सकता।

प्र.8. संयुक्त स्कन्ध कम्पनी का अर्थ समझाइए। संयुक्त स्कन्ध कम्पनी की परिभाषा देते हुए इसकी प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

उत्तर

संयुक्त स्कन्ध कम्पनी अथवा कम्पनी
(Joint Stock Company/Company)

अर्थ—संयुक्त स्कन्ध कम्पनी/कम्पनी से आशय व्यापारिक संगठन के ऐसे प्रारूप से हैं जिसकी स्थापना कुछ व्यक्तियों द्वारा लाभ कमाने के उद्देश्य से विधान (कानून) के प्रावधानों के अन्तर्गत की जाती है।

सरल शब्दों में, 'कम्पनी' से आशय व्यक्तियों के एक ऐसे समूह से है जिनका एक सामान्य उद्देश्य होता है एवं जिसकी पूँजी हस्तान्तरणशील सीमित दायित्व वाले अंशों में विभाजित होती है। कम्पनी का कारोबार एक सार्वमुद्रा (Common Seal) के अधीन संचालित होता है और पंजीकरण के बाद इसका अपना पृथक् स्थायी अस्तित्व हो जाता है। कोई भी व्यक्ति कम्पनी के ऊपर तथा कम्पनी किसी भी व्यक्ति पर अभियोग (मुकदमा) चला सकती है।

कम्पनी की परिभाषाएँ
(Definitions of Company)

'कम्पनी' की विभिन्न परिभाषाओं को सुविधा के दृष्टिकोण से निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—(I) प्रमुख विद्वानों एवं न्यायाधीशों द्वारा दी गई परिभाषाएँ, तथा (II) कम्पनी अधिनियम, 2013 में प्रदत्त परिभाषा।

(I) प्रमुख विद्वानों एवं न्यायाधीशों द्वारा दी गई परिभाषाएँ

1. **प्रोफेसर हैने** (Haney) के अनुसार, "कम्पनी विधान द्वारा निर्मित एक कृत्रिम व्यक्ति है, जिसका उसके सदस्यों से पृथक् एवं स्थायी अस्तित्व होता है और जिसके पास सार्वमुद्रा (Seal) होती है।" (यह परिभाषा ठीक प्रतीत होती है।)
2. **अमेरिकन प्रमुख न्यायाधीश मार्शल** के अनुसार, "संयुक्त पूँजी कम्पनी एक कृत्रिम, अदृश्य तथा अमूर्त संस्था है, जिसका अस्तित्व वैधानिक होता है और जो विधान द्वारा निर्मित होती है।" (यह परिभाषा कम्पनी की मुख्य विशेषताओं को स्पष्ट करती है, अत: इसे सही परिभाषा कहा जा सकता है।)

(II) कम्पनी अधिनियम, 2013 में प्रदत्त परिभाषा

कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा 2(20) के अनुसार, "कम्पनी से आशय इस अधिनियम के अधीन अथवा इसके पूर्व के किसी कम्पनी अधिनियम के अधीन समामेलित कम्पनी से है।"

कम्पनी की विशेषताएँ या लक्षण
(Characteristics of a Company)

एक कम्पनी की निम्नांकित विशेषताएँ हैं—

1. **अविच्छिन्न उत्तराधिकार या स्थायी अस्तित्व**—कम्पनी का अस्तित्व स्थायी होता है। कम्पनी का जीवन इसके सदस्यों के जीवन पर निर्भर नहीं करता। कम्पनी में एक के बाद एक अंशधारी आते-जाते रहते हैं, किन्तु उनके आने-जाने से कम्पनी के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं पड़ता। कविवर **टैनीसन** की इन पंक्तियों के आधार पर कि 'Man may come and man may go, but I go on for ever' यह कहा जा सकता है कि कम्पनी में भी 'Members may come and members may go, but the company goes on for ever.'
2. **कानून द्वारा निर्मित कृत्रिम व्यक्ति**—कम्पनी एक 'कृत्रिम' या बनावटी व्यक्ति है, जिसका निर्माण कम्पनी कानून के अन्तर्गत होता है। सामान्य व्यक्तियों की भांति कम्पनी हाड़, मांस व खून का व्यक्ति नहीं है और न उसका जन्म ही माँ के गर्भ से होता है, किन्तु इस असमानता को छोड़कर 'कम्पनी' एवं 'व्यक्ति' में अनेक समानताएँ पायी जाती हैं, जिस कारण इसे कृत्रिम व्यक्ति की संज्ञा दी गयी है। प्रमुख समानताएँ निम्न हैं—
   (i) एक कम्पनी भी अन्य लोगों या संस्थाओं से सम्पत्ति का क्रय-विक्रय कर सकती है।
   (ii) कम्पनी को भी अन्य लोगों के साथ अनुबन्ध करने का अधिकार होता है।
   (iii) कम्पनी भी दूसरों पर वाद प्रस्तुत कर सकती है तथा अन्य पक्ष कम्पनी पर वाद प्रस्तुत कर सकते हैं।
   (iv) कम्पनी अपने द्वारा निर्गमित प्रपत्रों पर अपनी सार्वमुद्रा (Common Seal) का प्रयोग करती है तथा उससे बाध्य भी होती है।
3. **पृथक् वैधानिक अस्तित्व—सालोमन बनाम सालोमन एण्ड कम्पनी** के मामले में दिए गए निर्णय के अनुसार कम्पनी का अपने सदस्यों से भिन्न और पृथक् वैधानिक अस्तित्व होता है। परिणामस्वरूप, कम्पनी का कोई भी अंशधारी कम्पनी के साथ किसी भी प्रकार का अनुबन्ध कर सकता है। पृथक् वैधानिक अस्तित्व होने के कारण ही 'कम्पनी' ऐसे समस्त कार्य कर सकती है, जो कि एक प्राकृतिक व्यक्ति अपने व्यापार के सम्बन्ध में कर सकता है। एक कम्पनी अपने अंशधारियों के प्रति वाद प्रस्तुत कर सकती है और अंशधारी कम्पनी के विरुद्ध वाद प्रस्तुत कर सकते हैं।
4. **सार्वमुद्रा का उपयोग**—कम्पनी की सार्वमुद्रा उसके अधिकृत हस्ताक्षर का कार्य करती है। यह कम्पनी के सामूहिक अस्तित्व की प्रतीक है। इसके लग जाने पर ही कम्पनी को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।
5. **प्रबन्ध की प्रतिनिधिक व्यवस्था**—चूँकि कम्पनी में सदस्यों की संख्या अधिक होती है एवं वे विकेन्द्रित होते हैं, अत: कम्पनी का प्रबन्ध अंशधारियों द्वारा निर्वाचित उनके प्रतिनिधि संचालकों द्वारा किया जाता है। संचालकों के अधिकार व दायित्व कम्पनी के पार्षद अन्तर्नियमों द्वारा निश्चित किए जाते हैं।
6. **सीमित दायित्व**—कम्पनी में प्रत्येक सदस्य का दायित्व उसके द्वारा क्रय किए गए अंशों के अंकित मूल्य तक ही सीमित होता है। हानि की स्थिति में कम्पनी के ऋणदाता अंशधारियों की निजी सम्पत्ति पर किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकते।
7. **सीमानियम द्वारा सीमित कार्यक्षेत्र**—कम्पनी के उद्देश्य उसके पार्षद सीमानियम (Memorandum of Association) में दिए होते हैं, जबकि उद्देश्य पूर्ति तथा कार्य-संचालन सम्बन्धी नियम कम्पनी के पार्षद अन्तर्नियम (Articles of Association) में होते हैं। कम्पनी का कार्यक्षेत्र कम्पनी अधिनियम, पार्षद सीमानियम एवं अन्तर्नियम द्वारा सीमित होता है। कम्पनी इसके परे कोई भी कार्य नहीं कर सकती।
8. **अंशधारी एजेण्ट नहीं**—साझेदारों की भांति कम्पनी के अंशधारी उसके एजेण्ट नहीं होते तथा वे अपने कार्यों से कम्पनी को बद्ध नहीं कर सकते।

9. **स्वामित्व का प्रबन्ध से पृथक होना**—कम्पनी में प्रबन्ध करने वाले संचालकगण होते हैं जबकि उसके स्वामी होते हैं छोटे-बड़े सभी अंशधारी। इस प्रकार प्रबन्ध से स्वामित्व अलग होता है। कम्पनी के एजेण्ट के रूप में काम करने का अधिकार अंशधारियों का नहीं वरन् संचालकों का होता है।
10. **लाभ के लिए ऐच्छिक संघ**—प्रत्येक कम्पनी लाभ कमाने के लिए बनायी जाती है, परन्तु साथ ही समाज की भलाई का भी ध्यान रखा जाता है। जो लाभ कम्पनी को प्राप्त होता है वह निश्चित नियमों के अनुसार अंशधारियों में बाँट दिया जाता है।
11. **अधिनियम के अन्तर्गत ही स्थापना व समापन**—कम्पनी की अप्राकृतिक मृत्यु नहीं हो सकती, उसकी स्थापना तथा समापन दोनों ही कम्पनी अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार ही हो सकता है।
12. **वाद प्रस्तुत करने का अधिकार**—कम्पनी को अपने नाम में दूसरे पक्षों पर वाद प्रस्तुत करने का अधिकार होता है तथा तृतीय पक्ष भी कम्पनी पर वाद प्रस्तुत कर सकते हैं।
13. **कम्पनी एक सामाजिक संस्था है**—नवीन सामाजिक विचारधारा के अनुसार अब कम्पनी एक सामाजिक संगठन है जिसका समाज के प्रति दायित्व होता है। कम्पनी का उद्देश्य अधिकतम सामाजिक कल्याण होना चाहिए तथा अंशधारियों को कम्पनी का स्वामी नहीं माना जाना चाहिए, अपितु उनको मात्र पूँजी प्रदायक समझा जाना चाहिए जो केवल उचित प्रतिफल (लाभांश) के लिए हकदार हैं तथा कम्पनी को केवल अंशधारियों के प्रति ही उत्तरदायी नहीं होना चाहिए वरन् श्रमिकों, उपभोक्ताओं तथा समाज के अन्य सदस्यों के प्रति भी कम्पनी का दायित्व होना चाहिए।

उपर्युक्त विचारधारा में कम्पनी की एक नवीन परिकल्पना प्रस्तुत की गयी है। अभी तक कम्पनी को अंशधारियों की सम्पत्ति माना जाता रहा है तथा अंशधारियों को ही कम्पनी का स्वामी समझा जाता है। नवीनतम वाद नेशनल टैक्सटाइल वर्कर्स यूनियन बनाम पी. आर. रामकृष्णन् में भूतपूर्व न्यायाधिपति पी. एन. भगवती ने यह निर्णीत किया है कि कम्पनी को अंशधारियों की सम्पत्ति न मानकर समाज के अधिकतम कल्याण का एक साधन माना जाना चाहिए। यह दृष्टिकोण उचित प्रतीत होता है।

प्र.9. कम्पनियाँ कितने प्रकार की होती हैं? इनका वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर

कम्पनियों के प्रकार
(Types of Companies)

निम्नलिखित आधारों पर कम्पनी का वर्गीकरण किया जा सकता है—

I. समामेलन या स्थापना के आधार पर (On the basis of Incorporation)

कम्पनियों के निर्माण की दृष्टि से इनके तीन भेद किए जा सकते हैं, क्योंकि कम्पनी का निर्माण भी तीन रीतियों से हो सकता है। ये इस प्रकार हैं—

1. **चार्टर्ड कम्पनियाँ**—राज्य में विशेष आज्ञापत्र या फरमान (Charter) द्वारा स्थापित कम्पनी को 'चार्टर्ड कम्पनी' कहा जाता था ऐसी कम्पनी प्राय: अपने नाम के साथ 'चार्टर्ड' शब्द का प्रयोग करती है। उसका कार्यक्षेत्र चार्टर द्वारा निर्धारित होता है। इसके सदस्य इसके द्वारा लिए गए ऋणों के लिए उत्तरदायी नहीं होते। अत: इस पर राज्य का सर्वाधिक नियन्त्रण होता है। राज्य जब चाहे चार्टर को रद्द करके ऐसी कम्पनी को बन्द कर सकता है। इस प्रकार की कम्पनियों का प्रचलन अब नहीं है। भारत में व्यापार के लिए स्थापित ईस्ट इण्डिया कम्पनी इसी वर्ग की कम्पनी थी।
2. **वैधानिक कम्पनियाँ**—इन कम्पनियों की स्थापना संसद द्वारा पारित विशेष विधानों द्वारा की जाती है, इसीलिए इनको वैधानिक कम्पनियाँ कहा जाता है। इनका प्रबन्ध और संचालन इनके अपने विशेष विधान द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार किया जाता है, जैसे—रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया ऐक्ट के अन्तर्गत हुई है। जीवन बीमा निगम, औद्योगिक वित्त निगम तथा स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया इसके अन्य उदाहरण हैं।
3. **रजिस्टर्ड या समामेलित कम्पनियाँ**—ये कम्पनियाँ वे हैं जिनका समामेलन कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत होता है। कुछ कम्पनियाँ ऐसी भी हैं जिनकी रजिस्ट्री (समामेलन) तो कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत होती है, किन्तु जिनका प्रबन्ध एवं संचालन उसके विशेष अधिनियम के अनुसार होता है, जैसे—बैंकिंग, बिजली एवं बीमा कम्पनियाँ। विशेष महत्वपूर्ण होने के कारण इनका संचालन पृथक अधिनियम द्वारा किया जाता है।

II. दायित्व के आधार पर (On the basis of Liability)

सदस्यों के दायित्व के आधार पर कम्पनियों को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

1. **सीमित कम्पनी**—सीमित कम्पनियों के सदस्यों का दायित्व सीमित होता है। ऐसी कम्पनियों के लिए अपने नाम के साथ 'सीमित' शब्द का प्रयोग करना अनिवार्य होता है; जैसे—'ग्वालियर डेरीज (प्रा.) लिमिटेड'। ये कम्पनियाँ भी दो प्रकार की होती हैं—अंशों द्वारा सीमित एवं गारण्टी द्वारा सीमित।
   (i) **अंशों द्वारा सीमित कम्पनी**—ऐसी कम्पनी अपनी पूँजी को कुछ निश्चित राशि के अंशों में बाँट देती है और प्रत्येक अंशधारी का दायित्व उसके अंशों के अंकित मूल्य तक सीमित रहता है। उदाहरण के लिए, यदि सुरेश के पास 10-10 रु० के 100 अंश हैं, तो उसका उत्तरदायित्व कुल 1,000 रु० होगा, इससे अधिक नहीं। यदि किसी अंशधारी ने अपने उत्तरदायित्व का आंशिक भुगतान कर दिया है तो वह केवल शेष राशि के लिए देनदार रहेगा। ऐसी कम्पनियाँ बड़ी लोकप्रिय हैं।
   (ii) **गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी**—गारण्टी द्वारा सीमित कम्पनी के सदस्य कम्पनी को इस बात की गारण्टी देते हैं कि यदि उनके सदस्य रहने के समय में अथवा सदस्यता समाप्त होने से एक वर्ष के भीतर कम्पनी दिवालिया हो जाए, तो वे कम्पनी के कोष में एक निश्चित राशि जमा कर देंगे। इस प्रकार, सदस्यों का दायित्व इस निश्चित राशि तक ही सीमित रहता है। साधारणत: सामाजिक या खेलकूद की संस्थाएँ या अलाभकारी संस्थाएँ अपने को इसी प्रकार रजिस्टर्ड कराती हैं।
2. **असीमित कम्पनी**—असीमित कम्पनी के सदस्यों का दायित्व अपरिमित या सीमारहित होता है, अर्थात् साझेदारों की भांति वे कम्पनी के ऋणों का भुगतान करने के लिए व्यक्तिगत रूप से भी दायी होते हैं। हाँ, यह अवश्य है कि ऐसी कम्पनियों के सदस्य कम्पनी की सदस्यता से अलग होने पर केवल एक वर्ष बाद तक दायी रहते हैं और इस अवधि के बाद वे अपने समस्त दायित्वों से मुक्त हो जाते हैं। आजकल ऐसी कम्पनियाँ व्यवहार में नहीं हैं।

III. अंशों की हस्तान्तरणीयता के आधार पर (On the basis of Transferability of Shares)

1. **पब्लिक कम्पनी**—पब्लिक कम्पनी से आशय ऐसी कम्पनी से है जिसका समामेलन भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत हुआ हो और जो प्राइवेट कम्पनी न हो और जिसकी न्यूनतम चुकता अंश पूँजी 5 रु० लाख हो। पब्लिक कम्पनी की तीन विशेषताएँ हैं—
   (i) इनके अंशों का हस्तान्तरण स्वतन्त्रतापूर्वक किया जा सकता है;
   (ii) इसके अंशधारियों की संख्या न्यूनतम सात और अधिकतम कितनी भी हो सकती है; और
   (iii) यह अपने अंशों के विक्रय हेतु प्रविवरण द्वारा जनता को आमन्त्रित कर सकती है।
2. **प्राइवेट कम्पनी**—"प्राइवेट कम्पनी" का आशय ऐसी कम्पनी से है जिसकी न्यूनतम चुकता पूँजी एक लाख रुपए हो अथवा ऊँची चुकता पूँजी जो निर्धारित की जाए, और जिसके अन्तर्नियम—
   (i) अंशों के हस्तान्तरण के अधिकार को प्रतिबंधित करते हों,
   (ii) एक व्यक्ति कम्पनी को छोड़कर, अपने सदस्यों की संख्या 200 तक सीमित रखती है,
   (iii) कम्पनी की किसी प्रतिभूति के क्रय के लिए जनता को आमंत्रण निषेध करती है। [धारा 2(68)]

IV. स्वामित्व के आधार पर (On the basis of Ownership)

1. **सरकारी कम्पनियाँ**—भारतीय कम्पनी अधिनियम, 2013 की धारा 2(45) के अनुसार, सरकारी कम्पनी वह कम्पनी होती है जिसमें कम-से-कम 51% अंश पूँजी सरकार (राज्य या केन्द्रीय सरकार या दोनों के) द्वारा प्रदान की गयी हो एवं ऐसी कम्पनियाँ भी सरकारी कम्पनियाँ मानी जाएंगी, जो किसी सरकारी कम्पनी की 'सहायक' हों।
2. **गैर-सरकारी कम्पनियाँ**—वह कम्पनी गैर-सरकारी कम्पनी कहलाती है, जिसका स्वामित्व और नियन्त्रण प्राइवेट व्यक्तियों के हाथों में हो। पहले गैर-सरकारी कम्पनियों की संख्या अधिक होती थी और आज भी इनकी संख्या बढ़ रही है; किन्तु अब सरकारी कम्पनियों की संख्या भी बढ़ने लगी है।

3. **सूत्रधारी कम्पनी**—"सूत्रधारी कम्पनी" का आशय किसी एक अथवा अधिक अन्य कम्पनियों के संदर्भ में ऐसी कम्पनी से है, जिसकी अन्य कम्पनियाँ सहायक कम्पनियाँ हैं।"
[कम्पनी अधिनियम, 2013, धारा 2(46)]
4. **सहायक कम्पनी**—"सहायक कम्पनी" अथवा "सहायक" किसी अन्य कम्पनी के सन्दर्भ में (अर्थात् सूत्रधारी कम्पनी) से आशय ऐसी कम्पनी से है, जिसमें सूत्रधारी कम्पनी—
(i) संचालक मण्डल के गठन पर नियंत्रण रखती है, अथवा
(ii) स्वयं अथवा एक अथवा अधिक सहायक कम्पनियों के साथ, आधे से अधिक अंशपूँजी का धारण अथवा नियंत्रण रखती है।
[धारा 2(87)]

V. राष्ट्रीयता के आधार पर (On the basis of Nationality)

1. **विदेशी कम्पनियाँ**—जो कम्पनियाँ भारत से बाहर (अर्थात् विदेश में) रजिस्टर्ड हुई हैं, किन्तु अपना व्यापार भारत में भी करती हैं, उन्हें 'विदेशी कम्पनी' कहा जाता है। ऐसी कम्पनियों के लिए कम्पनी अधिनियम, 2013 का आदेश है कि वे अपने प्रविवरण, विज्ञापनों, बिलों, व्यापारिक-पत्रों, आदि पर उस देश का नाम अंग्रेजी भाषा में लिखें जहाँ कि उनका समामेलन हुआ है, और अपने भारतीय कार्यालयों व व्यापार करने के स्थानों में भी अपना नाम समामेलन वाले देश के नाम सहित स्पष्ट शब्दों में लिखें। यदि उनके सदस्यों का दायित्व सीमित है, तो इसका भी उल्लेख होना चाहिए।
2. **देशी कम्पनियाँ**—जिन कम्पनियों का समामेलन भारत में हुआ है, उन्हें देशी या भारतीय कम्पनियाँ कहते हैं।

प्र.10. सहकारी संगठन का अर्थ समझाते हुए इसे परिभाषित कीजिए। इसकी प्रमुख विशेषताएँ भी बताइए।

उत्तर

सहकारी संगठन का अर्थ
(Meaning of Co-operative Organisation)

जब दो या दो से अधिक व्यक्ति आपस में किसी सामान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए मिल-जुलकर कार्य करते हैं तो इसे सहकारिता के नाम से पुकारा जाता है। दूसरे शब्दों में, किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मिलकर काम करना सहकारिता है। सामान्यत: सहकारिता शब्द से आशय ऐसे संगठन से लगाया है जिसमें कार्य करने वाले व्यक्ति स्वतन्त्रता तथा अपनी स्वेच्छानुसार समानता के आधार पर किसी आर्थिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए कार्य करते हैं।

सहकारिता का मूल मन्त्र है "**एक सबके लिये और सब एक के लिये**" (Each for all and All for Each)। वास्तव में व्यावसायिक संगठन के स्वरूपों में यह संगठन सबसे अनूठा है; क्योंकि व्यवसाय का उद्देश्य समाज की सेवा करना भी है और सहकारी संगठन इसमें खरा उतरता है। सहकारी संगठनों का मूल उद्देश्य अपने सदस्यों की अधिकतम सेवा करते हुए लाभ कमाना है। सहकारी संगठन समाज के ऐसे लोगों का संगठन है जो यह अनुभव करते हैं कि वे शक्तिशाली व्यापारियों द्वारा किये जाने वाले शोषण से अपनी रक्षा नहीं कर पायेंगे। इस दृष्टि से सहकारी संगठन एक सुरक्षात्मक अस्त्र होते हैं। इस संगठन में सभी सदस्य अपने सीमित साधनों को एक संगठन एवं एक प्रबन्ध व्यवस्था के अधीन एकत्र करके उनका अधिकतम उपयोग करते हुये लाभ कमाते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (I.L.O.) के अनुसार, "सहकारी समिति उन व्यक्तियों का एक संगठन है जिनके साधन प्राय: सीमित होते हैं जो लोकतन्त्रात्मक ढंग से नियन्त्रित, व्यावसायिक संगठन की स्थापना करके समान आर्थिक लक्ष्य की उपलब्धि के लिये स्वेच्छा से एकत्रित होते हैं, आवश्यक पूँजी परस्पर उचित अनुपात में एकत्र करते हैं तथा व्यवसाय में निहित जोखिम व उससे प्राप्त लाभ को परस्पर उचित अनुपात में बाँटने के लिये सहमत होते हैं।"

प्रो० शुबिन अनुसार, "सहकारी स्वामित्व बिना लाभ का संगठन है जिसका निर्माण अपने सदस्यों को वस्तुएँ व सेवाएँ लागत पर उपलब्ध कराने के लिये किया जाता है।"

किम्बाल एवं किम्बाल के अनुसार, "वर्तमान सन्दर्भ में सहकारी स्वामित्व से तात्पर्य व्यक्तियों के एक संघ से है जिसका निर्माण आवश्यक वस्तुएँ बाजार मूल्य से कम मूल्य पर उपलब्ध कराने के लिये या किसी उत्पादन संस्थान का संचालन करने के लिये किया जाता है, जिसका लाभ सदस्यों द्वारा लगायी गई पूँजी या श्रम के अनुपात में वितरित किया जाता है।"

एच० कलवर्ट के अनुसार, "सहकारिता एक प्रकार का संगठन है जिसमें लोग स्वेच्छापूर्वक मनुष्यों की भांति समानता के आधार पर अपने आर्थिक हित की उन्नति के लिए संगठित होते हैं।"

प्रो० सैलिगमैन (Prof. Seligman) के अनुसार, "सहकारिता का पारिभाषिक अर्थ है वितरण और उत्पादन में प्रतियोगिता का परित्याग कर समस्त प्रकार के मध्यस्थों को दूर करना।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सहकारी स्वामित्व, व्यावसायिक स्वामित्व का वह स्वरूप है जिसके अन्तर्गत अनेक व्यक्ति स्वेच्छा से अपने साधनों को किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिये एकत्रित करते हैं।

सहकारी स्वामित्व की विशेषताएँ
(Characteristics of Co-operative Ownership)

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर सहकारी स्वामित्व की निम्नलिखित मुख्य विशेषताएँ बताई जा सकती हैं—

1. **स्वैच्छिक संगठन**—सहकारी संगठन के अन्तर्गत किसी को भी संगठन में बिना उसकी इच्छा के सम्मिलित नहीं किया जा सकता और एक बार सदस्य बन जाने के उपरान्त उसकी इच्छा के विपरीत संगठन से उसे निकाला नहीं जा सकता। किसी भी धर्म, जाति या वर्ग का कोई भी व्यक्ति किसी भी समय सहकारी संस्था का सदस्य सम्बन्धित नियमों के अन्तर्गत बन सकता हैं।
2. **लोकतन्त्रीय प्रबन्ध**—संस्थाओं का प्रबन्ध लोकतन्त्रीय आधार पर किया जाता है। सभी सदस्य एक सामान्य सभा में प्रबन्ध समिति का चुनाव करते हैं तथा नीति निर्धारित करते हैं।
3. **समान मताधिकार**—सहकारी संस्थाओं में एक व्यक्ति एक वोट के सिद्धान्त का पालन किया जाता है। सदस्यों द्वारा लिये अंशों का मताधिकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उदाहरणार्थ, यदि किसी व्यक्ति ने सहकारी संस्था के 10 शेयर खरीदे हैं तथा दूसरे ने केवल एक शेयर तो मतदान के समय दोनों को केवल एक वोट देने का अधिकार होता है।
4. **सेवा का उद्देश्य**—सहकारी संगठन का मुख्य उद्देश्य अपने सदस्यों की सेवा करना होता है। इनका निर्माण लाभ कमाने के लिये गये नहीं किया जाता। लेकिन यदि सामान्य व्यावसायिक क्रियायें सम्पन्न करते हुये लाभ उत्पन्न होता है तो उसकी उपेक्षा नहीं की जाती है।
5. **लाभ का वितरण**—सहकारी संस्थाओं में हुए लाभ का वितरण सदस्यों द्वारा लिये गये अंशों के अनुपात में न होकर उनके द्वारा संस्था के लिये किये गये योगदान के आधार पर किया जाता है।
6. **राज्य का नियन्त्रण**—सहकारी संस्थाओं के संगठन, परिचालन, हिसाब-किताब आदि के सम्बन्ध में राज्य द्वारा निश्चित नियमों का निर्माण किया जाता है जिससे कि संस्था को किसी एक वर्ग या दल के हाथों का खिलौना होने से बचाया जा सके।
7. **राजनैतिक एवं धार्मिक तटस्थता**—सहकारी संस्थाओं में विभिन्न राजनैतिक दलों के सिद्धान्तों में आस्था रखने वाले एवं विभिन्न धार्मिक दृष्टिकोणों को मानने वाले व्यक्तियों को मिलकर कार्य करना पड़ता है। अत: ये संस्थायें राजनीतिक व धार्मिक दृष्टिकोण से तटस्थ होती हैं।
8. **मध्यस्थों का उन्मूलन**—सहकारी संस्थाओं की स्थापना मध्यस्थों को समाप्त करने के लिये की जाती है जिससे कि उनके द्वारा बीच में कमाये गये लाभ को समाप्त किया जा सके।
9. **नैतिकता एवं परस्पर सहयोग**—सहकारी संस्थाओं की स्थापना नैतिकता एवं परस्पर सहयोग तथा सद्भावना को बढ़ावा देने के लिये की जाती है। सहकारिता अपनी सेवा स्वयं करने का एक अनूठा तरीका है।
10. **नकद कारोबार**—सहकारी समितियाँ अपना समस्त कारोबार/व्यवसाय जहाँ तक सम्भव होता है, नकदी में ही करती हैं।

प्र.11. सहकारी स्वामित्व से होने वाले लाभों की व्याख्या कीजिए।

उत्तर

सहकारी स्वामित्व से लाभ
(Advantages of Co-operative Ownership)

सहकारी संगठनों से प्राप्त होने वाले लाभों को निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है—

I. आर्थिक लाभ (Economic Advantages)

1. **वित्त प्राप्त करने में सुविधा**—व्यक्तिगत इकाईयों की अपेक्षा सहकारी संगठनों को आसानी से तथा उचित ब्याज दर पर वित्त प्राप्त हो जाता है। इन संगठनों के विकास के लिये अनेक राजकीय संस्ताएँ आसानी से ऋण उपलब्ध करा देती हैं जिससे महाजनों के ऋणों से इनके सदस्यों को छुटकारा मिल जाता है।

2. **सीमित दायित्व**—इन समितियों में सदस्यों का दायित्व उनके द्वारा लिये गये अंशों की राशि तक ही सीमित होता है। अत: प्रत्येक सदस्य अपनी जोखिम सहन करने की क्षमता के अनुसार ही अंशों को क्रय करता है। जोखिम सीमित होने के कारण निम्न वर्ग के लोग भी इनकी सदस्यता प्राप्त कर लेते हैं।
3. **मध्यस्थों की समाप्ति**—इन संस्थाओं की स्थापना से व्यावसायिक जगत में भारी मुनाफा कमाने वाले मध्यस्थों का अन्त हो जाता है क्योंकि ये संस्थायें स्वयं निर्माताओं और उपभोक्ताओं के मध्य मध्यस्थों के रूप में ही कार्य करती हैं।
4. **माँग व पूर्ति में सन्तुलन**—सहकारी समितियाँ अपने सदस्यों की माँग के अनुसार ही माल का क्रय करती हैं तथा सदस्यों को उनकी आवश्यकतानुसार ही माल की पूर्ति करती हैं। अत: न तो कृत्रिम अभाव की समस्या आती है और न ही अधिक पूर्ति की। इस प्रकार माँग एवं पूर्ति में उचित सन्तुलन बना रहता है।
5. **सरकारी संरक्षण**—समाज के निर्बल वर्ग की सहायता के उद्देश्य से सरकार भी इन समितियों को विभिन्न प्रकार की रियायतें उपलब्ध कराती हैं जैसे ने केन्द्र सरकार आयकर तथा उत्पादन करों की दर कम्पनियों की अपेक्षा इन समितियों में नीची रखती है। इसी प्रकार से राज्य सरकारें भी स्टाम्प शुल्क, पंजीयन शुल्क आदि में रियायत देती है।
6. **मूल्यों में स्थायित्व**—मूल्यों को स्थिर रखने में सहकारी संगठनों ने विशेष योगदान दिया है क्योंकि इन समितियों का उद्देश्य प्रथम सेवा और द्वितीय लाभ कमाना होता है। यही कारण है कि सरकार आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति में सहकारी संगठनों के माध्यम को अधिक प्राथमिकता देती है।
7. **लाभ का न्यायोचित वितरण**—इन समितियों द्वारा कमाया गया लाभ सदस्यों में उनके द्वारा लगाई गई पूँजी के अनुपात में नहीं वरन् उनके द्वारा सीमति को दिये गये योगदान के अनुपात में विभाजित किया जाता है। अत: लाभ का उचित वितरण हो जाता है क्योंकि इस विधि से उन सदस्यों को भी पर्याप्त लाभ मिल जाते हैं जिनके पास भारी मात्रा में पूँजी नहीं है।
8. **नयी क्रियाओं को प्रोत्साहन**—स्वयं सेवा की भावना से प्रेरित होकर तथा सरकारी रियायतों का लाभ उठाने के उद्देश्य से ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में अनेक नवीन व्यवसायों को प्रोत्साहन मिला है और सहकारी समितियाँ उन व्यवसायों के लिये उपयुक्त सिद्ध हुई हैं जैसे डेरी उद्योग, मुर्गी पालन, मत्स्य पालन, मधु मक्खी पालन आदि। इनकी उन्नति से समाज के आर्थिक विकास में सहायता मिलती है।

II. सामाजिक लाभ (Social Advantages)

सहकारी समिति संगठन के निम्नलिखित सामाजिक लाभ भी हैं—

1. **सहकारी और प्रजातन्त्र की भावना को प्रोत्साहन**—सहकारी समिति संगठन व्यावसायिक क्षेत्र में सहकारिता और प्रजातन्त्र की भावना को मजबूत बनाता है। ये समितियाँ समान हित रखने वाले व्यक्तियों द्वारा आपस में मिलकर बनायी जाती है। इनके प्रबन्ध में प्रत्येक सदस्य को बराबर का अधिकार प्राप्त होता है।
2. **आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीयकरण**—सहकारी समितियों द्वारा आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीयकरण होता है क्योंकि सहकारिता के सिद्धान्त पूँजीवादी व्यवस्थाओं के विरुद्ध हैं।
3. **व्यावसायिक अनुभव**—इन समितियों में प्रतिभा सम्पन्न परन्तु साधन-विहीन व्यक्ति भी अपनी कुशलता का प्रदर्शन कर सकते हैं और व्यावसायिक प्रबन्ध का मूल्यवान अनुभव प्राप्त कर सकते हैं।
4. **कमजोर तथा निर्धन लोगों की सहायता**—सहकारी समितियाँ समाज के दलित व कमजोर वर्ग का सहारा बनकर उन्हें अपने पैरों पर खड़े होने की क्षमता प्रदान करती हैं, पूँजीपतियों के शोषण से बचाती हैं। गरीब लोग मिलकर, इनके द्वारा अपनी जीविका का साधन प्राप्त कर सकते हैं। सहकारी समितियों द्वारा अर्जित लाभ का 10% तक भाग भी सदस्यों के सामान्य कल्याण पर व्यय किया जाता है।
5. **अप्रत्यक्ष लाभ**—इन समितियों से कई अप्रत्यक्ष लाभ भी हैं जैसे सदस्यों में नकद खरीदारी करने और बचत करने की आदत को प्रोत्साहन, अपनी समस्याओं को मिलकर सुलझाने की आदत को प्रोत्साहन आदि।

III. राजनीतिक लाभ (Political Advantages)

सहकारी संगठन की प्रबन्ध व्यवस्था लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों पर आधारित होती है जिससे सदस्यों में लोकतन्त्र की भावना जाग्रत होती है तथा उन्हें अपने अधिकारों, कर्त्तव्यों एवं दायित्वों का बोध होता है। इसके कारण समाज में राजनीतिक चेतना आती है तथा देश के लोग अच्छे नागरिक की तरह रहते हैं।

IV. शिक्षात्मक लाभ (Educational Advantages)

सहकारी संगठन के माध्यम से लोगों को सहकारिता की शिक्षा प्रदान की जाती है। सहकारी शिक्षा के अन्तर्गत ऋणों के उचित उपयोग की विधि, कृषि विपणन विधि, सहकारी उपभोक्ता भण्डारों की स्थापना एवं संचालन विधि, सहकारिता के आधार पर उद्योग-धन्धों की स्थापना तथा उनके संचालन की विधि, आर्थिक साधनों का समुदाय के हित में उपयोग करने की विधि, शोषण से बचने की विधि, रहन-सहन तथा उपभोग का उचित स्तर बनाये रखने आदि की विधियों का अध्ययन करते हैं।

V. सांस्कृतिक एवं धार्मिक लाभ (Cultural and Religious Advantages)

इतिहास इस बात का साक्षी है कि इस स्पर्धामयी विश्व में मानव को अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए जो संघर्ष करने पड़े हैं, उसने बहुत-सी भलाई एवं सौन्दर्य को नष्ट कर दिया है। अधिकांश व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से सुखी एवं शान्तिपूर्ण जीवन नहीं बिता पाते तथा उन्हें प्रत्येक क्षेत्र में संघर्ष करना पड़ता है। **थोरो** के शब्दों में, "अनेक व्यक्ति नितान्त निराशापूर्वक जीवन बिताते हैं सच्ची सहकारिता धन एवं सम्पत्ति पर मनुष्य का प्रभुत्व स्थापित कर उन बाधाओं को दूर करने में समर्थ होती है जो उसे अपनी रक्षा स्वयं करने तथा शिष्ट जीवन बिताने से रोकती है।" सहकारित मनुष्य के जीवन में अनेक अच्छे गुणों का विकास करती है तथा उसे सांस्कृतिक एवं धार्मिक प्रगति के पथ पर अग्रसर करती है।

प्र.12. संयुक्त पूँजी कम्पनी के लाभों का वर्णन कीजिए।

उत्तर

संयुक्त पूँजी कम्पनी के लाभ
(Advantages of Joint Stock Company)

व्यावसायिक संगठन के अन्य प्रारूपों की तुलना में कम्पनी संगठन सबसे अधिक लोकप्रिय है। इसकी लोकप्रियता के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

1. **अंशों की हस्तान्तरणीयता**—कम्पनी के अंश, स्कन्ध विनिमय (Stock Exchange) में स्वतन्त्रतापूर्वक हस्तान्तरित किये जा सकते हैं। इसके दो लाभ होते हैं। प्रथम तो कम्पनी को पूँजी वापस नहीं करनी पड़ती तथा द्वितीय अंशधारी को आवश्यकता के समय पूँजी प्राप्त हो जाती है।
2. **स्थायी अस्तित्व**—सदस्यों की मृत्यु, दिवालिया अथवा पागल होने आदि का कम्पनी के अस्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, अतएव इस प्रकार की संस्था साझेदारी की अपेक्षा बहुत स्थायी होती है। इस स्थायी अस्तित्व का परिणाम यह होता है कि कम्पनी दीर्घकालीन योजनाएं बना सकती है तथा दीर्घकालीन अनुबन्ध कर सकती है।
3. **प्रजातान्त्रिक प्रबन्ध एवं संचालन**—एक कम्पनी में कार्य संचालन का क्षेत्र अत्याधिक विस्तृत होता है। इसमें सदस्यों की संख्या अधिक होती है इसलिए वे सब प्रबन्ध में भाग नहीं ले सकते। अत: उनके द्वारा चुने गये व्यक्ति (प्रतिनिधि) प्रबन्ध का कार्य करते हैं। कम्पनी में स्वामित्व और प्रबन्ध अलग कर दिया जाता है जिससे यह सम्भव हो जाता है कि योग्य एवं अनुभवी संचालकों एवं अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति का लाभ उठाया जा सके।
4. **सीमित दायित्व**—कम्पनी संगठन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता इसके सदस्यों का सीमित दायित्व होना है। सामान्यत: अंशधारियों का दायित्य उनके द्वारा क्रय किये गये अंशों के अंकित मूल्य तक ही सीमित रहता है। सीमित दायित्व के कारण सामान्य व्यक्ति भी नि:संकोच होकर कम्पनी में विनियोग करने को तत्पर हो जाता है तथा कम्पनी को पूँजी एकत्र करने में किसी प्रकार की असुविधा नहीं होती तथा विनियोजक की जोखिम भी निश्चित धनराशि तक सीमित रहती है।
5. **जोखिम का विभाजन**—जहाँ साझेदारी जैसे व्यावसायिक संगठनों में सम्पूर्ण जोखिम कुछ एक व्यक्तियों को उठानी पड़ती है कम्पनी में यह इतने व्यक्तियों में बँट जाती है कि किसी व्यक्ति को उसका भार अनुभव नहीं होता है।
6. **विशाल वित्तीय साधन**—कम्पनी का एक उल्लेखनीय आकर्षण इसकी असीम वित्तीय क्षमता है। कम्पनी कहीं भी स्थित हो पूँजी उसके लिए देश के कोने-कोने से आ सकती है। सीमित दायित्व तथा जोखिम के आधार पर विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों के कारण विनियोक्ता नि:संकोच कम्पनी में अपनी पूँजी का विनियोग करता है। कम्पनी अपनी आवश्यकतानुसार पूँजी की मात्रा में विस्तार या संकुचन कर सकती है।
7. **एकाधिकार के लाभ**—बड़े पैमाने पर व्यापार करने से कम्पनियों को एकाधिकार के लाभ प्राप्त होने लगते हैं, जैसे प्रतिस्पर्धा का अभाव तथा ऊँचे मूल्यों पर विक्रय करके अधिक लाभ कमाना।

8. **बड़े पैमाने के उत्पादन को प्रोत्साहन**—कम्पनी में वित्त की प्रचुरता के कारण बड़ी मात्रा में उत्पादन करना सम्भव हो जाता है जिससे अनेक लोगों को रोजगार मिलता है। उत्पादन अधिकतम श्रेष्ठ व सस्ता होता है। जनसाधारण के उपभोग में वृद्धि होती है तथा सरकार को भी करारोपण से आय होती है व विस्तार की सम्भावनाएँ भी बढ़ती हैं।
9. **बचत को प्रोत्साहन**—कम्पनी अल्प बचत करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करती है क्योंकि कम्पनी की अंश पूँजी कम मूल्य के अंशों में विभक्त होती है। अत: अल्प बचत करके कम्पनी की सदस्यता ग्रहण करने की प्रवृत्ति प्रबल होती है, फलस्वरूप अधिक पूँजी का निर्माण होता है।
10. **औद्योगिक अनुसन्धान सम्भव**—कम्पनी अपने विस्तृत आर्थिक साधनों तथा बड़े पैमाने पर उत्पादन होने के कारण नवीनतम यन्त्रों का प्रयोग कर सकती है जिससे औद्योगिक अनुसन्धानों की सम्भावनाओं में वृद्धि होती है।

प्र.13. एक निजी कम्पनी तथा सार्वजनिक कम्पनी की तुलना कीजिए।

उत्तर

निजी कम्पनी तथा सार्वजनिक कम्पनी में अन्तर
(Distinction between Private Company and Public Company)

क्र० सं०	अन्तर का आधार	निजी कम्पनी	सार्वजनिक कम्पनी
1.	**सदस्यों की संख्या**	निजी कम्पनी में सदस्यों की संख्या कम से कम 2 तथा अधिक से अधिक 200 होती है।	इसमें सदस्यों की संख्या कम से कम 7 तथा अधिक से अधिक निर्गमित अंशों के बराबर हो सकती है।
2.	**अंश-क्रय के लिए आमन्त्रित करना**	निजी कम्पनी अपने अंशों और ऋणपत्रों के क्रय के लिए जनता को आमन्त्रित नहीं कर सकती।	सार्वजनिक कम्पनी पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है।
3.	**अंशों का आबंटन**	निजी कम्पनी अपने समामेलन उपरान्त तुरन्त ही अंशों का आबंटन (Allotment) कर सकती है।	यह अंशों का आबंटन उस समय तक नहीं कर सकती जब तक कि न्यूनतम अभिदान राशि प्राप्त न हो जाये।
4.	**प्रविवरण निर्गमन**	निजी कम्पनी प्रविवरण का निर्गमन नहीं करती।	सार्वजनिक कम्पनी के लिए प्रविवरण का निर्गमन आवश्यक है।
5.	**अंश हस्तांतरण**	निजी कम्पनी के अन्तर्नियमों द्वारा अंशों के हस्तांतरण पर प्रतिबन्ध रहता है।	इसमें अंशों के हस्तांतरण पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं रहता अर्थात् अंशों का हस्तान्तरण पार्षद अन्तर्नियमों के अन्तर्गत स्वतन्त्रतापूर्वक किया जा सकता है।
6.	**संचालकों को ऋण**	इसमें संचालकों को ऋण देने के लिए केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुमति लेना आवश्यक नहीं है।	इसमें संचालकों को ऋण देने के लिए केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुमति लेना आवश्यक होता है।
7.	**संचालकों की संख्या**	इसमें कम-से-कम दो संचालक अवश्य होते हैं।	इसमें कम-से-कम तीन संचालक अवश्य होने चाहिए।
8.	**संचालकों का पारी से अवकाश ग्रहण करना**	इसमें पारी से अवकाश ग्रहण करना संचालकों के लिए आवश्यक नहीं है।	इस कम्पनी के दो-तिहाई संचालक अवश्य ही पारी से अवकाश ग्रहण करते हैं।
9.	**पार्षद सीमानियम पर व्यक्तियों के हस्ताक्षर**	इस कम्पनी के पार्षद सीमानियम पर कम-से-कम दो व्यक्तियों के हस्ताक्षर होना आवश्यक है।	इस कम्पनी के पार्षद सीमानियम पर कम-से-कम सात व्यक्तियों के हस्ताक्षर होना आवश्यक है।
10.	**अन्तर्नियमों का बनाना**	अंशों द्वारा सीमित प्राइवेट कम्पनी में पार्षद अन्तर्नियम बनाना आवश्यक है।	अंशों द्वारा सीमित पब्लिक कम्पनी में पार्षद अन्तर्नियम बनाना आवश्यक नहीं है।
11.	**शेयर वारण्ट**	निजी कम्पनी में वाहक शेयर वारण्ट (Bearer share warrant) निर्गमित नहीं किया जा सकता है।	सार्वजनिक कम्पनी में अंशों के पूर्णदत्त होने पर वाहक शेयर वारण्ट निर्गमित किया जा सकता है।

TOUCH 'n' PASS

12.	**'लिमिटेड' या प्राइवेट लिमिटेड शब्द का प्रयोग**	इस कम्पनी के नाम के अन्त में 'प्राइवेट लिमिटेड' शब्द लगाना आवश्यक है।	इस कम्पनी के नाम के अन्त में केवल 'लिमिटेड' शब्द लगाना पड़ता है।
13.	**योग्यता अंश**	निजी कम्पनी में संचालकों के लिए योग्यता अंश लेना अनिवार्य नहीं है।	सार्वजनिक कम्पनी में संचालकों के लिए योग्यता अंश लेना अनिवार्य है।
14.	**जनता से जमा राशियाँ**	निजी कम्पनी जनता से जमाराशियाँ न तो आमन्त्रित कर सकती है और न ही स्वीकार कर सकती है।	सार्वजनिक कम्पनी जनता से जमा राशियाँ आमन्त्रित एवं स्वीकार कर सकती है।
15.	**प्रबन्ध पारिश्रमिक**	निजी कम्पनी पर प्रबन्ध पारिश्रमिक की कोई सीमा लागू नहीं होती।	सार्वजनिक कम्पनी में शुद्ध लाभों का 11% से अधिक प्रबन्ध पारिश्रमिक नहीं दिया जा सकता।
16.	**कार्यवाहक संख्या**	निजी कम्पनी की सभा में सदस्यों की कार्यवाहक संख्या 2 होती है।	सार्वजनिक कम्पनी में सदस्यों की कार्यवाहक संख्या कम-से-कम 5 होती है।
17.	**स्वतन्त्र संचालक**	निजी कम्पनी के संचालक मण्डल में स्वतन्त्र संचालक होने अनिवार्य नहीं है।	सार्वजनिक कम्पनियों के संचालक मण्डल के कुल संचालकों में से कम-से-कम एक-तिहायी संचालक स्वतन्त्र संचालक होने अनिवार्य हैं।

प्र.14. सार्वजनिक उद्यम की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए इसकी विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

सार्वजनिक उद्यम की अवधारणा
(Concept of Public Enterprise)

इस समय सार्वजनिक क्षेत्र को राज्य क्षेत्र कहा जाता है। यह राज्य का वह विभाग है जो क्षेत्रीय, राष्ट्रीय या स्थानीय स्तर पर सरकारी क्षेत्र या सार्वजनिक क्षेत्र से उत्पादों एवं सेवाओं के उत्पादन, आपूर्ति एवं आवंटन जैसी प्रक्रियाओं को नियंत्रित करता है। सामाजिक सुरक्षा, शहरी नियोजन तथा राष्ट्रीय संरक्षण का प्रावधान सार्वजनिक क्षेत्र के अनतर्गत आता है।

स्थानीय, राज्य तथा केन्द्रीय स्तरों पर सरकार सार्वजनिक क्षेत्र को नियंत्रित करती है। कभी-कभी, सार्वजनिक क्षेत्र समाज या सरकार के लिए विशिष्ट वस्तुओं एवं सेवाओं को उत्पन्न करने या वितरित करने के लिए व्यक्तिगत क्षेत्र के साथ हाथ मिलाता है। यद्यपि, उनके संघ में विभिन्न देशों, राज्यों, प्रांतों एवं राज्यों के लिए विविधताएँ हैं। उनका संयोजन सामान्यत: क्षेत्रों में देखा जाता है, जैसे—कि अपशिष्ट प्रबन्धन, जल प्रबन्धन, सामाजिक सुरक्षा, स्वास्थ्य, सेवा तथा समाज के गरीब और बेघर वर्गों के लिए आश्रय के प्रावधान, आदि।

बेहतर सेवाओं की प्रस्तुति के लिए, कभी-कभी, सार्वजनिक सेवा प्रदाता या सार्वजनिक उद्यम उद्यमों के स्वामित्व और प्रबन्धन के सम्बन्ध में व्यक्तिगत हो जाते हैं। इसे 'निजीकरण' कहा जाता है। पूर्व अधिकांश वर्षों में सम्पूर्ण विश्व में विभिन्न सार्वजनिक सेवा प्रदाताओं के प्रचुर मात्रा में निजीकरण को देखा गया है। दुर्लभ स्थितियों में, व्यक्तिगत सेवा प्रदाता प्रकृति में सार्वजनिक हो सकते हैं। **ए०एच० हैनसन** के अनुसार, "सार्वजनिक उद्यमों का अर्थ है राज्य का स्वामित्व तथा औद्योगिक, कृषि, वित्तीय एवं वाणिज्यिक उपक्रमों का संचालन करना है।"

सार्वजनिक उपक्रम की विशेषताएँ
(Characteristics of Public Enterprise)

सार्वजनिक क्षेत्र की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. **राज्य का स्वामित्व**—सार्वजनिक क्षेत्रों का स्वामित्व और प्रबन्धन सरकार के नियंत्रण में होता है। उनका अधिकार राज्य, केन्द्र या स्थानीय सरकार के हाथों में हो सकता है, या राज्य के किसी भी विभाग के स्वामित्व में हो सकता है।
2. **राज्य नियंत्रण**—सार्वजनिक क्षेत्रों के कार्य को नियंत्रित करने का उत्तरदायित्व सरकार के नियंत्रण में है। विभिन्न एजेंसियाँ और तकनीकें ऐसे सरकारी स्वामित्व वाले उद्यमों के सम्बन्ध में प्रबंधन और नियंत्रण में शामिल हैं।
3. **जनता के प्रति उत्तरदायित्व**—सरकार जनता द्वारा लोकतांत्रिक प्रक्रिया के माध्यम से चयनित की जाती है। इसके कुछ अधिकार, उत्तरदायित्व और शक्तियाँ हैं जो प्रत्यक्ष रूप से व्यक्तियों एवं उनके प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी है। सरकारी

स्वामित्व वाले उद्यम सामान्यत: जनता से एकत्रित धन का उपयोग करते हैं (सामान्यत: बैंक बचत एवं निवेश के रूप में), और इसलिए, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, सरकार जनता की सेवा करने का उत्तरदायित्व रखती है। इस प्रकार के उत्तरदायित्व को पूरा करने में शामिल कुछ सरकारी निकायों में विधायिका तथा उसकी समितियाँ, लेखा परीक्षण संस्थान, विशेष एजेंसियाँ, मंत्रालय आदि शामिल हैं।

4. **स्वतन्त्र**—सार्वजनिक क्षेत्र कुछ परिस्थितियों में, स्वतंत्रता के उच्चतम स्तर के साथ संचालित होता है। यह अन्य निकायों से किसी भी हस्तक्षेप को शामिल किए बिना स्वतन्त्र रूप से स्वयं के सभी संचालन एवं प्रबन्धन का संचालन कर सकता है।
5. **आवृत्त क्षेत्र**—सार्वजनिक क्षेत्र का उपक्रम अनेकों प्रकार की गतिविधियों को शामिल करता है और इसमें अर्थव्यवस्था के लगभग सभी क्षेत्र शामिल होते हैं। ऐसे किसी भी क्षेत्र को खोजना जटिल है जो सार्वजनिक क्षेत्र के आवृत्त क्षेत्र में नहीं आता है।
6. **सेवाओं का प्रावधान**—सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का प्राथमिक उद्देश्य लाभ सृजन नहीं है, बल्कि सबसे सक्षम रूप से जनता को उत्पाद एवं सेवाएँ प्रदान करना है। सार्वजनिक क्षेत्र जनता को सेवाएँ प्रदान करने पर महत्व देता है जो उनके जीवन स्तर को सुधारने और बनाए रखने में सहायता करता है।
7. **संसाधनों का पुन: आवंटन**—निर्धारित लक्ष्यों, आर्थिक विकास और समाजीकरण के अनुसार निधि पुन: आवंटित की जाती है, अभी तक इस प्रकार के पुन: आवंटन का प्राथमिक लक्ष्य जनता को सेवाएँ प्रदान करना होता है।
8. **नीतियों का विकास**—एक सामान्य व्यवसाय के समान जो रणनीतिक योजना को स्वीकृत करता है, सार्वजनिक क्षेत्र का लक्ष्य या उद्देश्य वर्तमान या आगामी समस्याओं के समाधान के लिए नीतियों एवं दिशा-निर्देशों को विकसित करना होता है। इनमें से कुछ नीतियाँ, जैसे—राजकोषीय एवं मौद्रिक नीतियाँ तथा विदेशी मामले, अधिकांश सरकारी गतिविधियों के सेवा प्रावधान और/या संसाधनों के पुन: आवंटन अभिविन्यास को पार कर जाते हैं।
9. **गैर-विनिमय लेनदेन**—गैर-विनिमय व्यवहार सार्वजनिक उद्यमियों के अधिकार अधिकारियों तथा देनदारियों से उत्पन्न होते हैं (जैसे—जुर्माना, कर, कर्त्तव्य, दंड, शुल्क लाइसेंस शुल्क, नियामक शुल्क तथा सामाजिक लाभ आदि) विनिमय लेनदेन तथा दान के विपरीत ये व्यवहार गैर-विनिमय है और इसलिए, व्यक्ति अनिच्छा से उन्हें भुगतान करते हैं, अधिकांशत: सार्वजनिक क्षेत्र के राजस्व गैर-विनिमय योग्य लेनदेन के माध्यम से उत्पन्न होते हैं।

❑

UNIT-III

संयंत्र स्थान

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. व्यावसायिक इकाई के स्थानीयकरण का क्या अर्थ है?

उत्तर यदि किसी उद्योग की विभिन्न इकाइयाँ किसी क्षेत्र विशेष अथवा स्थान विशेष में केन्द्रित हो जाती है, तो यह उस उद्योग का स्थानीयकरण कहलाता है। **प्रो० राबर्टसन** के अनुसार, "विशिष्ट क्षेत्रों में कुछ विशिष्ट उद्योगों के आकर्षित होने, विकसित होने तथा केन्द्रित होने की प्रवृत्ति को उद्योगों के स्थानीयकरण के नाम से सम्बोधित किया जाता है।" **प्रो० पी० एस० लोकनाथन** के शब्दों में, "स्थानीयकरण से आशय विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग उद्योगों के केन्द्रीकरण से है, जिसे अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से क्षेत्रीय श्रम-विभाजन भी कहा जा सकता है।" इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि स्थानीयकरण उस क्षेत्र में होना चाहिए जहाँ उत्पादन एवं वितरण की प्रति इकाई लागत न्यूनतम हो; जहाँ उस वस्तु की अधिक-से-अधिक माँग हो जिससे कि अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके। इसी सन्दर्भ में **डॉ० टी०आर० शर्मा** का कथन है, "अवैज्ञानिक स्थानीयकरण राष्ट्र में उपलब्ध सधनों के दुरूपयोग को प्रोत्साहित करता है। ऐसी हालत में उद्योगपति को कम लाभ प्राप्त होते हैं, पूँजी विनियोक्ता को कम प्रतिफल मिलता है तथा उपभोक्ताओं को अधिक कीमत देनी होती है। आधुनिक औद्योगिक समुदाय जो दोषपूर्ण स्थानीयकरण के कारण पर्यात कष्ट झेल चुके हैं, अब अपने उद्योगों के क्षेत्रीय नियोजन की आवश्यकता अनभव करते हैं जिसका उद्देश्य उत्पादन एवं वितरण में अधिकतम कुशलता प्राप्त करने के साथ-साथ व्यापक आर्थिक, सामाजिक और सुरक्षात्मक आधार पर औद्योगिक क्रिया-कलापों का अनुकूलतम वितरण भी करता होता है।"

प्र.2. खण्डीय स्थानीयकरण एवं सह-स्थानीयकरण से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर **खण्डीय स्थानीयकरण—वेबर** ने एक उद्योग के एक से अधिक स्थानों पर स्थानीयकरण की सम्भावना पर भी विचार किया है। यही खण्डीय स्थानीयकरण कहलाता है। सरल शब्दों में यदि कोई उद्योग विशेष, किसी एक क्षेत्र में स्थानीयकृत होने के बजाय अनेक स्थानों पर स्थानीयकृत हो जाता है तो उसे खण्डीय स्थानीयकरण कहते हैं। ऐसा उस दशा में होता है जबकि उस उद्योग की भिन्न-भिन्न प्रक्रियाएँ अलग-अलग स्थानों पर स्वतन्त्र रूप से निष्पादित की जा सकती हों। यदि तकनीकी दृष्टि से किसी उद्योग की उत्पादन प्रक्रिया को दो या अधिक चरणों (stages) में विभक्त किया जा सकता है तो निश्चय ही खण्डीय स्थानीयकरण होगा। कागज उद्योग इसका सर्वोत्तम उदाहरण है जिसकी उत्पादन की प्रक्रिया दो परस्पर स्वतन्त्र उत्पादन की प्रक्रियाओं में विभक्त की जा सकती है। प्रक्रिया के प्रथम चरण में बाँस या लकड़ी से लुग्दी (pulp) तैयार की जाती है और यह कच्चे पदार्थ के निकट स्थापित की जाती है। प्रक्रिया के दूसरे चरण में लुग्दी से कागज बनाया जाता है जिसे निश्चित ही बाजार केन्द्रों के समीप स्थानीयकृत किया जा सकता है।

सह-स्थानीयकरण—वेबर ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि कुछ उद्योग ऐसे होते हैं जिनके मुख्य उत्पादन के पश्चात् बचे बेकार अथवा अवशिष्ट भाग को कुछ प्रक्रिया द्वारा विक्रय योग्य बनाया जा सकता है। ऐसी स्थिति में सह-उत्पादन की मितव्ययिताओं का लाभ उठाने के दृष्टिकोण से सहायक उद्योगों का स्थानीयकरण भी उसी क्षेत्र में होने लगता है। इस प्रकार के स्थानीयकरण को सह-स्थानीयकरण कहा जाता है। चीनी उद्योग इसका सर्वोत्तम उदाहरण है जिसमें शोरे से शराब बनाने के कारखाने भी वहीं पर केन्द्रित होने की प्रवृत्ति रखते हैं।

प्र.3. औद्योगिक स्थानीयकरण के किन्हीं दो भौगोलिक कारणों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर औद्योगिक स्थानीयकरण के दो प्रमुख भौगोलिक कारण निम्नलिखित हैं—

1. **कच्चे पदार्थों की सुलभता**—अल्फ्रेड वेबर ने अपने सिद्धान्त में इस कारण का अत्यन्त सम्यक विश्लेषण किया है। वेबर ने कच्चे पदाथों का वर्गीकरण करके यह निष्कर्ष निकाला कि कुछ पदार्थ सब स्थानों पर प्रचुरता से उपलब्ध हो जाते

हैं। इन्हें उसके वर्गीकरण में **सार्व प्राप्य पदार्थ** (ubiquitous materials) के नाम से सम्बोधित किया गया है। इनका स्थानीयकरण में कोई महत्व नहीं होता है। दूसरा वर्ग **स्थानीयकृत** कच्चे पदार्थों (localised raw materials) का है जिसके पुन: दो उप-वर्ग वेवर द्वारा किये गये—(अ) **शुद्ध कच्चे पदार्थ** (pure materials) तथा सकल या समग्र पदार्थ (gross materials)। **शुद्ध कच्चे पदार्थ** (pure materials) निर्माण की प्रक्रिया में **भार न खोने वाले** (non-weight losing) पदार्थ होते हैं जैसे—जूट, कपास, रेशम, ऊन, आदि। ये उद्योगों के स्थानीयकरण को अपनी ओर आवश्यक रूप से आकर्षित नहीं करते हैं, किन्तु सकल या समग्र पदार्थ (gross materials) **'भार खोने वाले'** (weight losing) पदार्थ होते हैं, जैसे—खनिज लोहा, कोयला, गन्ना, आदि। ये पदार्थ स्थानीयकरण को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। इसके लिए वेबर ने पदार्थ **निर्देशांक** (material index) का उपयोग किया है जिसका वर्णन पहले ही किया जा चुका है।

2. **स्थिति, जलवायु एवं अन्य सुविधाएँ**—अनेक प्राकृतिक दशाएँ औद्योगिक स्थानीयकरण को प्रोत्साहित अथवा हतोत्साहित करती हैं। उदाहरण के लिए, जापान तथा इंग्लैण्ड की अनुकूल स्थिति एवं उत्तम जलवायु उद्योगों के स्थानीयकरण में सहायक सिद्ध हुई। लंकाशायर तथा महाराष्ट्र और गुजरात के पश्चिमी भागों में नम जलवायू ने सूती वस्त्र उद्योग को प्रोत्साहन दिया है। धरातल की उपयुक्त बनावट, समुद्री तट के निकट स्थित (बन्दरगाह की सुविधाओं के कारण) तथा पर्याप्त जल-पूर्ति की सुविधाएँ भी औद्योगिक स्थानीयकरण को आकर्षित करती हैं।

प्र.4. वेबर तथा फ्लोरेन्स के औद्योगिक स्थान निर्धारण के सिद्धान्तों के बीच अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर **अल्फ्रेड वेबर** तथा **सार्जेण्ट** दोनों ने ही औद्योगिक स्थान निर्धारण के सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया है। दोनों सिद्धान्तों में पाये जाने वाले कुछ मुख्य अन्तर निम्नलिखित हैं—

1. वेबर का सिद्धान्त निगमन विधि (Deductive Method) पर आधारित है जबकि फ्लोरेन्स का सिद्धान्त आगमन विधि (Inductive Method) का अनुगमन करता है।
2. वेबर का सिद्धान्त वास्तविक क्रम पर सैद्धान्तिक अधिक है जबकि फ्लोरेन्स का सिद्धान्त वास्तविक एवं व्यापक है।
3. वेबर के सिद्धान्तों में औद्योगिक आविष्कारों तथा निरन्तर विकास की प्रवृत्ति की उपेक्षा की गयी है जबकि फ्लोरेन्स ने इन्हें पूर्णत: स्वीकार किया है।
4. वेबर ने सह-स्थानीयकरण तथा खण्डीय स्थानीयकरण का प्रयोग किया है, जबकि फ्लोरेन्स ने गुणांकों का प्रयोग किया है।
5. वेबर के सिद्धान्त में स्थानीयकरण से आशय भौगोलिक क्षेत्र एवं उद्योग के बीच सम्बन्ध से है जबकि फ्लोरेन्स के सिद्धान्त में स्थानीयकरण से आशय श्रमिकों और उद्योगों के बीच के सम्बन्ध से है।
6. वेबर का सिद्धान्त परिवर्तनों और गतिशीलता की उपेक्षा करता है जबकि फ्लोरेन्स ने स्थान निर्धारण पर इनके प्रभावों को स्वीकार किया है।

प्र.5. संयंत्र अभिन्यास की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर संयन्त्र अभिन्यास की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. संयन्त्र अभिन्यास एक नियोजन है जिसके द्वारा उपलब्ध स्थान का अनुकूलतम उपयोग किया जाता है।
2. इसके अन्तर्गत उत्पादन प्रक्रिया में काम में आने वाले यन्त्रों, उपकरणों तथा सेवाओं को सही स्थान पर स्थापित किया जाता है।
3. यह एक प्रक्रिया है जिसमें कच्चे माल की प्राप्ति से लेकर निर्मित माल के बाहर जाने तक के मार्ग का निर्धारण किया जाता है।
4. इसका मुख्य उद्देश्य न्यूनतम लागत पर उच्च किस्म का अधिकतम सम्भव उत्पादन प्राप्त करना है।
5. संयन्त्र अभिन्यास एक गतिशील एवं निरन्तर प्रक्रिया है।
6. यह किसी संयन्त्र के वास्तविक या भावी स्वरूप को प्रदर्शित करता है।
7. संयन्त्र अभिन्यास कारखाने के साधनों (भवन, यन्त्र, उपकरण, साज-सज्जा आदि) एवं उत्पादन क्रियाओं के मध्य सम्बन्धों के निर्धारण की प्रक्रिया है।

8. संयन्त्र अभिन्यास को किसी संयन्त्र में साधनों की व्यवस्था का दृश्य प्रस्तुतीकरण (Visual Presentation) भी कहा जाता है।
9. संयन्त्र अभिन्यास एक विवेकपूर्ण योजना एवं तकनीक है।
10. संयन्त्र अभिन्यास अनावश्यक क्रियाओं पर प्रभावी रोक लगाता है जिससे समय, श्रम एवं लागत आदि में मितव्ययिता होती है।

प्र.6. उत्पाद एवं क्रियात्मक अभिन्यास के बीच अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर उत्पाद एवं क्रियात्मक अभिन्यास में कुछ प्रमुख अन्तर निम्नलिखित हैं—

क्र० सं०	उत्पाद अभिन्यास	प्रक्रिया अभिन्यास
1.	एक या कुछ प्रमापित वस्तुओं का उत्पादन।	अनेक प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन तथा विशिष्ट आदेशों पर अधिक जोर।
2.	प्रत्येक वस्तु का बड़े पैमाने पर उत्पादन।	तुलनात्मक रूप से एक ही प्रकार की वस्तु का कम उत्पादन।
3.	मशीनों व यन्त्रों की स्थापना उत्पादन प्रक्रिया के क्रम में की जाती है।	मशीनों व यन्त्रों की स्थापना क्रियात्मक आधार पर होती है।
4.	इससे उत्पादन की समस्त क्रियाएँ निरन्तर प्रवाह के रूप में सम्पन्न की जाती हैं।	इस पद्धति में एक प्रकार की क्रियाएँ एक विशेष विभाग अथवा स्थान पर सम्पन्न की जाती हैं।
5.	एक मशीन का प्रयोग सामान्यत: एक ही कार्य के लिए किया जा सकता है।	एक ही मशीन का प्रयोग विभिन्न कार्यों के लिए किया जाता है।
6.	यह पद्धति सतत् प्रकृति वाले उद्योगों के लिए अधिक उपयुक्त है।	यह पद्धति खण्डित प्रकृति वाले उद्योगों के लिए अधिक उपयुक्त है।

प्र.7. व्यावसायिक इकाई शब्द का क्या अभिप्राय है?

उत्तर व्यावसायिक इकाई शब्द का प्रयोग प्राय: तीन स्तरों पर किया जाता है। ये तीन स्तर हैं—**प्लाण्ट-स्तर** (plant-level), **फर्म-स्तर** (firm-level) तथा **उद्योग-स्तर** (industry level)।

प्लाण्ट-स्तर—प्लाण्ट से आशय उस इकाई से है जो वस्तुत: वस्तुओं अथवा सेवाओं का उत्पादन करती है। इस कार्य में मशीनों, संयन्त्रों एवं उपकरणों के साथ उत्पादन में संलग्न श्रमिकों को भी सम्मिलित किया जाता है। उदाहरण के लिए, जूट मिल अथवा चीनी मिल, आदि।

फर्म-स्तर—इसका आशय स्वामित्व एवं संगठनात्मक इकाई से है जिसका कार्य प्लाण्ट के प्रबन्ध एवं नियन्त्रण तथा उत्पादित माल अथवा सेवा की बिक्री की व्यवस्था करना होता है। इसके अधीन एक से अधिक संयन्त्र अथवा प्लाण्ट हो सकते हैं। फर्म मुख्य रूप से एक नियन्त्रण करने वाली एवं प्रशासनिक इकाई होती है तथा अधिकांश दशाओं में स्वामित्व की इकाई भी यही होती है। इसे उपक्रम-स्तर (Enterprise-Level) भी कह सकते हैं।

उद्योग-स्तर—यहाँ उद्योग का आशय अनेक फर्मों के समूह से है। एक उद्योग इकाई के अन्तर्गत आने वाली फर्म समान प्रकार का कच्चा माल प्रयोग करके समान प्रकार की निर्मित वस्तुओं का उत्पादन करती है; जैसे—चीनी उद्योग, जूट उद्योग अथवा सूती वस्त्र उद्योग। किन्तु कुछ उद्योगों में समान प्रकार का कच्चा माल प्रयुक्त होता है और निर्मित वस्तुएं भिन्न-भिन्न प्रकार की बनती हैं। जैसे मशीन निर्माण उद्योग जिसमें कच्चा माल प्राय: लौह-इस्पात ही होता है, किन्तु मशीनें अलग-अलग प्रकार की निर्मित होती हैं। उपर्युक्त तीनों अर्थों में इकाई शब्द का प्रयोग किया जाता है, किन्तु जहाँ तक प्रस्तुत अध्ययन का प्रश्न है, औद्योगिक आकार के सन्दर्भ में इकाई के बोध के लिए फर्म स्तर (Firm Level) का ही अधिक तर्क संगत होता है।

प्र.8. साम्य फर्म किसे कहते हैं? साम्य फर्म की आलोचना किन बिन्दुओं के आधार पर की जाती है? बताइए।

उत्तर साम्य फर्म—मार्शल द्वारा प्रतिपादित प्रतिनिधि फर्म के विचार को अधिक स्पष्ट करते हुए **प्रो० पीगू** ने 'साम्य फर्म' का प्रतिपादन किया है। उनका विचार है कि यह सम्भव है कि पूरा उद्योग साम्य की दशा में हो परन्तु सभी फर्में साम्य की दशा में न हों अर्थात् सम्पूर्ण उद्योग में तो संकुचन व विस्तार न हो रहा हो परन्तु उद्योग के अन्तर्गत कुछ फर्मों का विस्तार हो रहा हो तथा कुछ में संकुचन। यह भी सम्भव है कि कोई ऐसी फर्म भी हो जिनमें न तो विस्तार हो रहा हो और न संकुचना ऐसी फर्म को 'साम्य फर्म' कहा जा सकता है।

साम्य फर्म की परिभाषा करते हुए **प्रो० पीगू** ने कहा है कि "इसका आशय यह है कि कोई ऐसी फर्म हो सकती है जो उस समय जबकि पूरा उद्योग साम्य की अवस्था में हो अर्थात् जबकि यह एक सामान्य कीमत 'प' के अन्तर्गत एक निश्चित पूर्ति की मात्रा 'स' का उत्पादन होता है, व्यक्तिगत रूप से यह स्वयं भी साम्य में हों और एक निश्चित मात्रा 'म' का उत्पादन करती हो।"

साम्य फर्म की आलोचना—इसकी आलोचनाएँ निम्न प्रकार हैं—

1. साम्य फर्म का विचार काल्पनिक एवं अव्यवहारिक है।
2. जिस प्रकार प्रो० मार्शल की प्रतिनिधि फर्म का अस्तित्व नहीं है उसी प्रकार प्रो० पीगू की साम्य फर्म का अस्तित्व भी मिलना कठिन है।
3. साम्य फर्म के आकार का निर्धारण कठिन है।
4. साम्य फर्म का विचार स्थायी आर्थिक दशाओं में ही सही सिद्ध हो सकता है लेकिन ये परिस्थितियाँ निरन्तर परिवर्तनशील होती हैं।

प्र.9. अनुकूलतम इकाई का अर्थ एवं परिभाषा लिखिए।

उत्तर अर्थ—सामान्य रूप से अनुकूलतम इकाई का तात्पर्य एक ऐसी इकाई से लिया जाता है, जिसकी उत्पादनशीलता अधिकतम तथा लागत कम हो।

परिभाषाएँ—डॉ० बीकम के अनुसार, "एक आदर्श संसार में सभी फर्मों का आकार उस सीमा तक बढ़ाना चाहिए जहाँ पर वे उत्पत्ति के साधनों का प्रभावपूर्ण एक मितव्ययी उपयोग कर रही हों अर्थात् सभी फर्मों को अनुकूलतम आकार तक बढ़ाया जाना चाहिए.....।" इस प्रकार यह स्पष्ट है कि **डॉ० बीकम** अनुकूलतम इकाई उस इकाई को मानते हैं जो उत्पत्ति के साधनों का सर्वोत्तम उपयोग मितव्ययितापूर्वक करती है।

प्रो० रॉबिन्सन के अनुसार, "अनुकूलतम फर्म से आशय ऐसी फर्म से है जिसमें तकनीकी तथा संगठन क्षमता की वर्तमान परिस्थितियों में दीर्घकाल में होने वाले व्ययों को सम्मिलित करके भी प्रति इकाई न्यूनतम औसत उत्पादन लागत आती है।"

वास्तव में अनुकूलतम आकार वही होगा जिसमें उत्पादन के साधनों का आदर्श समन्वय हो। अर्थात् अनुकूलतम इकाई वह है जिसमें उत्पादन के विभिन्न साधनों का समन्वय इस प्रकार किया जाता है कि न्यूनतम लागत पर अधिकतम कुशलता के साथ उत्पादन किया जा सके।

प्र.10. प्रतिनिधि फर्म किसे कहते हैं? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर प्रतिनिधि फर्म—अनुकूलतम इकाई के विचार को और अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए **प्रो० मार्शल** द्वारा प्रतिपादित प्रतिनिधि फर्म का अर्थ जानना आवश्यक है।

प्रो० मार्शल के अनुसार, "प्रतिनिधि फर्म वह है जिसकी आयु पर्याप्त लम्बी रही हो और जिसे पर्याप्त सफलता मिल चुकी हो, जिसका प्रबन्ध सामान्य निपुणता से किया जाता है तथा जिसे सामूहिक उत्पत्ति की आन्तरिक तथा बाह्य बचतें सामान्य रूप से मिल रही हों, जबकि उत्पादित वस्तुओं की किस्म, उनके विक्रय की दशाओं तथा आर्थिक वातावरण को ध्यान में रखा गया हो।"

प्रतिनिधि फर्म का विचार प्रतिपादित करते समय प्रो० मार्शल ने एक जंगल की कल्पना की थी। उनके मतानुसार, जिस प्रकार किसी जंगल में तीन प्रकार के वृक्ष मिलते हैं—(i) नवजात पौधे, (ii) पुराने या वृद्ध वृक्ष तथा (iii) विकसित वृक्ष, ठीक उसी प्रकार उद्योग में भी तीन प्रकार की फर्में मिलती हैं—

(अ) नयी फर्में—जो हाल में ही प्रारम्भ हुई हैं अर्थात् जो अभी शिशु अवस्था में हैं तथा जिनका विकास होना शेष है।

(ब) पुरानी फर्में—जो बहुत पुरानी हो गई हैं तथा जो अपनी कुशलता एवं कार्य क्षमता खो चुकी हैं, तथा

(स) युवा फर्में—जो पर्याप्त समय से सफलतापूर्वक चल रही हैं और जिन्हें आन्तरिक व बाह्य बचतों का पूरा लाभ मिल रहा है। ऐसी फर्में भी तीन प्रकार की होती हैं—

(i) कम कार्यक्षमता वाली फर्में,
(ii) विशेष कार्यक्षमता वाली फर्में तथा
(iii) सामान्य कार्यक्षमता वाली फर्में।

प्रो० मार्शल के अनुसार सामान्य कार्य क्षमता वाली फर्म ही प्रतिनिधि फर्म होती है क्योंकि यह सभी दृष्टिकोणों से औसत फर्म होती है।

TOUCH 'n PASS

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. संयंत्र स्थान के अर्थ को समझाते हुए इसे परिभाषित कीजिए। संयंत्र स्थान की प्रकृति का भी उल्लेख कीजिए।

उत्तर

संयंत्र स्थान का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definition of Plant Location)

सुविधा एक भवन, कारखाना, स्थान या क्षेत्र है जहाँ वस्तुओं का निर्णण किया जाता है। सुविधा/संयंत्र स्थान का अर्थ एक संयंत्र की स्थापना हेतु एक आदर्श स्थान का चयन करना। इस प्रकार संयंत्र का स्थान भौतिक स्थान है, जहाँ कम्पनी का संयंत्र स्थित होता है। एक उद्यमी, एक संयंत्र स्थापित करने की प्रक्रिया में एक बड़ी समस्या का सामना करता है और इसे शीघ्र ही हल करने की आवश्यकता होती है। संयंत्र के स्थान का निर्णय निर्बाध कच्ची सामग्री और श्रम की उपलब्धता, उत्पादन क्षमता का कुशल उपयोग, संयंत्र अभिन्यास तथा उत्पादन की लागत पर निर्भर करता है। इन सभी कारकों को ध्यान में रखते हुए और संयंत्र की स्थापना परियोजना सफलता की गारण्टी नहीं देती है। वहीं कुशल प्रबंधन द्वारा भी समर्तित होने की आवश्यकता है। हालांकि, यदि स्थान ही खराब है तो प्रबन्धन के पास भी कोई विकल्प नहीं होता है। इसलिए यह सुनिश्चित करने हेतु उचित निगरानी की आवश्यकता है कि संयंत्र के लिए उचित स्थान का चयन किया जाए।

प्रो० आर०सी० डेविस के अनुसार, "यह निर्धारित करने का कार्य कि संयंत्र को अधिकतम परिचालन अर्थव्यवस्था और प्रभावशीलता के लिए कहाँ स्थित होना चाहिए।"

बैथेल स्मिथ और अलवाटर के अनुसार, "सुविधा स्थान से आशय उस स्थान से है जहाँ सम्पूर्णत: व्यवसाय को ध्यान में रखते हुए सभी उपभोक्ताओं को उत्पादन और वस्तुएँ पहुँचाने की कुल लागत से सबसे कम है।"

संयंत्र स्थान की प्रकृति
(Nature of Plant Location)

कारखाना के स्थान की प्रकृति निम्नलिखित हैं—

1. व्यवसाय की सफलता संयंत्र के उपयुक्त स्थान पर निर्भर करती है। इससे पहले, संयंत्र के स्थान के सम्बन्ध में निर्णय लेना महत्त्वपूर्ण नहीं था और यह पूर्णत: व्यवसाय के स्वामी की प्राथमिकता और समाज में प्रचलित प्रथाओं पर निर्भर करता था। संयंत्र के स्थान के सम्बन्ध में लिए गए गलत निर्णयों के कारण इनमें विभिन्न संगठन असफल हो गए। यदि उचित देखभाल की गई होती तो यह सम्भव हो सकता था कि उन्हें सफलता प्राप्त हो सकती थी।
2. सरकार देश में समग्र विकास करने हेतु विभिन्न निर्णय ले रही हैं। औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित करने के लिए इसमें उन उद्योगपतियों को सब्सिडी, कर छुट तथा विभिन्न प्रकार की अन्य सहायता प्रदान की जाती है, जिनके कारखाने अविकसित क्षेत्रों में स्थित हैं या जो सरकार द्वारा निर्धारित विशिष्ट क्षेत्रों में स्थित हैं, किए गए है।
3. व्यवसाय की प्रकृति संयंत्र स्थान का चयन करने में अन्य महत्त्वपूर्ण निर्धारक है, जबकि विभिन्न मामलों में एक उपयुक्त स्थान का चयन करने हेतु उत्पाद की प्रकृति पर भी विचार किया जाता है। उदाहरण के लिए—अकुशल कार्यबल की आवश्यकता वाले संगठन अल्पविकसित क्षेत्र में अपने संयंत्र को स्थापित कर सकते हैं और कुशल कार्यबल की आवश्यकता वाले संगठन महानगरीय क्षेत्र में अपने संयंत्रों को स्थापित कर सकते हैं।
4. व्यवसाय का आकार संयंत्र स्थान का चयन करने में अन्य महत्त्वपूर्ण निर्धारक होता है। अल्प लागत उद्योगों में, उत्पाद की माँग के आधार पर संयंत्र का स्थान निर्धारित किया जाता है और आवश्यकता पड़ने पर यह दूसरे स्थान पर जा सकता है। परन्तु बड़े पैमाने के उद्योग के लिए संयंत्र दूसरे स्थान पर स्थानांतरित करना सम्भव नहीं है, क्योंकि यह महँगी प्रक्रिया है। बड़े स्तर के उद्योगों के लिए संयंत्र लगाने का निर्णय उचित सावधानी के साथ लिया जाना चाहिए।

प्र.2. संयंत्र स्थान के महत्त्व बताइए।

उत्तर

संयंत्र स्थान का महत्त्व
(Importance of Plant Location)

एक संयंत्र स्थान का चयन करना एक रणनीतिक निर्णय है जो एक संगठन द्वारा किया जाता है। सुविधा स्थान को निर्धारित करते समय विभिन्न घटकों को ध्यान में रखना चाहिए—

1. **प्रतिस्पर्धा का सामना करना**—प्रतिस्पर्धात्मक पहलू को ध्यान में रखते हुए संयंत्र के स्थान के बारें में निर्णय भी एक महत्त्व रखता है। इस उद्देश्य के लिए, स्थान जो परिवहन लागत में कमी लाता है, श्रम लागत को कम करता है और अर्थव्यवस्था को बड़े स्तर पर ले जाने में सहायता करता है, को प्राथमिकता दी जाती है।
2. **ग्राहकों को बेहतर सेवा**—संयंत्र का स्थान भी ग्राहकों को समय पर और निर्बाध सेवा प्रदान करने की कम्पनी की क्षमता से प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए—एक परिवहन कम्पनी का स्थान सामग्री की निधि आपूर्ति प्रदान करने के लिए मुख्य शहर से सम्पर्क लाइनों के साथ राजमार्ग के निकट होना चाहिए।
3. **बाजार के निकट स्थान का निर्धारण**—संयंत्र का स्थान बाजार के आकार और संरचना पर भी निर्भर करता है। एक लघु संगठन जहाँ भूमि और पूँजी के संदर्भ में आवश्यकता कम होती है वहाँ बाजार के निकट स्थान को प्राथमिकता दी जाती है। इसके विपरीत बड़ी कम्पनियाँ अपने परिचालन को मूल रूप से शहर के बाहरी भाग में स्थापित करती हैं।
4. **उत्पादन तकनीक एवं लागत संरचनाओं का निर्धारण**—स्थान को अन्तिम रूप देने के पश्चात उत्पादन तकनीक और लागत संरचनाओं से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान किया जाता है। उदाहरण के लिए- यदि कार्यस्थल अविकसित अर्थव्यवस्था में स्थापित है तो परियोजना का श्रम प्रधान होना अनिवार्य है तथा अधिकांश प्रक्रियाओं को हाथ से निष्पादित किया जाता है तथा इससे सम्बन्धित लागत भी न्यूनतम होती है।
5. **सर्वश्रेष्ठ स्थान का चयन**—स्थान के लिए विभिन्न विकल्पों पर विचार करने के पश्चात् न्यूनतम लागत पर अधिकतम सुविधाओं के साथ प्राप्त होने वाले भौगोलिक स्थान का चयन किया जाता है। उत्पादकता, लागत, ग्राहक सेवा और अन्य विभिन्न मुद्दों पर बल दिया जाता है। यदि स्थान के चयन में त्रुटि होती है तो इसके परिणामस्वरूप स्थान को बंद या स्थानांतरित कर दिया जाता है। वास्तव में ऐसे विभिन्न कारक हैं जो संयंत्र के स्थान के सम्बन्ध में निर्णय को प्रभावित करते हैं। व्यापक विश्लेषण राष्ट्रीय, राज्य या अन्तर्राष्ट्रीय परिचालन के लिए स्थान का चयन करने हेतु किया जाता है। उदाहरण के लिए—यदि स्थान विदेश में स्थापित किया जाना है तो विनिमय दर, राजनीतिक स्थिरता, कर संरचना, व्यवसाय संरक्षण तथा वातावरण जैसे कारक प्रमुख हैं। यदि स्थान का क्षेत्र केवल एक समुदाय तक सीमित है तो स्थानीय कर एवं प्रशासन, सामुदायिक कारक, स्थानीय कानून और नियम जैसे कारक एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

प्र.3. वेबर के सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

वेबर के सिद्धान्त की आलोचनाएँ
(Criticism of Weber's Principle)

यद्यपि वेबर ने औद्योगिक स्थानीयकरण के सिद्धान्त में उस समय की परिस्थितियों के अनुसार स्थानीयकरण से सम्बन्धित मौलिक, वैज्ञानिक एवं सुव्यवस्थित विवेचन प्रस्तुत किया है, परन्तु समय एवं परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ-साथ इस सिद्धान्त में अनेक कमियाँ अनुभव की गयीं, जिससे **सार्जेण्ट फ्लोरेन्स** तथा **रॉबिन्सन** आदि विद्वानों ने इसकी कटु आलोचना की है। इस सिद्धान्त की मुख्य आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं—

1. **परिवहन लागत का दोषपूर्ण विश्लेषण**—वेबर ने परिवहन लागत का विश्लेषण भी ठीक प्रकार नहीं किया है। उन्होंने परिवहन लागत में परिवहन होने वाले भार तथा परिवहन की दूरी को ही मान्यता दी है, जबकि परिवहन लागत के निर्धारण में अन्य तत्त्व, जैसे परिवहन की जाने वाली वस्तु की प्रकृति, सड़क की बनावट आदि का भी प्रभाव पड़ता है जिन्हें ध्यान में नहीं रखा गया।
2. **श्रम सम्बन्धी मान्यताएँ गलत हैं**—वेबर ने श्रम के सम्बन्ध में दो मान्यताएँ स्थापित की हैं—(i) स्थायी श्रम केन्द्रों का अस्तित्व, तथा (ii) प्रत्येक श्रम केन्द्र में असीमित मात्रा में श्रमिकों की उपलब्धि। ये दोनों मान्यताएँ असत्य तथा भ्रामक हैं।
3. **कच्चे पदार्थों का कृत्रिम विभाजन**—वेबर ने औद्योगिक स्थानीयकरण के सिद्धान्त की व्याख्या करते समय पदार्थों का जो दो वर्गों में विभाजन किया है (अर्थात् सर्वप्राप्य एवं स्थानीय पदार्थ), वह कृत्रिम एवं अप्राकृतिक प्रतीत होता है।
4. **स्थानीयकरण के प्रमुख कारणों की उपेक्षा**—वेबर ने अपने सिद्धान्त में परिवहन एवं श्रम-लागत को ही स्थानीयकरण का प्रमुख कारण माना तथा स्थानीयकरण को प्रभावित करने वाले अन्य घटक जैसे—पूँजी, जलवायु, साख-सुविधाएँ आदि की उपेक्षा की है जो कि स्थानीयकरण को प्रभावित करने वाले महत्त्वपूर्ण घटक हैं।
5. **बहुत ही तकनीकी विश्लेषण**—वेबर का सिद्धान्त एक अत्यधिक तकनीकी विश्लेषण पर आधारित है, अतः वह सामान्य व्यक्ति की समझ से परे है। इस कठिनाई का प्रमुख कारण यह है कि वेबर ने अपने सिद्धान्त की व्याख्या करते समय अनेक गुणांकों का प्रयोग किया है। परिणामतः उनका सिद्धान्त बहुत गणितीय हो गया है।

6. **उपभोग के केन्द्रों में परिवर्तन की आशंका**—वेबर की यह महत्त्वपूर्ण मान्यता रही है कि उपभोग के केन्द्र निश्चित होते हैं, परन्तु अनुभव यह बताता है कि उपभोक्तागण प्राय: देश में विकेन्द्रित हैं तथा समय-समय पर उपभोग के केन्द्रों में परिवर्तन भी होता रहता है।
7. **ऐतिहासिक और सामाजिक कारणों की उपेक्षा**—उद्योग-धन्धों का स्थानीयकरण केवल आर्थिक और निश्चित कारणों से निर्धारित नहीं होता वरन् ऐतिहासिक और सामाजिक कारण भी उसे प्रभावित करते हैं। किन्तु, वेबर ने इन कारणों का कोई संकेत नहीं किया है।
8. **वस्तुस्थिति पर पूर्ण प्रकाश नहीं**—वेबर ने अपनी व्याख्या में गुणक (Multiplier) व निर्देशांकों (Index Numbers) का प्रयोग किया है। इससे एक शुद्ध सिद्धान्त की रचना तो अवश्य हो गयी है, लेकिन वह वास्तविक बात पर पूर्ण प्रकाश नहीं डाल सका है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त आक्षेपों एवं आलोचनाओं में यद्यपि पर्याप्त सार है, फिर भी अल्फ्रेड वेबर को इस बात का श्रेय दिया जाना चाहिए कि उन्होंने विश्व को सर्वप्रथम स्थानीयकरण का एक वैज्ञानिक सिद्धान्त दिया। इससे पहले इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों द्वारा कोई विशेष प्रयास नहीं किये गये थे। वेबर के सिद्धान्त के बाद औद्योगिक स्थानीयकरण की ओर लोगों का ध्यान गया और इस दशा में कुछ नये सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये।

प्र.4. सार्जेण्ट फ्लोरेन्स के सिद्धान्त की आलोचना किन आधारों पर की गई है? बताइए।

उत्तर विभिन्न विद्वानों ने निम्नलिखित आधारों पर फ्लोरेन्स के सिद्धान्त की आलोचना की है—

1. **स्थानीयकरण के कारकों की अज्ञानता**—सिद्धान्त के अध्ययन से यह तो विदित हो जाता है कि देश में उद्योगों के वितरण की वर्तमान दशा क्या है, परन्तु इससे यह ज्ञात नहीं होता कि स्थानीयकरण के प्रमुख घटक कौन-कौन से हैं।
2. **केवल श्रमिक संख्या पर आधारित**—यह सिद्धान्त स्थानीयकरण की प्रवृत्ति का अध्ययन करने के लिए श्रमिकों की संख्या को ही आधार के रूप में प्रयोग करता है तथा उनकी कुशलता और उत्पादन की मात्रा में कोई सम्बन्ध नहीं रखता। अत: दो अलग-अलग क्षेत्रों में समान मात्रा में लगे श्रमिक अलग-अलग मात्रा में उत्पादन करते हैं तो इस सिद्धान्त के द्वारा निकाले गये निष्कर्ष गलत सिद्ध होंगे।
3. **विभिन्न दशा में स्थानीयकरण की भिन्नता**—स्थानीयकरण गुणक प्रत्येक देश के औद्योगिक वितरण के स्वरूप पर निर्भर करता है जो कि सम्बन्धित परिस्थितियों में भिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न हो सकता है। अत: गुणक के आधार पर औद्योगिक स्थानीयकरण की प्रवृत्ति का अध्ययन एक कठिन समस्या है।
4. **जटिलता**—इस सिद्धान्त में गुणकों का विवेचन बड़ा कठिन है जिसको समझना एवं प्रयोग करना साधारण बुद्धि से परे की बात है।

यद्यपि फ्लोरेन्स के औद्योगिक स्थानीयकरण के सिद्धान्त की कटु आलोचना की गई है, परन्तु यदि इस सिद्धान्त को सही तरीके से अपनाया जाये तो इसके द्वारा किसी देश में औद्योगिक स्थानीयकरण की स्थिति का ठीक-ठीक अन्दाजा लगाया जा सकता है।

दोनों सिद्धान्तों में समन्वय की आवश्यकता—अन्त में यह कहना उचित होगा कि अल्फ्रेड वेबर तथा सार्जेण्ट फ्लोरेन्स का औद्योगिक स्थानीयकरण के साहित्य में सबसे अधिक योगदान रहा है। अनेक कमियों एवं विद्वानों द्वारा इनके बारे में की गई आलोचनाओं के बावजूद इन दोनों सिद्धान्तों का महत्त्व कम नहीं हुआ है। ये दोनों सिद्धान्त एक-दूसरे के विरोधी न होकर परस्पर पूरक हैं और औद्योगिक स्थानीयकरण की समस्याओं के अध्ययन एवं विश्लेषण के लिए इन दोनों सिद्धान्तों को साथ-साथ अपनाया जाना चाहिए।

प्र.5. संयंत्र अभिन्यास के महत्त्व को बताइए।

उत्तर

संयंत्र अभिन्यास का महत्त्व
(Importance of Plant Layout)

संयंत्र अभिन्यास के महत्त्व निम्नलिखित हैं—

1. **संचालन का क्रम**—अभिन्यास का प्रारूप संचालन के अनुक्रम को निर्दिष्ट करता है तथा संचालन का यह क्रम मशीनों, उपकरणों तथा उपकरणों की नियुक्ति के लिए स्थान की आवश्यकता के बारे एक विचार प्राप्त करने में सहायता करता है। क्योंकि अभिन्यास मशीनों एवं विभागों की व्यवस्था से सम्बन्धित है, यह एक दिशा प्रदान करता है जिसमें सामग्री को

अन्तिम उत्पाद में परिवर्तित करने के लिए अग्रिम बढ़ना पड़ता है। एक उत्पादन प्रक्रिया में विभिन्न उप-प्रक्रियाएं शामिल होती हैं तथा प्रत्येक उप-प्रक्रिया मशीनरी द्वारा समर्थित होती है। इन मशीनरी की व्यवस्था इस प्रकार से होनी चाहिए कि सामग्री बिना किसी देरी से प्रत्येक उप-प्रक्रिया से सुचारु रूप से चल सके है।

2. **लचीलापन**—अभिन्यास का प्रारूप ऐसा होना चाहिए कि भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर इसे परिवर्तित परिवेश के साथ सरलता से परिवर्तित किया जा सकता है। व्यवसाय को सरलता से चलाने के लिए लचीलापन एक महत्त्वपूर्ण कारक है। एक लचीला अभिन्यास कम से कम जटिलता के साथ व्यवयास की विस्तार आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायक होता है तथा यह तकनीकी सुधार सुनिश्चित करता है। उदाहरण के लिए—मोटर वाहन उद्योग में उत्पाद के मॉडल परिवर्तित होते रहते हैं तथा यदि अभिन्यास लचीला है, तो यह न्यूनतम लागत तथा कम से कम जटिलताओं के साथ परिवर्तनों को सरलता से अनुकूलित कर सकता है।
3. **निविष्टियों का अनुकूलतम उपयोग**—प्रबन्धकों/पर्यवेक्षकों का पर्यवेक्षण कार्य एक उचित रूप से प्रारूपित किए गए अभिन्यास के अन्तर्गत सुचारु एवं विचारधारा मुक्त हो जाता है। एक कुशल अभिन्यास जनशक्ति सहित विभिन्न इनपुट अनुकूलतम का उपयोग सुनिश्चित करता है।
4. **संतुलन**—विनिर्माण व्यवसाय में उत्पाद का उत्पादन करने के लिए विभिन्न प्रक्रियाएँ तथा मशीनें शामिल होती हैं। अभिन्यास इन मशीनों को कुशलतापूर्वक व्यवस्थित करने के लिए होता है, जिससे प्रत्येक प्रक्रिया के मध्य उचित संतुलन बना रहे। एक प्रभावी अभिन्यास संगठन को समय, लागत एवं ऊर्जा बचाने में सहायता करता है। एक मशीन का आउटपुट दूसरी मशीनरी के इनपुट के रूप में कार्य करता है, इसलिए प्रत्येक प्रक्रिया के मध्य सन्तुलन बनाए रखना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता है। सामग्री एवं श्रम की आवागमन में लगने वाले समय एवं लागत को कम से कम किया जाना चाहिए, जिससे उनका उपयोग कहीं और किया जा सकता है।
5. **उत्पादकता एवं मानसिक शक्ति**—इस प्रक्रिया में बेहतर प्रारूपित किए गए अभिन्यास के माध्यम से प्राप्त उच्च उत्पादकता के परिणामस्वरूप कर्मचारियों एवं श्रमिकों द्वारा अर्जित प्रोत्साहन में वृद्धि होती है। यह उनके मनोबल में भी सुधार करता है तथा उन्हें बेहतर प्रदर्शन करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है जिससे उत्पादकता में और सुधार होता है। इस प्रकार, एक उत्तम आवर्तन की रचना की जाती है जो पूरे संगठन के लिए उपयुक्त होता है।

प्र.6. कुशल संयंत्र अभिन्यास के प्रमुख लाभों का वर्णन कीजिए।

उत्तर

कुशल संयन्त्र अभिन्यास के लाभ
(Advantages of Efficient Plant Layout)

कुशल संयन्त्र अभिन्यास के द्वारा ही न्यूनतम लागत पर अधिकतम एवं श्रेष्ठतम उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। कुशल संयन्त्र अभिन्यास से न केवल उत्पादक ही लाभान्वित होते हैं, वरन् श्रमिकों एवं उपभोक्ताओं को भी अनेक लाभ होते हैं। वस्तुत: संयन्त्र अभिन्यास की उचित संरचना श्रमिकों, निर्माताओं तथा उपभोक्ताओं सभी के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है। संक्षेप में, एक कुशल संयन्त्र अभिन्यास के लाभों का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

I. निर्माताओं को लाभ (Advantages of the Producers)

इससे निर्माताओं को निम्नांकित लाभ होते हैं—

1. न्यूनतम लागत पर श्रेष्ठतम एवं अधिकतम उत्पादन।
2. चल एवं अचल सम्पत्तियों का अधिकतम उपयोग।
3. पूँजीगत विनियोग में कमी।
4. निरीक्षण एवं नियन्त्रण में सुविधा।
5. श्रम-पूँजी सम्बन्धों में सुधार।
6. संयन्त्र के विस्तार व तकनीकी परिवर्तनों की दशा में सुविधापूर्वक समायोजन।

II. श्रमिकों को लाभ (Advantages to Workers)

कुशल संयन्त्र अभिन्यास श्रमिकों को निम्न ढंग से लाभान्वित करता है—

1. काम की दशाओं में सुधार हो जाने से कर्मचारियों का मनोबल ऊँचा होता है, जिससे वे रुचि से काम करते हैं।

2. श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि हो जाती है, क्योंकि उन्हें काम करने के लिए उपयुक्त वातावरण मिलता है।
3. औद्योगिक दुर्घटनाओं में कमी हो जाती है।
4. श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि होने से उनकी मजदूरी भी बढ़ जाती है तथा उन्हें अधिक काम करने के लिए प्रेरणा मिलती है।

III. उपभोक्ताओं को लाभ (Advantages to Consumers)

इससे उपभोक्ता को निम्नांकित लाभ होते हैं—

1. उपभोक्ताओं को पर्याप्त मात्रा में वस्तुएँ उपलब्ध होने लगती हैं।
2. उन्हें अच्छी किस्म की वस्तुएँ उपलब्ध होने लगती हैं।
3. उन्हें सस्ती वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं।
4. उन्हें माल की सुपुर्दगी समय पर हो जाती है।

प्र.7. संयंत्र अभिन्यास की कार्यविधि को समझाइए।

उत्तर

संयन्त्र अभिन्यास की कार्यविधि
(Procedure for Plant Layout)

प्रत्येक औद्योगिक इकाई की परिस्थितियाँ तथा आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। अत: संयन्त्र अभिन्यास की योजना बनाने में सम्बन्धित इकाई की परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं को ध्यान में रखना आवश्यक है। किसी दूसरी इकाई की अभिन्यास विधि का ज्यों-का-त्यों प्रयोग खतरनाक सिद्ध हो सकता है। क्योंकि हो सकता है कि दूसरी इकाई को परिस्थितियाँ तथा आवश्यकताएँ सम्बन्धित इकाई की परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं से भिन्न हों। वस्तुत: संयन्त्र अभिन्यास की विधि रेडीमेड के स्थान पर टेलरमेड होनी चाहिए। संक्षेप में, एक नए अभिन्यास की स्थिति में निम्नलिखित विधि का प्रयोग हो सकता है—

1. **उद्देश्यों का निर्धारण तथा आवश्यक जानकारी का संकलन**—संयन्त्र अभिन्यास उत्पादन कार्यों का आधार एवं पथ-प्रदर्शक होता है तथा इसके ऊपर ही निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति निर्भर करती है। अत: अभिन्यास के लक्ष्यों का निर्धारण आवश्यक है। उद्देश्यों के निर्धारण के पश्चात् उत्पादन विषयक आधारभूत समंकों को एकत्रित करके उत्पाद के निर्माण की प्रमाणित विधि तथा उसके लिए आवश्यक यन्त्रों व उपकरणों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। ये सूचनाएँ सम्बन्धित विभागों एवं अधिकारियों से प्राप्त की जा सकती हैं।
2. **समंकों का विश्लेषण एवं समन्वय**—आवश्यक समंकों का संकलन हो जाने के पश्चात् उनका विस्तृत विश्लेषण कर उनमें समन्वय स्थापित किया जाता है ताकि कार्य-स्थल, उत्पादन विधि, संयन्त्रों एवं उपकरणों की मात्रा, आकार तथा क्षमता, प्रयोग की जाने वाली सामग्री तथा भण्डारागार के स्थान आदि के सम्बन्ध में विभिन्न निर्णय कुशलतापूर्वक लिए जा सकें।
3. **अभिन्यास योजना का निर्धारण**—प्राप्त सूचनाओं एवं समंकों के विस्तृत विश्लेषण के आधार पर यह निर्धारित किया जाना चाहिए कि अभिन्यास की कौन-सी योजना का प्रयोग किया जायेगा अर्थात् उत्पाद अभिन्यास, प्रविधि अभिन्यास, मिश्रित अभिन्यास एवं स्थिर अभिन्यास में से किसका प्रयोग किया जायेगा।
4. **कार्य-स्थल एवं भवन का डिजायन**—कार्य-स्थल की व्यवस्था इस प्रकार की जानी चाहिए ताकि सामग्री, श्रम, मशीनों तथा उपकरणों का सर्वश्रेष्ठ प्रयोग किया जा सके। भवन में कार्यालय, भण्डार तथा सहायक सेवाओं आदि के लिए भी स्थान की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए।
5. **तकनीक का विकास**—इसके उपरान्त अभिन्यास के लिए विधि चार्ट (Process chart), आदि में से अनुकूल तकनीक को विकसित किया जाता है। इनके माध्यम से भावी वास्तविक अभिन्यास की कठिनाइयों को आसानी से समझा जा सकता है तथा सुधार हेतु कार्यवाही की जा सकती है।
6. **सम्बन्धित व्यक्तियों को आवश्यक जानकारी**—अभिन्यास के सम्बन्ध में सभी सम्बन्धित व्यक्तियों को आवश्यक जानकारी एवं सूचनाएँ प्रदान की जानी चाहिए ताकि वे भी इस योजना की सफलता में अपना योगदान दे सकें।
7. **वित्त-व्यवस्था**—संयन्त्र अभिन्यास की योजना पर आने वाली लागत का अनुमान लगाकर वित्त की व्यवस्था भी समयानुसार कर लेनी चाहिए।

प्र.8. किसी व्यावसायिक इकाई के आकार को प्रभावित करने वाले तत्त्व कौन-से हैं? विवेचनात्मक समीक्षा कीजिए।

उत्तर

व्यावसायिक इकाई के आकार को निर्धारित करने वाले तत्त्व अथवा प्रवृत्तियाँ
(Factors Determining the Size of a Business Unit)

व्यावसायिक इकाई के आकार को निर्धारित करने में पूर्णत: प्रबन्धकों या स्वामियों का ही हाथ नहीं होता बल्कि कुछ अन्य आर्थिक तथा अनार्थिक घटक भी व्यावसायिक इकाई के आकार को प्रभावित करते हैं। कुछ प्रमुख तत्त्व निम्नलिखित प्रकार हैं—

1. **जोखिम**—बिना जोखिम के व्यवसाय नहीं होता लेकिन सभी व्यवसायों में जोखिम की मात्रा अलग-अलग होती है। जिन व्यवसायों में जोखिम की मात्रा अधिक होती है उनकी स्थापना प्राय: बड़े आकार में की जाती है क्योंकि छोटे आकार की इकाइयों में जोखिम सहन करने की क्षमता कम होती है।
2. **वित्त की मात्रा**—यदि इकाई के संचालन के लिए भारी मात्रा में पूँजी की आवश्यकता होती है तो वह इकाई बड़े पैमाने पर स्थापित की जायेगी ताकि वित्तीय साधनों का अधिकतम उपयोग किया जा सके।
3. **उत्पादन की प्रकृति**—जिन वस्तुओं की माँग स्थानीय होती है या जो नाशवान प्रकृति की होती हैं उनका निर्माण करने वाली इकाइयों का आकार छोटा होता है जैसे बरफ उद्योग। इसके विपरीत जिन उत्पादों की माँग राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होती है या टिकाऊ प्रकृति के होते हैं उनकी इकाइयों का आकार अपेक्षाकृत बड़ा होता है।
4. **तकनीकी ज्ञान की मात्रा**—जिन उद्योगों में अधिक तथा उच्च कोटि के तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होती है उन इकाइयों का आकार सामान्यत: बड़ा होता है क्योंकि छोटे पैमाने की इकाइयाँ उच्च कोटि के तथा भारी मात्रा में तकनीकी ज्ञान का प्रयोग करने में आने वाली लागतों को सहन नहीं कर पाती। अत: जिस उद्योग में जितने अधिक तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होगी, उसका आकार उतना ही बड़ा होगा।
5. **व्यवसाय की विशेषताएँ**—कुछ इकाइयाँ अपनी विशेषताओं के कारण बड़े पैमाने पर स्थापित ही नहीं की जा सकती जैसे वकालत का पेशा, कुटीर उद्योग आदि।
6. **स्थानीयकरण**—यदि इकाई को स्थानीयकरण की सुविधाएँ प्राप्त हो जाती हैं या स्थापना सरल है तो निश्चित ही इकाई का आकार बड़ा होता है क्योंकि इन सुविधाओं के कारण लागतें कम आती हैं।
7. **साहसी की योग्यता**—साहसी की योग्यता एवं उसकी कार्यक्षमता भी व्यावसायिक इकाई के आकार को प्रभावित करती है। प्राय: यह देखा जाता है कि योग्य एवं मेहनती साहसियों द्वारा संचालित इकाइयाँ बड़े आकार की होती हैं।
8. **एकीकरण**—यदि विभिन्न संयन्त्रों के मध्य एकीकरण की योजन लागू की जाती है तो सामान्यत: इकाई का आकार बड़ा होगा इसके विपरीत इकाई का आकार छोट होने की प्रवृत्ति पायी जाती है।
9. **यातायात व्यय**—किसी संस्था की यातायात लागत दो प्रकार से आती है एक कच्चा माल संस्था तक लाने में और दूसरे निर्मित माल बाजार तक ले जाने में जिन संस्थाओं का कच्चा माल दूर से आता है या जो बाजार से दूर स्थित हैं उन संस्थाओं का आकार सामान्य रूप से बड़ा होता है क्योंकि अधिक यातायात लागत छोटे पैमाने की इकाई सहन नहीं कर सकती।
10. **सरकारी नियन्त्रण**—किसी इकाई पर सरकारी नियन्त्रण होना ही इस बात की ओर संकेत करता है कि व्यवसाय का आकार बड़ा है क्योंकि सरकारी नियन्त्रण वहीं सम्भव है जहाँ उद्योग स्थापना के लिए लाइसेन्स लेना आवश्यक है या भारी मात्रा में पूँजी की आवश्यकता है जब कि छोटे पैमाने की इकाइयों के लिए इस प्रकार की अनुमति आवश्यक नहीं होती है।

प्र.9. अनुकूलतम इकाई के मुख्य लक्षणों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

अनुकूलतम इकाई के लक्षण
(Characteristics of Optimum Unit)

उपर्युक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने के उपरान्त अनुकूलतम इकाई के निम्नलिखित मुख्य लक्षण स्पष्ट होते हैं—

1. **उत्पादन के साधनों में आदर्श समन्वय**—अनुकूलतम इकाई के अन्तर्गत उत्पादन के विभिन्न साधनों (भूमि, श्रम, पूँजी, प्रबन्ध व साहस) के मध्य आदर्श समन्वय स्थापित होता है। इसका तात्पर्य यह है कि न तो किसी साधन का दुरूपयोग होता है और न कोई साधन निष्क्रिय रहता है।
2. **न्यूनतम उत्पादन लागत**—अनुकूलतम इकाई के द्वारा प्रतिपादित वस्तुओं की लागत न्यूनतम होती है क्योंकि उत्पादन के सभी साधनों का पूर्ण सदुपयोग किया जाता है।

3. अनुकूलतम इकाई की उत्पादनशीलता (Productivity) अधिकतम होती है।
4. प्रत्येक प्रकार की बर्बादी को रोका जाता है।
5. कार्यक्षमता अधिकतम होती है।
6. लागत के अन्तर्गत समस्त दीर्घकालीन व अल्पकालीन लागतों को सम्मिलित कर लिया जाता है।
7. इकाई का अनुकूलतम आकार प्रत्येक उद्योग के लिए तथा एक ही उद्योग में विभिन्न फर्मों के लिए भिन्न-भिन्न हो सकता है।
8. पूर्ण प्रतियोगिता की दशा में फर्मों का आकार अनुकूलतम होने की प्रवृत्ति रखता है। लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि पूर्ण प्रतियोगिता के अभाव में फर्म अनुकूलतम से कम आकार की होती है।
9. इस दशा में आवश्यक नहीं है कि लाभ अधिकतम हो।

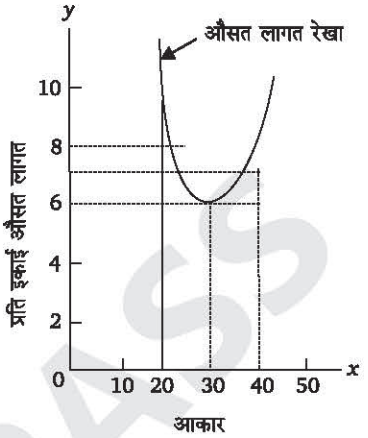

तालिका द्वारा स्पष्टीकरण

आकार	कुल लागत (₹)	औसत लागत (₹)
10	100	10
20	160	8
30	180	6 अनुकूलतम आकार
40	280	7
50	450	9

स्पष्ट है कि 30 के आकार पर न्यूनतम लागत ₹ 6 है। अत: यही आकार अनुकूलतम होगा। यदि आकार को घटाकर 20 पर लाया जाए तो औसत लागत ₹ 8 के बराबर तथा यदि आकार को 40 तक बढ़ाया जाए तो औसत लागत ₹ 7 होगी।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. संयंत्र के स्थान को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिए।

उत्तर

संयंत्र स्थान को प्रभावित करने वाले कारक
(Factors Affecting Plant Location)

अध्ययन किए गए विभिन्न कारकों के अतिरिक्त कुछ भौतिक कारक भी संगठन के संचालन एवं लागत संरचना को महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावित कर सकते हैं। निम्नलिखित कारक हैं जो विनिर्माण कार्यों में स्थान को प्रभावित कर सकते हैं—

1. **प्राथमिक कारक**—कुछ ऐसे कारक हैं जो नए संयंत्र की स्थापना के लिए स्थान के निर्णय पर हावी हो सकते हैं और उन्हें कुछ समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है। इन पर चर्चा नीचे निम्न प्रकार से किया गया है—
   (i) **कच्चे माल की उपलब्धता**—उन क्षेत्रों में जहाँ कच्चे माल का क्रय आसानी से किया जाता है, वे अन्य क्षेत्रों की तुलना में बेहतर है। इन क्षेत्रों पर बहुत अधिक बल दिया जाता है। यह निम्नलिखित लाभ प्राप्त कर सकता है—
      (a) परिवहन लागत में कमी,
      (b) सामग्री की सतत् एवं कुशल आपूर्ति तथा
      (c) ढुलाई और भण्डारण लागत में कमी।
   (ii) **अनुकूल श्रमिक कार्य वातावरण**—उन कम्पनियों या निर्माण इकाईयों में जहाँ फर्नीचर, वस्त्र, सीमेंट उपभोक्ता वस्तुएँ तथा इलेक्ट्रॉनिक्स जैसे अधिक श्रम की आवश्यकता होती है, श्रमिक के कार्य करने का वातावरण अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता है। वातावरण में श्रमिक प्रशिक्षण, मजदूरी दर, श्रम संघ, सुविधाएँ, उत्पादकता आवश्यकता आदि सम्मिलित होते हैं।

TOUCH 'n' PASS

(iii) **संगठन के अन्य भागों के साथ एकीकरण**—नई स्थापित इकाई को शेष प्रतिष्ठान के साथ पर्याप्त रूप से सम्मिलित किया जाना चाहिए। प्रारम्भ में, विकास में कुछ बाधाएँ हो सकती हैं, जिनका ध्यान रखना आवश्यक है और यह सम्भव है यदि इकाई संगठन के शेष भागों के साथ निकटता से संबंधित है।

(iv) **बाजार से निकटता**—संयंत्र की आदर्श स्थिति का चयन करते समय स्थानीय माँग और सम्भावित वृद्धि पर भी विचार किया जाना चाहिए। समान्यत: उस बाजार का जहाँ माँग अधिकतम होती है, का चयन किया जाता है ताकि कुछ ही समय में उपभोक्ता तक वस्तुएँ पहुँच सकें और परिवहन लागत भी बचाई जा सकें। उदाहरण के लिए—ईंटों और प्लास्टिक पाइप के निर्माताओं द्वारा इस अवधारणा को अपनाया जाता है।

(v) **जीवन की गुणवत्ता**—स्कूल, अस्पतालों, समाज और संस्कृति, मनोरंजक गतिविधियाँ आदि अन्य सुविधाओं की उपस्थिति भी परियोजना (जीवन की गुणवत्ता की सम्पूर्ण अवधारणा) को भली-भाँति आकर्षित करती है।

(vi) **आपूर्तिकर्त्ताओं एवं संसाधनों से निकटता**—विभिन्न संगठन स्वयं अपने मुख्य विनिर्माण इकाइयों के मुख्य भागों के आपूर्तिकर्त्ता होते हैं या कुछ स्थितियों में इसे बाह्य स्रोत से भी क्रय किया जा सकता है। दोनों मामलों में, उस स्थान को प्राथमिकता दी जाती है जहाँ आपूतिकर्त्ता और संसाधन दोनों संगठन के निकट स्थित होते हैं।

(vii) **सुरक्षा आवश्यकताएँ**—कुछ संयंत्र न केवल स्वयं कुछ खतरों के सम्पर्क में आ सकते हैं, बल्कि आस-पास के क्षेत्र भी उनके सम्पर्क में आ सकते हैं। उदाहरण के लिए—परमाणु ऊर्जा रियेक्टर, रसायन और विस्फोटक कारखाने आदि। ऐसे मामलों में, सामान्यत: संगठन के लिए एक दूरस्थ क्षेत्र को प्राथमिकता दी जाती है।

(viii) **उपयोगी सेवाओं की उपलब्धता**—निम्नलिखित सेवाएँ हैं, जिनकी उपस्थिति अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है—

(a) गैस (b) बिजली (c) जल (d) जलनिकासी
(e) अपशिष्ट का निपटान (f) संचार

कुछ उद्योगों में जल की अत्यन्त आवश्यकता होती है जैसे कि धुलाईघर, खाद्य प्रसंस्करण, रसायन इत्यादि के सम्बन्ध में जबकि कुछ अन्य को इकाई स्थापित करते समय अधिक मात्रा में बिजली या गैस की आवश्यकता हो सकती है अत: संयंत्र की आवश्यकता को ध्यान में रखकर सावधानीपूर्वक विचार किया जाना चाहिए।

(ix) **उपयोगिता, कर तथा अचल सम्पत्ति की लागत**—मूलभूत उपयोगिता, स्थानीय प्रशासन और करों, भूमि की लागत, पुनर्वास लागत सहित कुछ और महत्वपूर्ण कारकों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

2. **द्वितीयक कारक**—मूलभूत प्राथमिक कारकों के अतिरिक्त कुछ अन्य कारक जैसे विस्तार की सम्भावना, निर्माण की कुल लागत, परिवहन के वैकल्पिक साधनों तक पहुँच, श्रमिकों को स्थानांतरित करने की लागत और दो कार्य स्थलों के मध्य सामग्री, प्रतिस्पर्धी वातावरण, समाज की प्रतिक्रिया और समुदाय आदि महत्त्वपूर्ण हैं। यदि फर्म वैश्विक स्तर पर विस्तार करने की योजना बना रही है तो कर्मचारी को शिक्षण और प्रशिक्षण, मूलभूत संरचना के विकास पर विचार करने की आवश्यकता है।

प्र.2. अल्फ्रेड वेबर द्वारा प्रतिपादित औद्योगिक स्थानीयकरण के सिद्धानत की विवेचनात्मक समीक्षा कीजिए।

उत्तर

अल्फ्रेड वेबर का सिद्धान्त
(Alfred Weber's Theory)

अल्फ्रेड वेबर द्वारा प्रस्तावित सिद्धान्त न्यूनतम लागत के सिद्धान्त पर आधारित है जो विनिर्माण उद्योग के स्थान पर विचार करता है तथा समरूप परिस्थितियों वाले एकल, पृथक देश पर निर्भर करता है। इस परिस्थिति में जहाँ कुछ प्राकृतिक संसाधन सीमित स्थानों में पाए जाते हैं, वहीं कुछ प्रत्येक स्थान पर पाए जाते हैं। कर्मचारियों के लिए स्थान निश्चित कर दिया गया है। इस स्थिति में, परिवहन की लागत पोतभार की दूरी एवं भार का कार्य करती है। सभी स्थानों पर सभी उत्पादों के लिए समान मूल्य है, क्योंकि सभी उत्पादों के लिए माँग एक समान है।

वेबर के अनुसार, उद्योगों के स्थान को प्रभावित करने वाले कारकों को सामान्यत: दो समूहों या श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है—

1. **क्षेत्रीय कारक**—वेबर ने निष्कर्ष निकाला कि विभिन्न उद्योगों की लागत संरचनाओं का निरीक्षण करने के पश्चात् उत्पादन लागत एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्न होती है। इस प्रकार उस स्थान या क्षेत्र में जहाँ उत्पादन लागत न्यूनतम होती है, सामान्यत: उद्योग स्थानीयकृत होता है। वेबर ने माना कि उत्पादन लागत सामान्य रूप से दो क्षेत्रीय कारकों से प्रभावित होती है—

(i) **परिवहन लागत**—उद्योग के स्थान में परिवहन लागत एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। परिवहन किया जाने वाला भार तथा निश्चित की जाने वाली दूरी पविहन लागत को प्रभावित कर सकती है। सामान्यत: उद्योग स्थानीयकरण करने में सक्षम होते हैं, जहाँ ईंधन तथा सामग्री प्राप्त करना सरल है। इसके अतिरिक्त सिद्धान्त यह भी रेखांकित करता है कि उपयोग की जाने वाली सामग्री की प्रकृति एवं उत्पादों में उनके परिवर्तन की प्रकृति भी एक उद्योग के स्थान के लिए आधारभूत कारक है। वेबर द्वारा प्रस्तावित अशुद्धियाँ एवं विशिष्ट स्थानीय कच्चे माल की श्रेणियाँ हैं। अशुद्धियाँ सभी स्थानों पर प्राप्य हैं जबकि स्थानीय कच्चे माल कुछ निश्चित स्थानों पर ही उपस्थित हैं। इसी प्रकार सामग्री को शुद्ध कच्चे माल तथा सकल कच्चे माल में विभाजित किया जा सकता है।
वह निम्नलिखित सूत्र के साथ आया—

सामग्री सूचकांक = स्थानीयकृत सकल सामग्री का भार/तैयार वस्तु का भार

यदि सूचकांक संख्या एकता से अधिक है तो उद्योगों में कच्चे माल के स्थान पर स्थानीयकरण करने की क्षमता होती है तथा सूचकांक एकता से न्यूनतम होने पर उपभोग स्थानों या विपणनों के पास स्थित हो जाएगा। यदि सूचकांक इकाई के बराबर है तो उद्योग उद्यमी के विवेक एवं उसकी सुविधा के आधार पर किसी कच्चे माल या विपणन स्थान पर ज्ञात कर सकते हैं।

(ii) **श्रम लागत**—उद्योग की स्थिति भी श्रम की लागत से प्रभावित होती है। स्थान की समस्या तब जटिल हो जाती है जब परिवहन की लागत अनुकूल हो तथा श्रम की लागत प्रतिकूल हो। उद्योग उन स्थानों पर स्थिर हो सकते हैं जो न्यूनतम श्रम लागत को प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि, परिवहन तथा श्रम लागत दोनों न्यूनतम हैं, केवल एक निष्क्रिय स्थिति के लिए ही सम्भव है। श्रम लागत सूचकांक निश्चित करता है कि उद्योग के स्थान निर्णय में श्रम लागत का अधिक भार होगा या नहीं होगा। श्रम लागत सूचकांक की गणना के लिए निम्नलिखत सूत्र का उपयोग किया जा सकता है—

श्रम लागत सूचकांक = श्रम लागत/उत्पाद का भार

उद्योग उस स्थान पर स्थित हो जाएगा जहाँ श्रम गुणांक अधिक होने पर लागत न्यूनतम होती है तथा न्यूनतम गुणांक कम होने पर परिवहन लागत निर्णय को प्रभावित कर सकती है।

2. **संचयी एवं अवक्रमणीय कारक**—उद्योग बीमा सेवाओं, बैंकिंग तथा बाह्य अर्थव्यवस्थाओं आदि जैसे—सामूहिक कारकों की सहायता से किसी विशेष स्थान पर केन्द्रीकृत हो सकते हैं। विनिर्माण सूचकांक जो कुल उत्पादन में विनिर्माण लागत के अनुपात का प्रतिनिधित्व करता है, केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को प्रभावित करता है। यदि निर्माण का गुणांक अधिक है तो उद्योगों में केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति होगी तथा निमार्ण का गुणांक न्यूनतम होने पर विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति देखी जा सकती है।
वे कारक जो उद्योगों के स्थान को विकेन्कृत करते हैं, वे अवक्रमणीय कारक हैं, ऐसे कारकों में भूमि लागत, स्थानीय कर, निवास, श्रम लागत तथा लेनदेन लागत शामिल हो सकते हैं। इन कारकों के पणिामस्वरूप विकेन्द्रीकरण होता है क्योंकि विकेन्द्रीकरण में परिवर्तन के कारण उत्पादन लागत न्यूनतम हो जाती है।
वेबर द्वारा दी गई दो विभिन्न प्रकार भी सम्भावनाएं निम्नलिखित हैं—

(i) **स्थान में विभाजित**—वेबर ने सुझाव दिया कि उद्योगों में विभाजित स्थानों की प्रवृत्ति होती है, तथा जब कच्चे माल का उत्पादन में भार न्यूनतम किया जाता है तथा विभिन्न स्थानों पर कार्य करना लाभप्रद होता है। उदाहरण के लिए—कागज उद्योग में एक स्थान पर लुगदी तैयार की जाती है तथा दूसरे स्थान पर कागज का निर्माण किया जाता है।

(ii) **स्थान युग्मन**—उत्पादन प्रक्रिया के पश्चात् जब बचे हुए अपशिष्ट को विक्रय करना होता है, तो इसका परिणाम किसी प्रकार के सहायक उद्योग में हो सकता है। इसे स्थान युग्मन कहते हैं।

प्र.3. सार्जेण्ट फ्लोरेन्स द्वारा प्रतिपादित औद्योगिक स्थानीयकरण के आगामनात्मक सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।

उत्तर

सार्जेण्ट फ्लोरेन्स का औद्योगिक स्थानीयकरण का सिद्धान्त
(Sargent Florence's Theory of Industrial Location)

सार्जेण्ट फ्लोरेन्स का सिद्धान्त आगमनात्मक विश्लेषण (Inductive Analysis) पर आधारित है। उनका सिद्धान्त उनके इस विचार पर आधारित है कि "किसी उद्योग का किसी क्षेत्र से सम्बन्ध उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि उद्योग का सम्पूर्ण

कार्यशील जनसंख्या के वितरण के साथ सम्बन्ध।'' इस प्रकार अपने सिद्धान्त में फ्लोरेन्स ने निम्नलिखित दो मापकों का प्रयोग किया है—

1. **स्थानीयकरण भाज्य**—यह भाज्य किसी क्षेत्र विशेष में एक उद्योग के केन्द्रीयकरण की मात्रा का माप है। यह एक प्रकार का निर्देशांक है जिसकी गणना से किसी क्षेत्र विशेष में किसी उद्योग के केन्द्रित होने की प्रवृत्ति का पता लगता है। इस भाज्य की गणना निम्नलिखित रीति के अनुसार की जाती है—
   (i) **किसी क्षेत्र**—विशेष में किसी उद्योग में कार्यरत श्रमिकों की संख्या का पूरे देश में उक्त उद्योग में लगे श्रमिकों की संख्या के साथ प्रतिशत, तथा
   (ii) उस क्षेत्र विशेष के समस्त उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों की संख्या का पूरे देश के औद्योगिक श्रमिकों की संख्या के साथ प्रतिशत निकालते हैं। अब पहले प्रतिशत में दूसरे प्रतिशत का भाग दीजिए। जो भाज्य आये, वही स्थानीयकरण भाज्य है।

   सार्जेण्ट फ्लोरेन्स के अनुसार, इससे निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—

   (क) यदि किसी उद्योग के लिए विभिन्न क्षेत्रों का स्थानीयकरण-भाज्य, इकाई (unity) या इसके निकट है, तो यह इस बात का परिचायक है कि वह उद्योग देश के विभिन्न क्षेत्रों में समान रूप से विभाजित है।

   (ख) भाज्य इकाई से जितना ही अधिक होगा उस क्षेत्र में केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति उतनी ही अधिक होगी।

   (ग) यदि किसी क्षेत्र में यह भाज्य इकाई से कम है तो यह इस बात का परिचायक होगा, कि उस क्षेत्र में उस उद्योग का स्थानीयकरण कम है। भाज्य इकाई से जितना ही कम होगा, उस क्षेत्र में उस उद्योग के स्थानीयकरण की प्रवृत्ति उतनी ही कम होगी।

   (घ) यदि किसी क्षेत्र के लिए यह भाज्य शून्य है तो यह उस क्षेत्र में उस उद्योग विशेष के सर्वथा अभाव का सूचक होगा।

   निम्नलिखित उदाहरण के द्वारा स्थानीयकरण भाज्य की गणना को भली प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—

   देश के समस्त उद्योगों में संलग्न श्रमिकों की कुल संख्या = 120,000
   देश के एक उद्योग विशेष में संलग्न श्रमिकों की कुल संख्या = 20,000
   एक विशेष क्षेत्र के समस्त उद्योगों में लगे श्रमिकों की कुल संख्या = 24,000
   उस विशेष क्षेत्र के एक उद्योग विशेष में संलग्न श्रमिकों की कुल संख्या = 5,000

$$\frac{\text{विशेष उद्योगों में विशेष क्षेत्र में लगे श्रमिकों की संख्या}}{\text{विशेष उद्योगों में सम्पूर्ण देश में लगे श्रमिकों की संख्या}} \times 100 = \frac{5,000 \times 100}{20,000} = 25\%$$

$$\frac{\text{विशेष क्षेत्र के समस्त उद्योगों में श्रमिकों की कुल संख्या}}{\text{देश के समस्त उद्योगों में संलग्न श्रमिकों की कुल संख्या}} \times 100 = \frac{24,000 \times 100}{1,20,000} = 20\%$$

$$\therefore \quad \text{स्थानीयकरण भाज्य (Locational Factor)} = \frac{25}{20} = 1.25$$

2. **स्थानीयकरण गुणांक**—इससे किसी उद्योग विशेष के केन्द्रीकरण अथवा विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति का पता लगाया जा सकता है न कि किसी क्षेत्र विशेष की। इसे ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित प्रतिशतों की गणना आवश्यक होती है—

   (क) प्रत्येक क्षेत्र में देश के सम्पूर्ण श्रमिकों की संख्या का प्रतिशत, तथा

   (ख) प्रत्येक क्षेत्र में किसी उद्योग विशेष में कार्यरत श्रमिकों की संख्या का प्रतिशत।

यदि क्षेत्रवार ये दोनों प्रतिशत उपलब्ध हैं तो इनके धनात्मक विचलनों (Positive Deviations) के जोड़ में 100 का भाग देकर उस गुणक को ज्ञात किया जा सकता है।

यदि यह गुणक शून्य है तो यह माना जायेगा कि उद्योग का सभी क्षेत्रों में समान वितरण है। यदि गुणक इकाई के बराबर है तो उद्योग एक ही केन्द्र में केन्द्रित हुए समझे जायेंगे। गुणक इकाई से अधिक होने पर उद्योग में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति पाई जायेगी तथा गुणक इकाई से कम होने पर उद्योगों में विकेन्द्रीकरण पाया जायेगा।

प्र.4. संयंत्र अभिन्यास का अर्थ एवं परिभाषा लिखिए तथा संयंत्र अभिन्यास के मुख्य उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।

उत्तर

सुविधा/संयन्त्र अभिन्यास का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definition of Facility/Plant Layout)

"अभिन्यास" का शाब्दिक अर्थ विभिन्न वस्तुओं को योजनाबद्ध तरीके से व्यवस्थित करना है। विशेष रूप से विनिर्माण उद्यमी के सन्दर्भ में, सुविधा के सन्दर्भ में, यह विभिन्न मशीनरी, उपकरण तथा अन्य सुविधाओं की स्थापना जो मुख्य गतिविधियों के लिए प्रासंगिक है कि स्थापना से संबंधित है, जैसे प्राप्तकर्त्ता विभाग, प्रेषण विभाग (अन्तिम वस्तुएँ), उपकरण कक्ष, रखरखाव विभाग, वह विभाग जो कर्मचारी कल्याण से संबंधित कार्य देखते है, आदि के लिए प्रासंगिक हैं।

इस प्रकार संयन्त्र अभिन्यास होने का उद्देश्य न्यूनतम सम्भव लागत पर उत्पादन की एक त्वरित, परेशानी मुक्त और निर्बाध प्रक्रिया सुनिश्चित करना है।

शुबिन के अनुसार, "संयन्त्र अभिन्यास विनिर्माण उत्पादों या उपभोक्ता सेवाओं की आपूर्ति में कुशलता प्राप्त करने के उद्देश्य से उत्पादन मशीनरी, कार्य केन्द्रों और सहायक सुविधाओं और गतिविधियों (अपेक्षाएँ, सामग्री भण्डारण और नौपरिवहन का नियन्त्रण) की व्यवस्था और स्थान है।"

कीथ और गुबेलिनी के अनुसार, "संयन्त्र अभिन्यास भौतिक सुविधाओं और श्रमशक्ति की व्यवस्था से सम्बन्धित है जो किसी उत्पाद के निर्माण या सेवा करने हेतु आवश्यक है।"

जे० लुण्डी के अनुसार, "संयन्त्र अभिन्यास में आदर्श रूप से स्थान का आवंटन और इस प्रकार से उपकरणों की व्यवस्था करना सम्मिलित है कि समग्र परिचालन लागत न्यूनतम हो।"

संयंत्र अभिन्यास के उद्देश्य
(Objectives of Plant Layout)

अभिन्यास के उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. **न्यूनतम उत्पादन में विलम्ब**—संयंत्र अभिन्यास का उद्देश्य असंतुलित मशीन की क्षमता, कार्यस्थल पर प्रतिरोध या कुछ उत्पादन अनुसूची में उत्पन्न व्यवधान को समाप्त करना है।
   सामग्री को एक कार्यस्थल या प्रक्रिया या संचालन से दूसरे में अधिक सुचारू रूप से स्थानांतरित करने की योजन बनाकर तथा न्यूनतम या बिना किसी व्यवधान के करने की दिशा में अभिन्यास विलम्बता से बचने के लिए सहायता कर सकता है।
2. **उत्पादन में वृद्धि**—संयंत्र अभिन्यास के सबसे प्रमुख उद्देश्यों में से एक उत्पादन को अनुकूलित करना होता है। उपकरण, मशीनों एवं कार्य क्षेत्रों की व्यवस्था इस प्रकार से होनी चाहिए कि सामग्री को प्रत्यक्ष रूप से एक सरल रेखा में ले जाया जा सके। उत्पादन प्रक्रिया के किसी भी स्तर पर विलम्ब से बचने या समाप्त करने के लिए प्रभावी एवं कुशल प्रयास किए जाने चाहिए। इस प्रकार अभिन्यास को इस प्रकार से प्रारूपित किया जाना चाहिए कि श्रमिकों को सामग्री, उपकरण या निर्देश एकत्र करने के लिए न्यूनतम दूरी निर्धारित करनी पड़े। यह अन्य दलों या भागों के साथ मिश्रण के जोखिम को कम करता है, तथा इसे सरलता से पहचाना, संचित तथा निरीक्षण किया जा सकता है।
3. **सरल एवं बेहतर पर्यवेक्षण**—संयंत्र अभिन्यास का एक अन्य उद्देश्य ऐसा है कि यह प्रबन्धकों को अधिक प्रभावी रूप से तथा कुशलता से कार्य करने की निगरानी करने की अनुमति प्रदान करता है। यह कार्यस्थलों को प्रत्यक्ष रूप से एक सरल पंक्ति में संयोजित करके, अनावश्यक विभाजित बाधाओं एवं असामान्य दृष्टिकोण के उपयोग को समाप्त करके पूर्ण किया जा सकता है। यदि अनेकों भूमितल के अतिरिक्त एक ही भूमितल पर कार्य किया जाता है, तो पर्यवेक्षण अभी भी लाभदायक है।
4. **प्रक्रिया में रहतिया को कम करना**—इस प्रक्रिया में रहतियाँ एक अभिन्यास से अत्यधिक सीमा तक प्रभावित होती है। यदि सामग्री को एक संचालन प्रक्रिया से दूसरे संचालन प्रक्रिया में ले जाने के लिए अभिन्यास की योजना बनाई जाती है, तो आवश्यक प्रक्रिया में रहतियाँ बहुत कम होती हैं। स्तर-ए की रहतियाँ को न्यूनतम करने के लिए कार्यस्थल पर अनावश्यक संचयन, प्रतीक्षा समय या सामग्री की विलम्बता से बचा जा सकता है। कार्यस्थल, मशीनों एवं विभागों के मध्य की दूरियों को न्यूनतम करने से भी रहतियाँ को न्यूनतम करने में सहायता प्राप्त होती है।
5. **न्यूनतम पूँजी निवेश**—अभिन्यास का उद्देश्य अनावश्यक निवेशों से बचना है। यह मशीनों के उचित प्रबन्धन में सहायता करता है तथा इस प्रकार प्रसंस्करण विधि में सुधार करता है तथा मशीनों में अवांछित निवेश से बचा जाता है।

TOUCH 'n' PASS

वर्तमान उपकरणों के निष्क्रिय समय का निर्धारण पूँजी निवेश को न्यूनतम करने में सहायता करता है। इस प्रकार, यदि उपकरण के लिए उचित भार नहीं है, तो किसी भी उपकरण को क्रय करने तथा स्थापित करने में इसका उपयोग नहीं है।

6. **मानव एवं मशीनरी का अत्यधिक उपयोग**—संयंत्र अभिन्यास का एक अन्य उद्देश्य उपलब्ध संसाधनों का प्रभावी उपयोग सुनिश्चित करना है। क्योंकि, कोई भी मशीन या मानव बेकार नहीं होता है, इसलिए मात्र एक उचित अभिन्यास ही इन सुविधाओं का उचित उपयोग करने में सक्षम बनाता है। इसके परिणामस्वरूप अंततः उत्पादन में वृद्धि होती है तथा श्रमिकों के मनोबल में भी वृद्धि होती है।

प्र.5. संयंत्र अभिन्यास के विभिन्न प्रकार कौन-कौन से हैं? उनका वर्णन कीजिए।

उत्तर

संयंत्र अभिन्यास के प्रकार
(Types of Plant Layout)

1. उत्पाद अभिन्यास (Product Layout)

उत्पाद अभिन्यास को सीधी रेखा अभिन्यास रेखा प्रसंस्करण अभिन्यास, 'प्रवाह रेखा अभिन्यास' या 'क्रमानुसार विनिर्माण के लिए अभिन्यास' के रूप में जाना जाता है। इस प्रकार का अभिन्यास एक क्रम में उपकरणों की व्यवस्था प्रदान करता है जो उनकी उत्पादन प्रक्रिया में क्रमिक भूमिका का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस अनुक्रम में एक छोर कच्चे सामग्री का प्रवेश बिन्दु होता है, जबकि दूसरा छोर निर्मित सामग्री का निकास बिन्दु होता है। इन दो बिन्दुओं के मध्य उत्पादन चक्र के विभिन्न चरण पूर्व निर्धारित क्रम में होते हैं। उत्पाद अभिन्यास को एक विशिष्ट ग्राफिक चित्रण द्वारा प्रदर्शित किया गया है जैसा कि नीचे (चित्र) में दिखाया गया है—

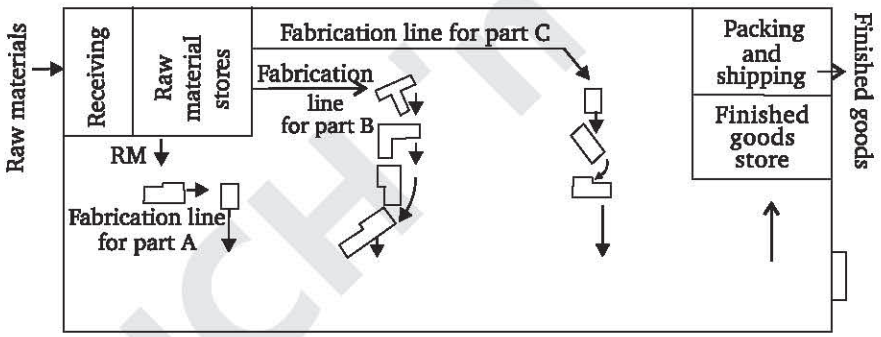

RM = Raw Material WC = Work Centre

चित्र : रेखीय अभिन्यास या उत्पाद अभिन्यास

अभिन्यास की यह श्रेणी मानकीकृत उत्पादों के निर्माता के लिए सबसे उपयुक्त है जिनकी थोक माँग है। सम्पूर्ण विनिर्माण प्रक्रिया प्रकृति में सतत्, नीरस एवं दोहरी है। हालाँकि उत्पादन के प्रत्येक चरण में श्रमशक्ति और उपकरणों के सम्बन्ध में विशेषज्ञता की आवश्यकता होती है। इस प्रकार की प्रणाली के अन्तर्गत निर्मित सामग्री का एक उच्च स्तर इसे एक आकर्षक निवेश विकल्प बनाता है, एवं भारी निवेश करने का निर्णय सम्भावित निवेशक द्वारा शीघ्र लिया जाता है। सम्मिलित वस्तुओं की सीमित संख्या के सम्बन्ध में उस उत्पाद या सेवा से सम्बन्धित तकनीकी प्रसंस्करण आवश्यकताओं के अनुरूप सम्पूर्ण अभिन्यास की व्यवस्था की जा सकती है।

2. प्रक्रिया अभिन्यास (Process Layout)

प्रक्रिया अभिन्यास को 'कार्यात्मक अभिन्यास' या 'जॉब शॉप अभिन्यास' के रूप में भी जाना जाता है। इस प्रकार के अभिन्यास की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. मशीनों और सेवाओं का समूह उनके कार्यों के आधार पर बनाया जाता है, तथा,
2. इस प्रकार के परिचालन हेतु क्षेत्रों को भिन्न रखा गया है।

विभाग कार्यात्मक आधार पर बनाए जाते हैं, अर्थात् एक विभाग में एक प्रकार का कार्य किया जाता है तथा दूसरे विभाग द्वारा दूसरे प्रकार का कार्य किया जाता है।

इस प्रकार का अभिन्यास समान्यत: उन कम्पनियों द्वारा किया जाता है, जहाँ—

1. उत्पादन स्तर न्यूनतम है तथा,
2. कार्यों में विविधता है दूसरे शब्दों में कोई मानकीकरण नहीं है।
3. प्रत्येक ग्राहक का आदेश विशिष्ट होता है।

कार्यों में होने वाले परिवर्तनों के साथ परिचालन के क्रम में परिवर्तन किया जाता है, क्योंकि प्रत्येक कार्य में परिचालन का अद्वितीय अनुक्रम सम्मिलित होता है। इस प्रकार के लचीलेपन के कारण कार्य क्षेत्रों को एक साथ रखा गया है, जैसा कि नीचे प्रदर्शित किया गया है।

Stores (भण्डार)	Assembling (संयोजन)	Painting (पेंटिंग)
		Sub-assembling (उप संयोजन)
Receiving (प्राप्तियाँ)	Plant office (संयंत्र कार्यालय)	Grinding (पिसाई)
Shipping (जलयात्रा)	Turning (घुमाव)	Welding (जुड़ाई)

चित्र : प्रक्रिया अभिन्यास

3. स्थायी स्थान अभिन्यास (Fixed Position Layout)

स्थायी स्थान अभिन्यास के अंतर्गत, सबसे महत्त्वपूर्ण उत्पाद का निर्माण एक स्थान पर स्थिर या स्थायी होता है। यह स्थान सभी गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु होता है। सभी मशीनरी, उपकरण, यंत्र, संयंत्र, श्रमिक आदि को इसी कार्यस्थल पर लाया जाता है। इस प्रकार की व्यवस्था (प्रमुख उत्पाद के निर्माण स्थल पर श्रमिकों और मशीनरी को लाना) इस तथ्य के कारण तर्कसंगत है कि बड़े आकार के प्रमुख उत्पाद को स्थानांतरित करने और श्रमिकों तथा मशीन को उत्पादन स्थल पर ले जाने के विकल्प के मध्य, बाद वाला सुविधाजनक होता है।

इस प्रकार का अभिन्यास जहाजों, जनरेटर, वाहनों, वायुयानों आदि जैसे भारी अभियांत्रिकी वस्तुओं के निर्माताओं के लिए सबसे उपयुक्त है। लघु उद्योग के लिए यह उपयुक्त नहीं माना जाता है। जहाज निर्माण उद्योग के सम्बन्ध में स्थिर अभिन्यास को निम्न चित्र में दर्शाया गया है।

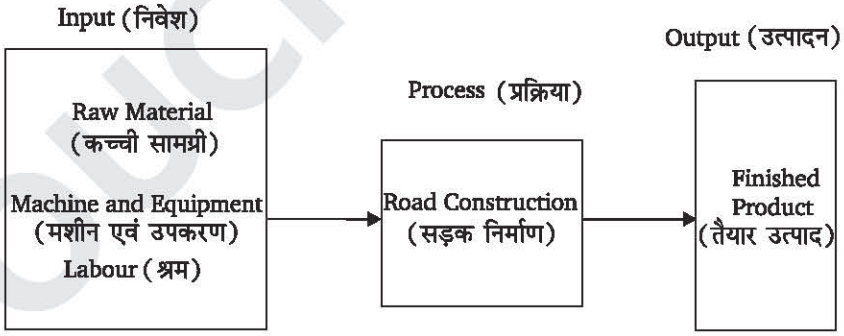

चित्र : स्थायी स्थान/स्थिर अभिन्यास

4. सेलुलर विनिर्माण/उत्पादन अभिन्यास (Cellular Manufacturing/Production Layout)

सेलुलर विनिर्माण अभिन्यास एक प्रकार का अभिन्यास है जिसमें समान वस्तुओं जिन्हें समान प्रसंस्करण के माध्यम से रखा जाना आवश्यक है के समूह के लिए प्रक्रिया की आवश्यकता के अनुसार मशीनों को समूहों में एक साथ रखा जाता है, ऐसे समूहों को 'प्रकोष्ठ' कहा जाता है। एक प्रकोष्ठ में प्रक्रिया पूरी हो जाने के पश्चात्, प्रसंस्कृत और उत्पादों को अगले प्रकोष्ठ में अपने स्तर पर आगे की प्रक्रिया के लिए अग्रेषित किया जाता है। इस प्रकार, सेलुलर अभिन्यास को सेलुलर विनिर्माण को सुविधाजनक बनाने के लिए डिजाइन किए गए उपकरण अभिन्यास के रूप में माना जा सकता है। सेलुलर विनिर्माण के अन्तर्गत, प्रक्रियाओं को समूह प्रौद्योगिकी के माध्यम से प्रकोष्ठों में एकत्रित किया जाता है, जो डिजाइन (आकार, प्रकार और कार्यों) और प्रक्रियाओं

(आवश्यक प्रसंस्करण की श्रेणी, उपक्रम के लिए उपलब्ध मशीनरी) के सम्बन्ध में समान विशेषताओं वाले उपकरणों की पहचान से सम्बन्धित होते हैं।

श्री वी० बी० शैलजा के अनुसार, "समूह तकनीक यह बोध है कि विभिन्न समस्याएँ समान होती हैं और इसी प्रकार की समस्याओं का समूह बनाकर, समस्याओं के एक समूह के लिए एक ही समाधान पाया जा सकता है।" इस प्रकार समय और प्रयास की बचत होती है। "कम्प्यूटर उपकरण निर्माण में विशेषज्ञता वाले एक उद्यमी के एक उदाहरण के माध्यम से समूह तकनीक को और विस्तृत किया जा सकता है। एक विशिष्ट ग्राहक के विनिर्देशों को पूरा करने के लिए कुछ भागों के उत्पादन के लिए उपकरणों के प्रसंस्करण और संयोजन के लिए एक विशेष प्रकोष्ठ की आवश्यकता हो सकती है। सेलुलर विनिर्माण या किसी संगठन के समूह तकनीक अभिन्यास को निम्न चित्र द्वारा दर्शाया जा सकता है।

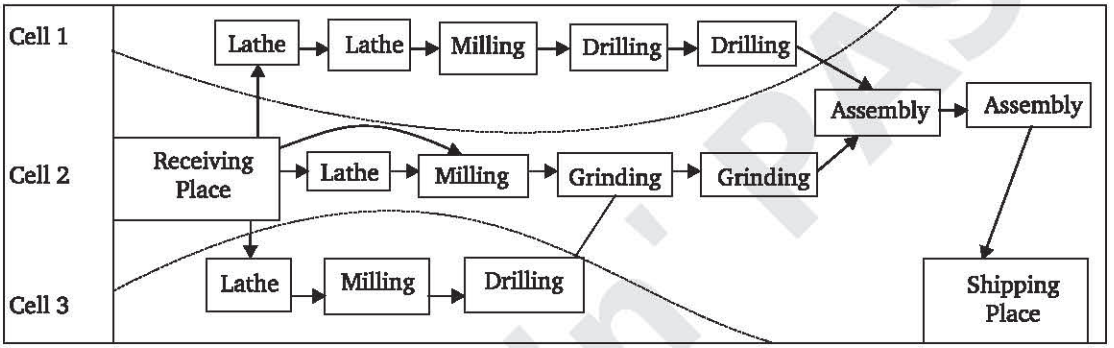

चित्र : सेलुलर विनिर्माण/उत्पादन अभिन्यास

5. हाइब्रिड या संयुक्त अभिन्यास (Hybrid or Combined Layout)

दो अभिन्यास का मिश्रण, अर्थात्, प्रक्रिया अभिन्यास और उत्पाद अभिन्यास को हाइब्रिड/संयुक्त अभिन्यास के रूप में जाना जाता है। दोनों अभिन्यासों के लाभों का उपयोग सह क्रियात्मक लाभ के लिए किया जा सकता है, बशर्ते कि निर्मित उत्पादों में कुछ स्तर की समानताएँ बिना किसी जटिलता के हों।

उदाहरण के लिए—

1. एक साबुन निर्माण संयंत्र में, निम्न के रूप में संयुक्त अभिन्यास का उपयोग किया जाता है—
   (i) मशीनरी, जो साबुन निर्माण के लिए उपयोग की जाती है, को 'उत्पाद अभिन्यास' के सिद्धांत पर व्यवस्थित किया जाता है; तथा,
   (ii) सहायक सेवाएँ, उदाहरण—हीटिंग, ग्लिसरीन उत्पादन, बिजली घर/जल उपचार संयंत्र, आदि 'प्रक्रिया अभिन्यास' के सिद्धान्त पर व्यवस्थित होते हैं।
2. एक सीमेंट निर्माण संयंत्र में, संयुक्त अभिन्यास का उपयोग निम्नानुसार किया जाता है—
   (i) कच्चे माल की तैयारी के लिए, जिसमें विभिन्न घटकों को कुचलने, पीसने और मिश्रण करना सम्मिलित है, जैसे कि चूना पत्थर, मिट्टी, बॉक्साइट, और लौह अयस्क प्रक्रिया अभिन्यास का उपयोग किया जाता है।
   (ii) एक बार निर्धारित तत्त्वों को मिलाकर कच्चे माल (कच्चे भोजन) तैयार हो जाने पर, बाद के उत्पादन प्रक्रियाओं में उत्पाद अभिन्यास का उपयोग किया जाता है। प्री हीटिंग, प्री-कैल्सीनिंग, क्लिंकर में कच्चे भोजन के रूपान्तरण के लिए कैलक्लाइंस, क्लीनर को ठंडा करना आदि।
   (iii) संयंत्र में कार्यस्थल की गतिविधियों को प्रक्रिया अभिन्यासों के माध्यम से प्रबंधित किया जाता है;
   (iv) अन्तिम उत्पाद की पैकिंग और प्रेषण से सम्बन्धित परिचालन, अर्थात् सीमेंट को 'उत्पाद अभिन्यास' के माध्यम से ले जाया जाता है;
   (v) जब भी भट्टे की मरम्मत की जाती है, जिसमें आवागमन सम्भव नहीं है, तो 'स्थिर अभिन्यास' का उपयोग अपरिहार्य हो जाता है।

'संयुक्त अभिन्यास' का एक उदाहरण निम्नांकित चित्र में दर्शाया गया है—

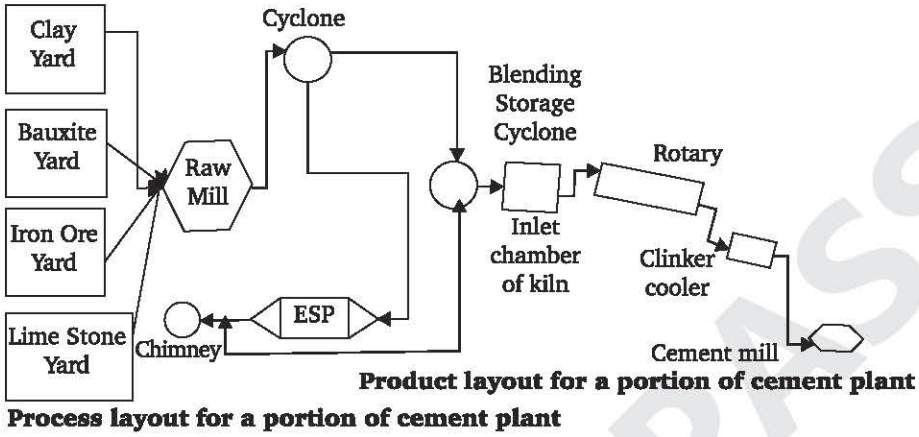

चित्र : हाइब्रिड या संयुक्त अभिन्यास

प्र.6. संयंत्र अभिन्यास के सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।

उत्तर

संयन्त्र अभिन्यास के सिद्धान्त
(Principles of Plant Layout)

संयन्त्र अभिन्यास सम्पूर्ण संयन्त्र की कुशलता को प्रभावित करता है। अत: संयन्त्र अभिन्यास की जो भी योजना तैयार की जाए वह विवेकसम्मत होनी चाहिए और उसे तैयार करते समय उन सभी सिद्धान्तों को ध्यान में रखना चाहिए जो एक कुशल संयन्त्र अभिन्यास की योजना निर्माण में सहायक हो सकते हैं। संयन्त्र अभिन्यास के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

1. **सन्तुष्टि एवं सुरक्षा का सिद्धान्त**—उपयुक्त संयन्त्र अभिन्यास वही है जहाँ पर कार्य करने वाले श्रमिक अपने कार्य को सन्तोषप्रद, सुविधाजनक तथा सुरक्षित रूप में करने में समर्थ हों। श्रमिकों की सुरक्षा की प्रभावी व्यवस्था हो।
2. **आधारभूत सुविधाओं का सिद्धान्त**—संयन्त्र अभिन्यास के अन्तर्गत आधारभूत सुविधाओं अर्थात् वायु, विद्युत और गैस तथा अग्नि बुझाने वाले यन्त्रों आदि की उपयुक्त व्यवस्था होनी चाहिए।
3. **प्रभावी पर्यवेक्षण का सिद्धान्त**—इस सिद्धान्त के अनुसार संयन्त्र अभिन्यास ऐसा हो जिससे सम्पूर्ण संयन्त्र का प्रभावी पर्यवेक्षण किया जा सके।
4. **अनुक्रम का सिद्धान्त**—इस सिद्धान्त के अनुसार संयन्त्र अभिन्यास ऐसा हो जिसके अन्तर्गत यन्त्रों को एक अनुक्रम में स्थापित किया जा सके, ताकि उत्पाद निरन्तर आगे बढ़ता जाए, पीछे नहीं लौटे। अन्त में निर्मित उत्पाद के रूप में ही निकले।
5. **लोच का सिद्धान्त**—इस सिद्धान्त के अनुसार संयन्त्र के अभिन्यास में पर्याप्त लोच होनी चाहिए, ताकि भावी परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप उसमें संशोधन किया जा सके।
6. **प्रभावी नियन्त्रण का सिद्धान्त**—इस सिद्धान्त के अनुसार संयन्त्र का अभिन्यास ऐसा हो जिससे श्रमिकों, उत्पादन प्रक्रियाओं तथा विभिन्न विभागों पर प्रभावी नियन्त्रण स्थापित किया जा सके।
7. **श्रम-शक्ति के अधिकतम उपयोग का सिद्धान्त**—इस सिद्धान्त के अनुसार संयन्त्र अभिन्यास ऐसा होना चाहिए कि जिसके अन्तर्गत श्रम शक्ति का अधिकतम एवं कुशलतम उपयोग किया जा सके। इसके लिए आवश्यक है कि श्रमिक निष्क्रिय न रहे और उन्हें कार्य के लिए इधर-उधर अनावश्यक रूप से घूमना न पड़े। यही नहीं, उन्हें उत्पादन प्रक्रिया के दौरान कम से कम हाथ-पैर हिलाने-डुलाने पड़ें।
8. **उपयुक्त एकीकरण का सिद्धान्त**—सर्वोत्तम अभिन्यास वही है जोकि श्रम, माल, यन्त्र तथा सहायक उत्पादन क्रियाओं का उपयुक्त एकीकरण करने में समर्थ हो।

TOUCH 'n' PASS

9. **सामग्री के आवागमन में सुविधा का सिद्धान्त**—संयन्त्र अभिन्यास ऐसा हो कि सामग्री को सरलता से इधर-उधर भेजा जा सके एवं एक प्रक्रिया से दूसरी प्रक्रिया पर सरलता से सीधा ही पहुँचाया जा सके।
10. **स्थान के कुशलतम उपयोग का सिद्धान्त**—संयन्त्र अभिन्यास के लिए उपलब्ध स्थान का प्रभावपूर्ण तथा मितव्ययितापूर्ण उपयोग किया जाना सम्भव होना चाहिए।
11. **भावी विस्तार एवं विकास का सिद्धान्त**—संयन्त्र अभिन्यास के भावी विस्तार एवं विकास हेतु पर्याप्त व्यवस्था पहले से की जानी चाहिए, ताकि आवश्यकता पड़ने पर सरलता से उसका विस्तार एवं विकास करना सम्भव हो। इसके अभाव में कभी-कभी समस्त उपक्रम को ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना पड़ता है जिसके कारण धन और शक्ति दोनों व्यय होती हैं।
12. **न्यूनतम उठाया-धरी का सिद्धान्त**—संयन्त्र अभिन्यास के अन्तर्गत पदार्थों की उठाया-दूरी न्यूनतम दूरी के लिए होनी चाहिए। हमारी सहमति में तो पदार्थों को उठाने एवं धरने की सर्वश्रेष्ठ विधि वही है जिसमें उठाने की आवश्यकता ही नहीं पड़े।
13. **उपयुक्त बहाव का सिद्धान्त**—उपयुक्त संयन्त्र अभिन्यास वही है जो उत्पादन की प्रत्येक प्रक्रिया को उसी क्रम में व्यवस्थित करता है जिसमें वस्तुओं का रूप परिवर्तन, निर्माण अथवा समायोजन होता है।

मूथर ने संयन्त्र अभिन्यास के नियोजन के सम्बन्ध में निम्नलिखित छः सिद्धान्तों को बताया है—

1. **सामान्य एकीकरण का सिद्धान्त**—कच्चा माल, श्रम तथा मशीन किसी भी उत्पादन प्रक्रिया के तीन प्रमुख अंग होते हैं। अतः श्रेष्ठ अभिन्यास वही होता है जो श्रम, माल, मशीनरी तथा सहायक क्रियाओं का उपयुक्त एकीकरण करते हुए उनका सर्वोत्तम उपयोग करता है।
2. **न्यूनतम दूरी का सिद्धान्त**—यह सिद्धान्त उत्पादन प्रक्रिया में क्रमबद्धता के द्वारा आन्तरिक यातायात को न्यूनतम करने पर जोर देता है जिससे समय, श्रम व धन का अपव्यय कम-से-कम हो।
3. **प्रवाह का सिद्धान्त**—यह सिद्धान्त वस्तुओं के उत्पादन हेतु निर्माणी प्रक्रिया के अनुसार संयन्त्र का अभिन्यास करने पर बल देता है।
4. **घन क्षेत्र का सिद्धान्त**—इस सिद्धान्त के अनुसार भूमि का समुचित व मितव्ययितापूर्ण उपयोग किया जाना चाहिए।
5. **सन्तुष्टि व सुरक्षा का सिद्धान्त**—इस सिद्धान्त के अनुसार संयन्त्र अभिन्यास ऐसा होना चाहिए जिससे काम करने वाले सभी वर्गों को सन्तुष्टि प्राप्त हो सके अर्थात् नियोक्ता व प्रबन्ध वर्ग को निरीक्षण में सुविधा हो तथा श्रमिकों के लिए काम करने की दशाओं व सुरक्षा की अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए ताकि वे अधिक सन्तुष्ट होकर पूर्ण निष्ठा के साथ कार्य कर सकें।
6. **लोच का सिद्धान्त**—संयन्त्र अभिन्यास की कोई भी योजना अपने आप में पूर्ण तथा अन्तिम नहीं होती। अतः अभिन्यास योजना इस प्रकार की होनी चाहिए कि संयन्त्र के विस्तार, तकनीकी परिवर्तनों एवं आधुनिकीकरण की दशा में न्यूनतम लागत व असुविधा पर संयन्त्र अभिन्यास को पुनः व्यवस्थित तथा समायोजित किया जा सके।

प्र.7. संयंत्र अभिन्यास को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिए।

उत्तर

अभिन्यास को प्रभावित करने वाले कारक
(Factors Affecting Layout)

कभी-कभी अभिन्यास में परिवर्तन अपरिहार्य हो जाता है, कुछ ऐसे कारक हैं जो एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ऐसे कारकों को निम्नलिखित बिन्दुओं में समझाया गया है—

1. **संयन्त्र की स्थिति एवं स्थान**—स्थान का चयन अभिन्यास के अन्तिम रूप देने में एक प्रमुख भूमिका निभाता है। दो विभागों का स्थान, अर्थात्, प्राप्तकर्त्ता विभाग और शिपिंग विभाग सबसे महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वे ऐसे स्थान हैं जहाँ कच्चा माल प्राप्त होता है और उत्पादों को क्रमशः बाजार में भेजा जाता है। उन्हें यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि इन दोनों कार्यों को बिना किसी रुकावट के सुचारू रूप से चलाया जाए। विद्युत और जल की अबाधित आपूर्ति के अतिरिक्त, सामुदायिक व्यवहार भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जिसे स्थान को अन्तिम रूप देने से पूर्व ध्यान में रखना चाहिए।

2. **उत्पाद और सामग्री की विशिष्टता**—प्रयुक्त सामग्री की विभिन्न विशेषताएँ (जैसे कि इसका रूप, भार, भौतिक और रासायनिक गुण आदि) संयन्त्र के स्थान के निर्णय पर पर्याप्त प्रभाव डाल सकते हैं। अभिन्यास का सभी मानदण्ड इन पहलुओं से प्रभावित होता है। उत्पादन प्रक्रिया जिसमें जोखिमपूर्ण और असुरक्षित परिचालन सम्मिलित हैं, की एक रेखा आधार में इसके एकीकरण के बजाय सुविधा के अलगाव की आवश्यकता होती है।
3. **सामग्री नियन्त्रण**—सामग्री नियन्त्रण किसी भी विनिर्माण प्रक्रिया का एक अभिन्न भाग है, जिसके परिणामस्वरूप लागत अधिक होती है, परन्तु मूल्य संवर्धन नहीं होता है। इस प्रकार, सामग्री के संचालन की कार्यप्रणाली को समग्र उत्पादन लागत को ध्यान में रखते हुए न्यूनतम सम्भव स्तर पर रखने की आवश्यकता है। सामग्री नियन्त्रण, नियन्त्रण के विभिन्न विनिर्माण चरणों को शामिल करती है। अर्थात् कच्चे माल का नियन्त्रण, चालू कार्य स्कन्ध का व्यवहार्य, निर्मित माल का व्यवहार्य, कचरे तथा अवशिष्ट का नियन्त्रण इत्यादि। संयन्त्र अभिन्यास और सामग्री व्यवहार्य, प्रत्यक्ष रूप से परस्पर सम्बन्धित हैं और संयन्त्र अभिन्यास के निर्माण के दौरान उनके एकीकरण को सुनिश्चित करना आवश्यक है।
4. **विनिर्माण प्रक्रिया**—यह सम्पूर्ण उत्पादन विधि का मूल है और अभिन्यास के निर्माण के समय ऐसी आवयकताओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए। यह एकमात्र सबसे महत्वपूर्ण पहलू है, जो सामग्री के प्रवाह, आवश्यक मशीनों के प्रकार और सामग्री व्यवहार्य सुविधाओं की आवश्यकता के सम्बन्ध में निर्णय का आधार बनाता है। आवश्यक कार्य क्षेत्र तथा अर्धनिर्मित उत्पादन रहतिया के संचयन के लिए अतिरिक्त स्थान के सम्बन्ध में आगे के निर्णय मशीन तथा कच्चे माल के आकार व भार के आधार पर लिए जा सकते हैं। विनिर्माण प्रक्रिया में किसी भी प्रकार की लापरवाही प्रबन्धन को अगले स्तर पर परेशानी का सामना करना पड़ सकता है।
5. **संयन्त्र कार्मिक और कर्मचारी सुविधाएँ**—अभिन्यास को तैयार करते समय, विभिन्न सुविधाओं के लिए उपयुक्त प्रावधान, जैसे आपातकालीन चिकित्सा सहायता, भोजालय, मशीनों की सुरक्षा, वाहन पार्किंग, विश्राम कक्ष आदि पर गम्भीरता से ध्यान दिया जाना चाहिए।
6. **चालू प्रक्रिया स्कन्ध का संग्रहण**—उत्पादन प्रक्रिया के विभिन्न चरणों में सामग्रियों के लिए प्रतीक्षा अवधि को न्यूनतम सीमा तक कम करने की आवश्यकता होती है, क्योंकि लम्बी प्रतीक्षा अवधि का अर्थ कुल लागत में वृद्धि है। अभिन्यास को इस प्रकार की तैयारी से किया जाना चाहिए कि सामग्री आवश्यक से अधिक समय के लिए किन्हीं दो प्रक्रियाओं के मध्य में फँस न जाए। इसे प्राप्त करने के लिए उचित दृष्टि और दूरदर्शिता की आवश्यकता होती है और अभिन्यास को तद्नुसार रूपांकित किया जाना चाहिए।
7. **भवन का रूपरेखा**—व्यक्तिगत कर्मचारी के प्रदर्शन स्तर और समग्र उत्पादकता के लिए अप्रत्यक्ष रूप से भवन की रूपरेखा महत्त्वपूर्ण है। भवन योजना में प्राकृतिक प्रकाश और वायु-संचालन की मात्रा की उपलब्धता सुनिश्चित की जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त, भविष्य में यदि आवश्यक हो, तो भवन में सुविधाजनक विस्तार के लिए पर्याप्त स्थान होना चाहिए।
8. **सेवा सुविधाएँ**—कार्मिकों, सामग्री, मशीनों एवं उपकरण और परिचालन के सम्बन्ध में सेवा सुविधाएँ समग्र लागत को कम करने और उत्पादकता बढ़ाने में दोहरी भूमिका निभाती हैं। इसलिए—अभिन्यास की तैयारी के दौरान उन्हें ध्यान में रखा जाना चाहिए।
9. **कार्य की परिस्थितियाँ**—कार्यक्षेत्र में उत्पादकता की अधिकतमता सुनिश्चित करने की दृष्टि से कार्य क्षेत्र में कार्य करने की स्थिति प्रदान की जानी चाहिए। निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार करने की आवश्यकता है—
   (i) प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष चमक के किसी निशान के साथ पर्याप्त प्रकाश की तीव्रता और गुणवत्ता की उपलब्धता,
   (ii) श्रमिकों के अनुरूप तापमान और आर्द्रता के सम्बन्ध में एक नियन्त्रण तन्त्र होना चाहिए, तथा,
   (iii) विभिन्न प्रक्रियाओं के कारण होने वाले शोर को सम्भव सीमा तक न्यूनतम किया जाना चाहिए।
10. कार्यक्षेत्र एवं उपकरण कार्यक्षेत्रों की डिजाइनिंग इस प्रकार से की जानी चाहिए कि निम्नलिखित शर्तें पूर्ण हो सकें—
   (i) श्रमिकों के गति में कोई बाधा नहीं होनी चाहिए।
   (ii) सामग्री को सुविधाजनक तरीके संभाला जा सकता है, तथा,
   (iii) रखरखाव कर्मचारी वर्ग को विभिन्न मशीनों की मरम्मत या रखरखाव करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

11. **लचीलापन**—समय बीतने के साथ बेहतरीन प्रक्रियाएँ और मशीनरी भी अप्रचलित हो जाती हैं और बदलते समय के साथ गारण्टी में बदलाव होते रहते हैं। उत्पादों की बाजार की माँग में परिवर्तन, या उपयोग की जाने वाली सामग्रियों में परिवर्तन या प्रक्रियाओं में परिवर्तन के कारण, अभिन्यास को परिवर्तित करना आवश्यक है। अभिन्यास को अधिकतम लचीलेपन के लिए डिजाइन किया जाना चाहिए, अपेक्षित परिवर्तन न्यूनतम कठिनाई से प्रभावित होने चाहिए। इस प्रकार, अभिन्यास की तैयारी के समय लचीलेपन को ध्यान में रखा जाना चाहिए।
12. **अवशिष्ट एवं खतरनाक गैसों का निपटान**—अपशिष्ट पदार्थों के समुचित निपटान को सुनिश्चित करने हेतु उपयुक्त प्रणाली स्थापित करने की आवश्यकता है। इस प्रकार के निपटान के लिए एक दूर और सुदूर स्थान का चयन किय जाना चाहिए, ताकि श्रमिकों के साथ-साथ पड़ोसी समुदाय/क्षेत्र अवशिष्ट पदार्थों के हानिकारक प्रभावों से सुरक्षित रहें।

प्र.8. किसी व्यावसायिक इकाई के आकार की माप का विस्तृत विवेचन कीजिए।

उत्तर

व्यावसायिक इकाई के आकार की माप
(Measure of Size of Business Unit)

किसी व्यावसायिक इकाई के आकार को मापने के लिए तथा दो या दो से अधिक इकाइयो के आकार में तुलना करने के लिए अनेक विधियों का प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक विधि को प्रयोग करने की परिस्थितियों एवं सीमाओं का वर्णन निम्नलिखित है—

1. **विनियोजित पूँजी**—जिस इकाई में अधिक मात्रा में पूँजी विनियोजित होती है उसे प्राय: बड़ी इकाई और कम पूँजी वाली इकाई को छोटी इकाई माना जाता है। पूँजी के मापदण्ड का प्रयोग करते समय निम्नलिखित सावधानियाँ रखनी चाहिएँ—
   (i) पूँजी के अन्तर्गत अंश पूँजी तथा ऋण पूँजी दोनों को सम्मिलित कर लेना चाहिए।
   (ii) पूँजी सम्बन्धी उपयुक्त आँकड़ें एकत्रित कर लेने चाहिएँ।
   परन्तु उपर्युक्त मापदण्ड अधिक वैज्ञानिक नहीं माना जाता है क्योंकि एक ऐसी संस्था में जिसकी स्थापना मुद्रा-प्रसार के समय होती है उसमें अपेक्षाकृत अधिक पूँजी लगानी पड़ती है जबकि उतनी ही सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए मन्दीकाल में स्थापित इकाई को कम पूँजी लगानी पड़ती है।
2. **उत्पादन की मात्रा**—जिस संस्था में अधिक मात्रा में उत्पादन होता है उसे बड़ी इकाई और इसके विपरीत जिसमें उत्पादन की मात्रा कम होती है उसे छोटी इकाई कहा जाता है। परन्तु यह मापदण्ड वहीं प्रयोग किया जा सकता है जहाँ विभिन्न इकाइयों में उत्पादन एक-सा हो जैसे—चीनी, सीमेंट आदि। जहाँ उत्पादित वस्तु की प्रकृति में भिन्नता हो वहाँ इस विधि का प्रयोग असंगत माना जाता है।
3. **उत्पादन का मूल्य**—भिन्न-भिन्न इकाइयों के उत्पादन की प्रकृति में भिन्नता के कारण उत्पादन की मात्रा की अपेक्षा उत्पादन के मूल्य के आधार पर इकाई के आकार की माप की जा सकती है। सभी उत्पादनों का मूल्य निकाल कर अन्य इकाइयों के उत्पादनों के मूल्य से तुलना की जा सकती है। परन्तु यह आधार भी असाधारण आर्थिक परिस्थितियों में उपयुक्त सिद्ध नहीं होता, क्योंकि मूल्यों में उतार-चढ़ाव के कारण एक ही इकाई के उत्पादन का मूल्य भिन्न-भिन्न समयों में अलग-अलग हो सकता है।
4. **श्रमिकों की संख्या**—इकाई के आकार की माप श्रमिकों की संख्या से भी की जाती है। जिस संस्था में अधिक श्रमिक कार्य करते हैं उसे बड़ी इकाई तथा जिसमें कम श्रमिक कार्य करते हैं उसे छोटी इकाई कहा जाता है। परन्तु यह आधार भी दोष मुक्त नहीं है क्योंकि प्राय: यह देखा जाता है कि उद्योगपति इकाई के आकार में वृद्धि के अनुपात में श्रमिकों की संख्या नहीं बढ़ाते। एक निश्चित सीमा के उपरान्त श्रमिकों की अपेक्षा मशीनों की संख्या बढ़ाना अधिक उपयुक्त माना जाता है।
5. **भुगतान की गई मजदूरी की मात्रा**—जिस संस्था में दी गई कुल मजदूरी की मात्रा अधिक हो वह संस्था उस संस्था की अपेक्षा बड़ी मानी जायेगी जिसमें अपेक्षाकृत कम मजदूरी दी जा रही है। परन्तु इस मापदण्ड का प्रयोग वहीं किया जा सकता है, जहाँ उत्पादन की तकनीक (Production Technique), उत्पादन की प्रकृति तथा कार्य की दशाओं में एकरूपता हो।
6. **प्रबन्धकीय क्रम-व्यवस्था की जटिलता**—जिस संस्था की प्रबन्धकीय क्रम-व्यवस्था जितनी अधिक जटिल होती है वह इकाई उतनी ही बड़ी मानी जाती है। परन्तु यह आधार इसलिए उपयुक्त नहीं माना जा सकता क्योंकि प्रबन्धकीय क्रम-व्यवस्था की जटिलता एक गुणात्मक (Qualitative) तथ्य है जिसे मापना कठिन है।

7. **शक्ति की मात्रा**—जिस संस्था में अधिक शक्ति का प्रयोग किया जाता है उसे बड़ी इकाई और जिसमें कम शक्ति का प्रयोग किया जाता है उसे छोटी इकाई कहा जाता है। परन्तु यह आधार केवल उन परिस्थितियों में प्रयोग किया जा सकता है जहाँ सम्पूर्ण उत्पादन केवल शक्ति की सहायता से किया जाता है।
8. **प्रयोग किये गये कच्चे माल की मात्रा**—उत्पादन कार्य के लिए प्रयोग किये गये कच्चे माल की मात्रा के आधार पर भी इकाई के आकार की माप जा सकती है। जिस संस्था में अधिक कच्चा माल प्रयोग किया जाता है उसे बड़ी इकाई और इसके विपरीत कम कच्चा माल प्रयोग करने वाली संस्था को छोटी इकाई कहा जाता है। परन्तु इस मापदण्ड का प्रयोग उन इकाइयों के लिए किया जा सकता है जिन इकाइयों द्वारा उत्पादित वस्तु की प्रकृति में एकरूपता हो।
9. **अन्य मापदण्ड**—प्लान्ट की स्थापित क्षमता (Installed Capacity) संस्था द्वारा कमाये गये लाभ तथा सरकार को दिये जाने वाले कर (Tax) की मात्रा से भी इकाई के आकार का अनुमान लगाया जा सकता है।

ध्यान रहे कि व्यावसायिक इकाई के आकार को मापने के लिए वर्णित उपर्युक्त विधियों में से कोई एक विधि सभी परिस्थितियों के लिये उपयुक्त नहीं मानी जा सकती। विभिन्न व्यावसायिक इकाइयों द्वारा निर्मित वस्तुओं की प्रकृति, निर्माण प्रक्रिया, प्रयोग की जाने वाली सामग्री आदि को ध्यान में रखकर ही आकार को मापने की विधि का चुनाव करना चाहिए। प्राय: एक से अधिक विधियों को संयुक्त रूप से प्रयोग करना अधिक श्रेयष्कर होता है। साथ ही इन विधियों में केवल दिशा का ज्ञान होता है मात्रा का नहीं।

प्र.9. अनुकूलतम आकार को प्रभावित करने वाले तत्त्वों को सूचीबद्ध कीजिए।

उत्तर

अनुकूलतम आकार के निर्धारक तत्त्व
(Factors Determining Optimum Size)

इकाइयों के आकार पर निरन्तर अनेक शक्तियों की प्रतिक्रिया होती रहती है। शक्तियों के इस संघर्ष से फर्म को बचाये रखने के लिए प्रबन्धकों को अनेक जोड़-तोड़ करने पड़ते हैं। **प्रो० ई०ए०जी० रोबिन्सन** द्वारा अनुकूलतम आकार को निर्धारित करने वाली निम्न पाँच शक्तियों का उल्लेख किया गया है। ये पाँच तत्त्व हैं—

1. **तकनीकी शक्तियाँ**—उत्पादन तकनीक में निरन्तर होने वाला अन्वेषण तथा स्वचालित यन्त्रों एवं उपकरणों का चलन आकार की अनुकूलता में समायोजन अथवा यथानुसार फेर-बदल की आवश्यकता की समस्या उत्पन्न करते हैं। उत्पादन की प्रक्रियाओं में स्वचालन, श्रम-विभाजन एवं विशिष्टीकरण के द्वारा मितव्ययिताएँ प्राप्त की जा सकती हैं। स्वचालित विशाल मशीनों का प्रयोग व्यावसायिक इकाई के आकार में वृद्धि को आवश्यक बना देता है। उत्पादन कार्यों को अनेक छोटे-छोटे भागों में उप-विभाजित करके श्रम की बचत की जा सकती है, श्रमिकों की कुशलता में वृद्धि की जा सकती है तथा श्रम-संचयी यन्त्रों के बहिष्कार एवं चलन को प्रोत्साहित किया जा सकता है।
   उच्चतर तकनीकी विधियों को अपनाकर यद्यपि इकाई के आकार में वृद्धि की जा सकती है और आकार में वृद्धि से प्राप्त होने वाली मितव्ययिताओं का लाभ उठाया जा सकता है, किन्तु एक सीमा या बिन्दु के बाद और अधिक वृद्धि करना अपेक्षाकृत कम लाभदायक प्रतीत होने लगता है। वस्तुत: अनुकूलतम तकनीकी इकाई (optimum technical unit) की यही सीमा होती है।
2. **वित्तीय शक्तियाँ**—ये शक्तियाँ किसी व्यावसायिक इकाई को अनुकूलतम वित्तीय इकाई (optimum financial unit) के रूप में ढालने में प्रेरक सिद्ध होती है। व्यावसायिक इकाई का बड़ा आकार आवश्यक पूँजी की व्यवस्था करने में सहायक सिद्ध होता है जो तीन रूपों में हो सकता है—(i) अपेक्षाकृत कम लागत पर पूँजी की प्राप्ति, (ii) अधिक अनुकूल शर्तों पर पूँजी की व्यवस्था, तथा (iii) आवश्यक मात्रा में पूँजी प्राप्त करने की सुविधा। उद्योग की प्रकृति का अनुकूलतम वित्तीय इकाई के निर्धारण में महत्वपूर्ण योग होता है। उदाहरण के लिए, इस्पात निर्माण, भारी विद्युत्, भारी मशीन निर्माण, जलयान निर्माण ऐसे उद्योगों की श्रेणी में आते हैं जिनके लिए विशाल आकार ही अपेक्षित होता है। इनमें वित्तीय शक्तियाँ आकार की विशालता को प्रेरित करती हैं। अत: ऐसे उद्योगों में अनुकूलतम इकाई का आकार काफी बड़ा होगा।
3. **बाजार शक्तियाँ**—कच्चे माल की खरीद तथा निर्मित माल के विक्रय में मितव्ययिताओं को प्राप्त करने के लिए इकाइयों को अपने आकार में वृद्धि करने की प्रेरणा प्राप्त होती है। बड़ी इकाइयों को लाभ स्वत: ही प्राप्त हो सकते हैं। ऐसी इकाइयां माल के क्रय में विशेषज्ञों की सेवाएं प्राप्त कर सकती हैं। इसके अतिरिक्त, ये कुशल एवं अनुभवी विक्रय अधिकारियों की नियुक्ति का भार भी वहन करके उनकी सेवाओं का लाभ उठा सकती हैं। विज्ञापन, बाजार सर्वेक्षण, आदि पर भी ये व्यय

कर सकने में समर्थ होती हैं। वस्तुत: आकार में वृद्धि को प्रोत्साहन बड़े पैमाने पर क्रय-विक्रय से प्राप्त होने वाले लाभों के कारण मिलता है, किन्तु विशिष्ट एवं खर्चीला विक्रय संगठन भी एक सीमा के बाद अपनी उपयोगिता को बनाये रखने में अपने को असमर्थ पाता है, क्योंकि बाजार की दशाओं एवं आधुनिक विक्रय की विधियों के साथ-साथ प्रत्येक व्यावसायिक इकाई के लिए यह आवश्यक होता है कि वह अपने विक्रय संगठन की लोच को बनाये रखे।

4. **प्रबन्धकीय शक्तियाँ**—आधुनिक औद्योगिक संगठन प्रबन्ध विशेषज्ञों की सेवाओं की अपेक्षा करता है जो कि एक व्ययसाध्य कार्य होता है। प्रबन्धकीय कार्यों का विभाजन एवं उपविभाजन करके उनका दायित्व विशेषज्ञों को सौंप दिया जाता है। बड़ा आकार प्रबन्धकीय व्ययों के अधिक भार को सरलता से सहन कर सकता है। प्रबन्धकीय एवं प्रशासनिक लागतें स्थिर लागतों (fixed costs) की श्रेणी में आती हैं। अत: आकार में वृद्धि होने पर उत्पादन की प्रति इकाई प्रबन्धकीय-लागत (per unit managerial cost) कम होती चली जाती है। यदि कोई औद्योगिक इकाई अपने उत्पादन के आकार में तो वृद्धि कर लेती है, किन्तु अपनी प्रबन्ध व्यवस्था में यथानुकूल समायोजन करने की क्षमता नहीं रखती है, तो उसका ऐसा बढ़ा हुआ आकार अनुकूलतम नहीं होगा।
प्रबन्ध की अत्याधुनिक व्यवस्था चूंकि खर्चीली होती है, अत: यह औद्योगिक इकाइयों के बड़े आकार को प्रोत्साहित और प्रभावित करती है। उच्च कोटि की प्रबन्धकीय योग्यता को बनाये रखने के उद्देश्य से एक सीमा के बाद व्यावसायिक इकाई के आकार में वृद्धि को रोका जाता है।

5. **अनिश्चितता एवं जोखिम तत्त्व**—बाहरी दशाओं में होने वाले परिवर्तनों को कोई व्यावसायिक इकाई न तो रोक सकती है और न उनके विषय में शत-प्रतिशत सही अनुमान ही लगा सकती है। अनुकूल परिवर्तन तो उसकी स्थिति को और भी उत्तम बना देते हैं, किन्तु प्रतिकूल परिवर्तन उसके समक्ष अनिश्चितता एवं जोखिम की समस्याएं उत्पन्न करते हैं, जिनसे निरन्तर संघर्ष करते हुए अपने अनुकूलतम आकार को स्थापित रखने के लिए उसे अनेक प्रकार के समायोजन करने पड़ते हैं। परिवर्तन चार प्रकार के हो सकते हैं जो निम्नलिखित हैं—
   (i) **स्थायी परिवर्तन**—माँग में स्थायी कमी दो कारणों से हो सकती है। प्रथम, उत्पादन की विधि में आमूल परिवर्तन हो जाने के कारण तथा द्वितीय, उपभोक्ताओं की रुचियों में स्थायी परिवर्तन हो जाने से ऐसी दशा में औद्योगिक इकाइयों की अनुकूलतमता समाप्त हो जाती है और बड़ी इकाइयों में भारी पूँजी विनियोग के कारण उचित समायोजनों को पूरा करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। हां छोटे उद्योगों में ऐसा करने की अधिक क्षमता होती है।
   (ii) **चक्रशील परिवर्तन**—इन परिवर्तनों में माँग में होने वाले अल्पकालीन परिवर्तनों को सम्मिलित किया जाता है। मन्दी के काल में ऐसे उद्योगों को माँग में गिरावट का सामना करना पड़ता है जिसके द्वारा उत्पादित वस्तुओं की माँग की प्रकृति लोचपूर्ण (elastic) होती है। ऐसी स्थिति का समायोजन करने के लिए औद्योगिक इकाइयां प्राय: उत्पादन को सीमित करके साम्य स्थापित करने का प्रयास करती हैं। कमजोर तथा अक्षम इकाइयों को बन्द भी किया जा सकता है, किन्तु इस उपाय को अपनाने की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक उपाय यह होता है कि सभी उत्पादक इकाइयों की उत्पादन मात्रा में कुछ कमी कर दी जाय।
   (iii) **मौसमी परिवर्तन**—अनेक उद्योगों में मौसम के अनुसार, परिवर्तन होते हैं। कुछ उद्योग ऐसे होते हैं जिनके उत्पादन की माँग साल भर रहती है, किन्तु उनमें उत्पादन वर्ष के कुछ महीनों में ही होता है, जैसे चीनी उद्योग। इसके विपरीत, कुछ उद्योग ऐसे होते हैं जिनमें उत्पादन साल भर होता है, किन्तु उनके उत्पादन की माँग वर्ष के कुछ महीनों में ही होती है, जैसे ऊनी वस्त्र उद्योग। ऐसी इकाइयों में उत्पादन की मात्रा का निर्धारण उपभोग की औसत मात्रा के आधार पर किया जाना चाहिए। इसके विपरीत, कतिपय उद्योगों की प्रकृति इस प्रकार की होती है, जिनमें कि उत्पादन एवं माँग प्राय: किसी मौसम विशेष तक ही सीमित होते हैं, जैसे शर्बत एवं शीतल पेय उद्योग, आदि।
   (iv) **अनिश्चित परिवर्तन**—माँग की अनिश्चितता के कारण ये परिवर्तन हो सकते हैं, जैसे ऑर्डर सप्लाई करने वाले उद्योगों में ऑर्डर की मात्रा एवं संख्या के विषय में भावी अनुमान लगाना कठिन होता है। ऐसी औद्योगिक इकाइयों के लिए यह उत्तम होगा कि वे कतिपय ऐसी वस्तुओं का उत्पादन भी करें जिनकी माँग की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक निश्चित हो।

❑

UNIT-IV

व्यावसायिक संयोजन

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. व्यावसायिक संयोजन का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

उत्तर व्यावसायिक संयोजन का अर्थ—एक सामान्य उद्देश्य (जो सामान्यत: प्रतिस्पर्धा को कम करने के लिए होता है) को प्राप्त करने के प्रयास में कई व्यावसायिक इकाइयों द्वारा स्थापित संयोजनों को व्यावसायिक संयोजन के रूप में जाना जाता है। यदि संयोजन समेकन के माध्यम से विकसित किया जाता है तो ये संयोजन तीव्रता से हो सकते हैं तथा यदि संघ के माध्यम से किया जाता है तो ये शिथिल होते हैं। यदि एक 'सामान्य व्यावसायिक लक्ष्य के लिए प्रयास करने वाले व्यक्तियों का संघ' किसी व्यावसायिक संगठन का वर्णन करता है, तो व्यक्तियों का मिश्रित संघ व्यावसायिक संयोजन का वर्णन करता है।

प्र.2. व्यावसायिक संयोजन को परिभाषित कीजिए।

उत्तर एल०एच० हैनी के अनुसार, "संयोजित करने का अर्थ सम्पूर्ण भाग का एक करना है; और कुछ सामान्य उद्देश्यों के अभियोजन के लिए एक सम्पूर्ण या समूह बनाने के लिए एक संयोजन केवल व्यक्तियों का एक संघ है।" व्यवसाय के संयोजन का मुख्य उद्देश्य अधिकतम लाभ अर्जित करना होता है। फर्मों के मध्य संयोजन स्थायी या अस्थायी होता है। यह लिखित या मौखिक संयोजन भी हो सकता है।

प्र.3. लम्बवत् संयोजन (Vertical Combination) के किन्हीं दो लाभों को लिखिए।

उत्तर लम्बवत् संयोजन के लाभ—

1. यह भण्डारण, रसद, क्रय और विक्रय जैसे क्षेत्रों में अर्थव्यवस्था लाता है।
2. अधिक उत्पादन के मामले कम हो जाते हैं, विपणन और विज्ञापन की लागत कम हो जाती है और मध्यस्थों का लाभ भी खत्म हो जाता है।

प्र.4. चक्रीय संयोजन की क्या हानियाँ हैं?

उत्तर चक्रीय संयोजन की हानियाँ—

1. परिचालन लागत एक निश्चित बिन्दु तक कम हो जाती है।
2. इसमें आय और धन का असमान वितरण हो सकती है।

प्र.5. श्रमिक संघ क्या है?

उत्तर श्रम संघ—श्रम संघ से अभिप्राय मजदूरों के संघ से है। इन श्रम संघों का निर्माण श्रमिकों के हितों की रक्षा तथा उनकी समस्याओं के समाधान के लिए किया जाता है। भारतीय ट्रेड यूनियन अधिनियम के अनुसार, "ट्रेड यूनियन एक प्रकार का संयोजन है जिसका निर्माण, कर्मचारी तथा नियोक्ता के बीच सम्बन्धों को नियन्त्रित करने अथवा किसी व्यापार अथवा व्यवसाय पर प्रतिबन्धित दशाओं को लागू करने के उद्देश्य से किया जाता है।" वस्तुत: श्रम संघ कर्मचारियों का एक संगठन है जो कर्मचारियों के हितों एवं कल्याण के लिए बनाया जाता है।

प्र.6. युक्तिकरण की किन्हीं तीन तकनीकों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर युक्तिकरण की तकनीकें निम्नलिखित हैं—

1. **आधुनिकीकरण**—इसमें उत्पादन के विधियों को उन्नत करने के लिए वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करना शामिल है।

2. **मशीनीकरण**—इसमें उन यांत्रिक उपकरणों का प्रयोग करना शामिल है जहाँ इसकी आवश्यकता होती है। पुरानी एवं व्यर्थ मशीनों को नए मशीनों द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया जाता है।
3. **मानकीकरण**—इसमें सभी उत्पादों के लिए एक मानक या बेंचमार्क स्थापित करना शामिल है ताकि गुणवत्ता अंतिम उपभोक्ता तक पहुंचाई जा सके।

प्र.7. युक्तिकरण के क्रियान्वयन में कौन-सी व्यावहारिक बाधाएँ हैं? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर सिद्धान्त रूप में विवेकीकरण को समझना जितना कठिन है, व्यावहारिक रूप से उसे क्रियान्वित करना उससे भी अधिक दुरुह कार्य है। परम्परागत दृष्टिकोण वाले उद्योगपतियों एवं यथास्थिति के अभ्यस्त श्रमिकों, दोनों ही ओर से विवेकीकरण की उपयोगिता के विषय के शंकाएं एवं आलोचनाएं प्रस्तुत की जाती हैं। उद्योगपति विवेकीकरण के द्वारा अपने संकुचित एवं व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति का अवसर देखते हैं, जबकि श्रमिक उद्योग के विवेकीकरण को उद्योगपतियों द्वारा उनके शोषण के लिए लागू की जाने वाली एक छलपूर्ण तथा कपटपूर्ण योजना के रूप में देखते हैं। इन दोनों ही चरम स्थितियों या दृष्टिकोणों में तालमेल बिठाने के लिए अपार धैर्य एवं उच्च स्तर की प्रबन्ध कुशलता की अपेक्षा होती है।

प्र.8. युक्तिकरण के किन्हीं दो क्षेत्रों को बताइए।

उत्तर युक्तिकरण के दो प्रमुख क्षेत्र निम्नलिखित हैं—

1. **वित्त का क्षेत्र**—वित्त के क्षेत्र में विवेकीकरण का उद्देश्य संस्था की समस्याओं को हल करना है। इसके अन्तर्गत निम्न को शामिल किया जाता है—(a) आवश्यक पूँजी का निर्धारण, (b) वित्त के उचित स्रोतों का चयन, (c) अति-पूँजीकरण एवं अल्प-पूँजीकरण की समस्याओं को दूर करना, (d) पूँजी का उचित एवं उत्पादक कार्यों में प्रयोग।
2. **प्रबन्ध का क्षेत्र**—प्रबन्ध के क्षेत्र में भी विवेकीकरण की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। विवेकीकरण के अन्तर्गत प्रबन्ध के क्षेत्र में मुख्य रूप से वैज्ञानिक प्रबन्ध को अपनाया जाता है तथा अधिकार और उत्तरदायित्वों का स्पष्ट विभाजन किया जाता है।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. व्यावसायिक संयोजन की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

व्यावसायिक संयोजन की विशेषताएँ
(Characteristics of Business Combination)

व्यावसायिक संयोजनों की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. **उत्पादन में अर्थव्यवस्था**—व्यावसायिक संयोजन की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह उत्पादन में मितव्ययिता प्रदान करता है। व्यापार संयोजन के सम्बन्ध में प्रतिस्पर्धी फर्मों का एकीकरण होता जिससे वे दीर्घ पैमाने पर उत्पादन का लाभ प्राप्त कर सकते हैं। कच्चा माल दीर्घ मात्रा में क्रय किया जाता है। मानक उत्पादों का उत्पादन विशेष ज्ञान के साथ होता है, व्यवसाय की परिचालन लागत को न्यूनतम करता है तथा उत्पाद का मूल्य एक बिन्दु पर निश्चित की जाती है जिससे अधिकतम लाभ प्राप्त होता है।
2. **प्रभावी प्रबन्धन**—व्यवसाय के अन्दर प्रभावी व्यावसायिक प्रथाओं की सुविधा को व्यवसाय संयोजन के एक महत्त्वपूर्ण लक्षण या विशेषता के रूप में देखा जा सकता है। व्यावसायिक संयोजन के प्रबन्धन में अधिक से अधिक केन्द्रीकरण होता है। इसके अतिरिक्त, अपनी उत्तम वित्तीय स्थिति के कारण इस प्रकार की फर्में उच्च क्षतिपूर्ति का भुगतान करके सरलता से प्रतिभाशाली, कुशल एवं नवीन कर्मचारियों को रख सकती हैं। कुशल प्रबन्धक जो पर्याप्त रूप से अनुभवी होते हैं, वे भी इस प्रकार की दीर्घ फर्मों में कार्य करने का भी लाभ प्राप्त कर सकते हैं।
3. **श्रम का विभाजन**—व्यवसाय संयोजन की अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता को देखा जा सकता है क्योंकि यह प्रभावी एवं कुशल जनशक्ति विभाजन की सुविधा प्रदान करता है तथा संगठन में सुचारू रूप से कार्यप्रवाह की सुविधा प्रदान कर सकता है।
4. **हानिकारक प्रतियोगिता**—हानिकारक प्रतिस्पर्धा के कारण अधिकांश संगठनों को रोका जा सकता है। शक्तिशाली प्रतिस्पर्धा के विरोध को दूर करने के लिए मूल्य का प्रबन्धन करने तथा अधिक उत्पादन को रोकने के लिए प्रतिस्पर्धी संगठनों में कुछ समझदारी विकसित की गई है। वैकल्पिक रूप से, आपसी क्रियाओं के माध्यम से आत्महित में वृद्धि करके संयोजन का निर्माण किया जा सकता है।

प्र.2. व्यावसायिक संयोजन के उद्देश्यों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

व्यावसायिक संयोजन के उद्देश्य
(Objectives of Business Combination)

व्यावसायिक संयोजन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. **निष्क्रिय कार्यशील पूँजी का उपयोग करने के लिए**—जब व्यवसायिक इकाइयाँ एक अलग और स्वतन्त्र तरीके से कार्य करती हैं, तो उनकी कुल कार्यशील पूँजी उसकी आवश्यकताओं से परे हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप देश की दुर्लभ संसाधनों की बर्बादी के कारण एक निष्क्रिय पूँजी प्राप्त होती है। व्यावसायिक संयोजन निष्क्रिय पूँजी का उचित उपयोग सुनिश्चित करती है।
2. **नवीनतम प्रौद्योगिकी का उपयोग करने के लिए**—वर्तमान समय में नवीन तकनीकी का तीव्रता से विकास हो रहा है। नई और उन्नत मशीनरी, उपकरण और यंत्र प्रत्येक समय बाजार में पेश किए जाते हैं। ऐसी नवीनतम तकनीक को एक व्यवसाय द्वारा जल्दी से अपनाया जा सकता है जो संयुक्त होते हैं। इससे यह सुनिश्चित होता है कि उत्पादन की प्रक्रिया सुचारू रूप से चल रही है, इससे उत्पादकता के स्तर में वृद्धि होती है।
3. **अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धा करने के लिए**—वैश्विक बाजारों में प्रतिस्पर्धा व्यावसायिक संयोजन के माध्यम से की जा सकती है। एक बड़ी व्यावसायिक इकाई में वितरण के व्यापक माध्यम और बड़ी संख्या में कुशल और प्रशिक्षित कर्मचारी होते हैं। इसलिए, नए बाजारों में प्रवेश करने से, एक बड़ी व्यावसायिक इकाई के संचालन में विविधता आती है। इसके अतिरिक्त व्यवसाय संयोजन में बड़ी संख्या में व्यक्ति शामिल होते हैं। इसलिए, फर्मों का एक संयोजन, एक बढ़ी हुई मस्तिष्क की शक्ति का परिणाम है क्योंकि इसमें फर्म के समग्र सुधार के बारे में सोचने वाले व्यक्तियों की संख्या बढ़ जाती है।
4. **अनुसंधान कार्य को सुगम बनाने के लिए**—व्यवसायिक संयोजन कम प्रतिस्पर्धा, उत्पादन लागत और विपणन प्रयासों की कम मात्रा का परिणाम है। इससे दो संयुक्त फर्मों के लाभ और पूँजीगत आय में वृद्धि होती है। व्यावसायिक संयोजन के परिणामस्वरूप अधिक संख्या में विशेषज्ञ तथा पेशेवर आते हैं। चूँकि अनुसंधान कार्य उच्च स्तर पर उत्पादन करते हैं, इसलिए, ऐसे पेशेवरों और विशेषज्ञों द्वारा वस्तुओं और सेवाओं पर शोध प्रारम्भ किया जा सकता है। इसलिए नए उत्पादों को अनुसंधान के माध्यम से बाजार में लाया जा सकता है जो बदले में, कम्पनी की छवि में सुधार करता है।
5. **प्रतिस्पर्धा को कम करने के लिए**—'मेरे शत्रु का शत्रु मेरा मित्र है', एक पुरानी कहावत का अनुसरण व्यावसायिक फर्में करती हैं। तीव्र बाजार प्रतिस्पर्धा के कारण, फर्म बाजार के बड़े हिस्से पर अधिग्रहण करने में सक्षम नहीं हैं। व्यवसाय संयोजन के परिणामस्वरूप बड़ी इकाई का निर्माण होता है। यह बड़ी इकाई दो संयुक्त व्यवसायों के बाजार अंशों को जोड़ती है और बाजार पर नियन्त्रण करने में भी सक्षम हैं। ऑनलाइन व्यवसाय भी इस प्रकार के नियम का पालन करते हैं। उदाहरण के लिए—दो ऑनलाइन व्यवसायों के संयोजन से उनके बाजार में हिस्सेदारी बढ़ जाती है। वे बेहतर विपणन तकनीक विकसित करने में सक्षम भी होते हैं क्योंकि उनकी व्यावसायिक विकास समूह भी संयुक्त हो जाते हैं।
6. **विक्रय मूल्य बनाए रखना**—विक्रय की प्रक्रिया में विक्रय बिन्दु को बनाए रखना सरल नहीं होता। अधिक विक्रय करने के लिए विभिन्न प्रतियोगियों द्वारा प्रतिस्पर्धी दरों पर वस्तुएँ और सेवाएँ प्रस्तुत की जाती हैं। एक व्यावसायिक संयोजन में, उत्पादों को प्रतियोगियों की तुलना में कम कीमतों पर पेश किया जाता है, जिससे आसानी से विक्रय मूल्य बनाए रखा जाता है।

प्र.3. व्यावसायिक संयोजन के क्या लाभ हैं? बताइए।

उत्तर

व्यावसायिक संयोजन के लाभ
(Advantages of Business Combination)

व्यावसायिक संयोजन के लाभ इस प्रकार हैं—

1. **पर्याप्त पूँजी**—एक लघु व्यवसाय वित्त के अभाव से ग्रस्त होता है। व्यावसायिक संयोजनों का लाभ यह है कि यह विभिन्न कम्पनियों को अपनी पूँजी जमा करने की अनुमति देता है और यह व्यक्तिगत संगठन के लिए जोखिम को कम

करता है। इसके अतिरिक्त संयुक्त इकाई की साख प्राय: एकल की तुलना में बेहतर होती है। परिणामस्वरूप यह कहीं अधिक आसान शर्तों पर आवश्यक बाहरी वित्त प्राप्त करने में सक्षम होता है। संगठन मानकीकृत उपकरणों के रूप में विनिर्माण में पैमाने की अर्थव्यवस्थाओं को प्राप्त करने में सक्षम है जो कम लागत और बेहतर गुणवत्ता पर बड़ी मात्रा में उत्पादन कर सकते हैं।

2. **कुशल प्रशासन और प्रबन्धन**—व्यवसाय संयोजन प्रशासन के केन्द्रीकरण के साथ-साथ प्रबन्धकीय गतिविधियों से भी लाभ प्राप्त करता है। संगठन सर्वोत्तम उपलब्ध मानव संसाधनों से भी लाभ उठाता है और उन्हें सर्वोत्तम वेतन एवं अन्य लाभ दे सकता है। संगठन के प्रबंधक भी बेहतर परिस्थितियों में कार्य करने का आनंद लेते हैं। ये स्थितियाँ प्रबंधकीय क्षमताओं में वृद्धि करती हैं।
3. **अनुसंधान सुविधाएँ**—संयुक्त इकाई के पास पर्याप्त वित्तीय संसाधन उपलब्ध होते हैं। संचालन के व्यक्तिगत स्तर की तुलना में, संयुक्त संस्थाओं के संचालन के क्षेत्र में प्रकृति में व्यापक होता है। व्यावसायिक संयोजनों का एक और लाभ संगठन में प्रतिभाशाली शोधकर्ताओं की उपलब्धता है जो उत्पादन को कम करने के साथ-साथ विपणन लागतों और नए बाजारों को पहचानने में सहायता करती हैं। व्यक्तिगत संस्थाओं को विज्ञापन, बिक्री और प्रचार पर बड़ी राशि व्यय करनी पड़ती है। एक बड़े उपक्रम में लागत बहुत कम हो जाती है क्योंकि विज्ञापन लागत बड़े बजट के कारण कम हो जाती है जो संगठन के विक्रय के कारण हैं।
4. **लागत में कमी**—संयुक्त इकाई द्वारा संसाधनों का बेहतर उपयोग भी होता है। जैसे-जैसे विनिर्माण का स्तर बढ़ता है, उत्पादन की प्रति इकाई लागत भी कम हो जाती है। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, इसमें विज्ञापन, बिक्री संवर्धन, प्रचार और व्यक्तिगत बिक्री सहित विपणन लागत कम हो जाती है। इसलिए, संयोजन प्रभावों के कारण उत्पादन की समग्र लागत काफी कम हो जाती है।

प्र.4. व्यावसायिक संयोजन में कौन-सी समस्याएँ हो सकती हैं? वर्णन कीजिए।

उत्तर

व्यावसायिक संयोजन में समस्याएँ
(Problems in Business Combination)

व्यावसायिक संयोजन में समस्याएँ इस प्रकार हैं—

1. **एकाधिकार**—संयोजन एकाधिकार जैसे स्थितियों को जन्म दे सकता है। एकाधिकार बाजार में बहुत सारी विकृतियाँ उत्पन्न करता है। एकाधिकार का समुदाय पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। इससे स्थानीय बाजार बन्द हो सकते हैं जिसके परिणामस्वरूप बेरोजगारी उत्पन्न हो सकती है। एक व्यावसायिक संगठन सामान्यत: लाभ अर्जित करने के लिए चलाया जाता है। एक संयोजन सामान्यत: बाजार मूल्य से अधिक उत्पाद का मूल्य निश्चित करता है। उपभोक्ताओं के पास इस मूल्य को स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई दूसरा विकल्प नहीं होता है। कच्ची सामग्री के आपूर्तिकर्ताओं को भी मूल्य स्वीकार करने के लिए विवश किया जाता है। उन्हें संयोजन द्वारा जो भी मूल्य उद्धृत की जाती है, उसी पर कच्ची सामग्री की आपूर्ति करनी होती है। इसमें श्रमिकों का भी शोषण होता है तथा उन्हें बहुत ही निम्न स्तर की मजदूरी स्वीकार करनी पड़ती है। काफी बार उत्पाद की गुणवत्ता भी संयोजन के लिए किसी भी सार्थक प्रतियोगिता के अभाव में प्रभावित होती है।
2. **अति-पूँजीकृत बाजार**—एक संयोजन का एक और बड़ा दोष यह है कि इससे संसाधनों का अत्यधिक पूँजीकरण होता है। संयोजन बाजार से अतिरिक्त पूँजी एकत्रित करने की प्रवृत्ति रखते हैं। संयोजन की बाजार में कोई प्रतिस्पर्धा नहीं होती है तथा इससे ग्राहकों को वस्तुओं व सेवाओं का न्यूनतम विकल्प प्रदान किया जाता है। संयोजन द्वारा एकत्र की गई अतिरिक्त पूँजी प्राय: बर्बाद हो जाती है। दीर्घकालीन में यह संयोजन की दक्षता को कम कर देता है। इससे संयोजन का लाभ स्तर तथा साख कम हो जाता है।
3. **पुरानी कम्पनियों और लघु कम्पनियों की समाप्ति**—संयोजन से पुराने संगठन की समाप्ति हो जाती है। कर्मचारी नए संगठन में प्राय: अलग महसूस करते हैं तथा सांस्कृतिक समस्याएँ भी उत्पन्न होती है। नए संगठन में पहचान की हानि निश्चित होती है। संयोजन छोटे उपक्रमों के अस्तित्व को भी कठिन बनाता है। क्योंकि इससे वे बंद होने के कगार पर आ जाते हैं। इससे बड़े स्तर पर बेरोजगारी व अन्य आर्थिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।

4. **नए प्रबन्धन में दबाव**—प्रबन्धन की नवीन संरचना के कारण दबाव हो सकता है। एक व्यक्तिगत इकाई की तुलना में संयोजन का प्रबन्धन करना अधिक कठिन हो सकता है।
5. **धन का असमान वितरण**—संयोजन प्राय: समाज में धन के असमान वितरण का कारण बनता है। यह गरीब और अमीर के मध्य की दूरी को बढ़ाता है। इससे धन कुछ व्यक्तियों के हाथ में ही केन्द्रित हो जाता है।
6. **जनता के विचार**—जनता की राय प्राय: संयोजन के विरुद्ध होती है। संयोजन सदैव एक इकाई के रूप में देखा जाता है जो जनता का शोषण करने और अनावश्यक लाभ लेने के लिए होता है। यह संयोजन प्रबन्धन के प्रमुख चरणों को भी जोड़ता है, इससे उत्पादन की लागत बढ़ जाती है।

प्र.5. क्या संयोजन वांछनीय है? इस विषय में अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर

क्या संयोजन वांछनीय है?
(Is Combination Desirable?)

संयोजन के गुण-दोषों का अध्ययन करने के बाद इस प्रश्न पर भी विचार किया जा सकता है कि क्या आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से संयोजन वांछनीय है? इस सम्बन्ध में ऐसा आभास होता है कि देश के औद्योगिक और व्यापारिक विकास के लिए संयोजन को आधार बनाना ही होगा क्योंकि अनार्थिक प्रतिस्पर्धा व्यावसायिक जगत के लिए घातक होती है और संयोजन प्रतिस्पर्धा के विरुद्ध एक संगठित मोर्चा होता है। इसके अतिरिक्त, संयोजन से बड़े पैमाने के उत्पादन के लाभ, अनुसन्धान कार्य, व्ययों में बचत, माँग-पूर्ति में सन्तुलन, विदेशी सहयोग, नवीन तकनीकों का विकास आदि के लाभ प्राप्त होते हैं जिनसे प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से समाज को लाभ होता है। अत: संयोजन को वांछनीय कहा जा सकता है।

लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि संयोजन से प्राप्त होने वाले लाभों के वशीभूत होकर व्यापारियों को संयोजन की आड़ में मनमानी करने की खुली छूट दे दी जाए। समय बीतने के साथ ही संयोजन अवांछनीय कार्यों के पर्याय बन जाते हैं। अत: इनके दोषों तथा कुप्रभावों से बचने के लिए सरकार को तो प्रयत्न करने ही चाहिए, साथ में समाज को भी जागरूक रहना चाहिए। समुदाय के हितों की रक्षा के लिए सरकार को कठोर कदम उठाने से भी नहीं हिचकना चाहिए। समाज का भी यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह समाज विरोधी कार्यों का खुलकर विरोध करे तथा संयोजनों को नियन्त्रित करने के लिए सरकार को पूरा-पूरा सहयोग दे। जनता के आन्दोलन के कारण अमेरिकी सरकार को प्रन्यास के विरुद्ध कानून बनाकर उन्हें अवेध घोषित करना पड़ा, जबकि अमेरिका पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का सबसे बड़ा समर्थक देश है। अत: संयोजन को नियन्त्रण में रखकर देश के भरपूर विकास के लिए उसका उपयोग किया जाना चाहिए।

संक्षेप में, कहा जा सकता है कि संयोजन गीली मिट्टी के समान है जिससे आप चाहें तो देवता की मूर्ति बना ले चाहे शैतान की। संयोजन तो एक प्रकार की दवाई है। उपयुक्त बीमारी में उपयुक्त दवाई हमेशा लाभकारी होकर शरीर को निरोग कर इसके विकास में सहायता देती है। लेकिन वही अच्छी दवाई यदि अत्यधिक मात्रा में ले ली जाती है या असम्बन्धित बीमारी की स्थिति में ले ली जाती है तो शरीर के विकास के स्थान पर उसके विनाश का कारण बन जाती है। वस्तुत: जैसे दवाई की अच्छाई उसके सदुपयोग में है, ठीक वैसे ही संयोजन की उपयोगिता इसके दोष मुक्त उपयोग में है।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि संयोजन की अपनी कोई बुराई नहीं है। इसकी बुराई एवं दोष इसके दुरुपयोग में निहित हैं जिन्हें प्रत्येक स्थिति में नियन्त्रित करने की आवश्यकता है। तभी संयोजन, अश्रु-रहित (Tearless) बन सकता है तथा देश के औद्योगिक विकास में सहयोग दे सकता है। यह तो एक प्रकार से अणुशक्ति है जिसका उपयोग विकास कार्यों और विध्वंस कार्यों दोनों के लिए किया जा सकता है। इस प्रकार के संयोजन आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टि से तभी वांछनीय कहे जा सकते हैं, जबकि उनका उपयोग औद्योगिक तथा व्यापारिक विकास के लिए किया जाए।

प्र.6. क्षैतिज एवं उदग्र संयोजन में अन्तर बताइए।

उत्तर

क्षैतिज एवं उदग्र संयोजन में अन्तर
(Differences between Horizontal and Vertical Combination)

क्षैतिज एवं उदग्र संयोजन का अलग-अलग अध्ययन कर लेने के पश्चात् इन दोनों में अन्तर अग्रलिखित प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है—

क्र० सं०	अन्तर का आधार	क्षैतिज संयोजन	उदग्र संयोजन
1.	**अर्थ**	एक ही उद्योग में लगी हुई तथा एक ही प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करने वाली या एक ही व्यवसाय में लगी हुई दो या दो से अधिक इकाइयों के आपस में मिलने को क्षैतिज संयोजन कहते हैं।	जब एक-दूसरे का पूरक कार्य करने वाली दो या दो से अधिक इकाइयाँ आपस में मिल जाती हैं तो इसे उदग्र संयोजन कहते हैं।
2.	**उद्देश्य**	क्षैतिज संयोजन का मुख्य उद्देश्य आपसी प्रतियोगिता को समाप्त करना है।	उदग्र संयोजन का मुख्य उद्देश्य उत्पादन की सभी आवश्यकताओं में समन्वय एवं नियन्त्रण स्थापित करना है।
3.	**कच्चे माल की पूर्ति पर नियन्त्रण**	इसमें कच्चे माल की पूर्ति पर कोई नियन्त्रण नहीं होता।	इसमें सर्वप्रथम इकाई को छोड़कर अन्य सभी इकाइयों को कच्चे माल की पूर्ति का आश्वासन रहता है।
4.	**निर्मित माल की बिक्री का आश्वासन**	इसमें निर्मित माल की बिक्री का कोई आश्वासन नहीं होता।	इसमें अन्तिम इकाई को छोड़कर शेष सभी आन्तरिक इकाइयों को अपने तैयार माल की बिक्री की चिन्ता नहीं होती क्योंकि उनके उत्पादन को अगली इकाई द्वारा क्रय कर लिया जाता है।
5.	**प्रतिस्पर्द्धा की समाप्ति**	इस प्रकार के संयोजन से पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा समाप्त हो जाती है।	इस प्रकार के संयोजन में आपसी प्रतिस्पर्द्धा कम नहीं होती क्योंकि एक-दूसरे का पूरक कार्य करने वाली इकाइयों का ही मिलन होता है। समान व्यवसाय करने वाली संस्थाएँ अलग-अलग नहीं रहती हैं जिससे प्रतिस्पर्द्धा यथावत् बनी रहती है।
6.	**बड़े पैमाने के उत्पादन के लाभ**	क्षैतिज संयोजन में बड़े पैमाने के उत्पादन के लाभ प्राप्त होते हैं।	इसमें बड़े पैमाने पर उत्पादन के लाभों की प्राप्ति नहीं हो पाती।
7.	**भण्डारण**	इसमें कच्चे माल का भण्डारण आवश्यक होता है।	इसमें कच्चे माल के भण्डारण की कोई आवश्यकता नहीं होती क्योंकि एक प्रक्रिया का माल स्वत: अगली प्रक्रिया को हस्तान्तरित हो जाता है।

प्र.7. व्यावसायिक संयोजनों के विभिन्न प्रारूपों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

व्यावसायिक संयोजनों के प्रारूप
(Forms of Business Combinations)

स्थापना की दृष्टि से व्यावसायिक संयोजन को निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

I. **साधारण परिषदें/संघ** (Simple Associations)—

(अ) व्यापारिक परिषद्/संघ (Trade Associations)

(ब) चैम्बर ऑफ कॉमर्स (Chamber of Commerce)

(स) अनौपचारिक या भद्र पुरुषों के समझौते (Informal Agreements)

(द) श्रम संघ (Trade Unions)

II. **संयुक्त परिषदें/संघ** (Compound Associations)—

1. **परिसंघ/संधान** (Federations)

(अ) पूल/संघ (Pools)

(ब) कार्टेल/उत्पादक संघ (Cartels)

2. **समेकन/संघनन** (Consolidation)
   (अ) अपूर्ण समेकन/संघनन (Incomplete Consolidation)
      (i) प्रन्यास (Trust)
      (ii) सामुदायिक हित (Community of Interest)
      (iii) सूत्रधारी कम्पनी (Holding Company)
   (ब) पूर्ण समेकन/संघनन (Complete Consolidation)
      (i) संविलयन (Merger)
      (ii) सम्मिश्रण (Amalgamation)

प्र.8. व्यापारिक परिषद् क्या है? इसकी विशेषताओं, उद्देश्य व कार्य का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

व्यापारिक परिषद्/संघ
(Trade Association)

जब किसी व्यापार या उद्योग में लगी हुई इकाइयाँ अपने सामूहिक, आर्थिक एवं व्यावसायिक हितों की रक्षा तथा उनके प्रवर्तन के लिए अथवा सामान्य समस्याओं के समाधान के लिए आपस में मिलकर अपना एक संघ बना लेती हैं तो ऐसे संघ को व्यापारिक परिषद् या मण्डल के नाम से पुकारा जाता है। **रिचर्ड नौरवैन औवेन्स** (Richard Norwan Owens) के अनुसार "व्यापारिक परिषद् एक ही उद्योग अथवा व्यापार की स्वतन्त्र व्यावसायिक इकाइयों का अलाभकारी संगठन है।"

ये संघ अथवा परिषद् उद्योग या स्थान के आधार पर बनाये जा सकते हैं जिनके निर्माण के लिए किसी प्रकार की वैधानिक कार्यवाही की आवश्यकता नहीं होती है। ये परिषद् प्राय: व्यक्तिगत विश्वास पर आधारित होते हैं। अहमदाबाद सूती-वस्त्र मिल-मालिक संघ, कलकत्ता व्यापारिक संघ, दी इण्डियन जूट मिल्स एसोसिएशन, मुम्बई मिल मालिक संघ, ईस्ट इण्डिया कॉटन एसोसिएशन आदि ऐसे परिषद हैं जो भारत में सफलतापूर्वक कार्य कर रहे हैं।

विशेषताएँ अथवा लक्षण—

1. यह एक ही उद्योग अथवा व्यवसाय की विभिन्न व्यावसायिक इकाइयों का संगठन होता है।
2. यह एक स्वतन्त्र व्यावसायिक संगठन होता है।
3. यह एक ऐच्छिक संगठन होता है।
4. इसकी स्थापना उद्योग अथवा व्यवसाय की सामान्य समस्याओं के समाधान के लिए की जाती है।
5. व्यापारिक परिषद् अपनी सदस्य-इकाइयों के आन्तरिक प्रबन्ध अथवा संचालन में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करता है।

उद्देश्य—व्यापारिक परिषद् का उद्देश्य लाभ कमाना नहीं, बल्कि सदस्य- इकाइयों की सामूहिक समस्याओं जैसे कच्चे माल की प्राप्ति, टैक्स के नये विधान, परिवहन की समस्या, आदि पर विचार-विमर्श करके उनका समाधान करना है। कभी-कभी ये परिषद् सदस्य इकाइयों के हितों की रक्षा करने के लिए सरकार के सम्मुख उनका पक्ष भी प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार इनका प्रमुख उद्देश्य अपने क्षेत्र में व्यवसाय को बढ़ाना तथा उसमें होने वाली अनुचित प्रतियोगिता को नियन्त्रित करना है।

कार्य—हैने के अनुसार, व्यापारिक परिषद् के कार्यों को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(i) **शैक्षणिक कार्य**—सम्बन्धित व्यापार अथवा व्यवसाय के बारे में उपयोगी आँकड़े व जानकारियाँ संकलित करना तथा उन्हें सदस्य-इकाइयों की कुशलता बढ़ाने के लिए सदस्यों तक पहुँचाना।

(ii) **प्रतियोगिता नियन्त्रण कार्य**—सदस्य-इकाइयों में बाजार के क्षेत्र, उत्पादन की मात्रा, मल्यों के निर्धारण आदि के विषय में समझौता कराकर उनके मध्य होने वाली अवांछनीय व अनुचित गला-काट प्रतिस्पर्द्धा को कम करना।

(iii) **वैधानिक कार्य**—सम्बन्धित व्यापार पर सरकार द्वारा लगाये गये विभिन्न प्रतिबन्धों का विरोध करना, सरकार को उनके कुप्रभावों से अवगत कराना तथा सरकार को ऐसे वैधानिक नियम बनाने के लिए प्रेरित करना जो व्यापार को बढ़ाने तथा उसमें आने वाली अड़चनों को दूर करने में सहायक हो सकें।

(iv) **तकनीकी कार्य**—शोध व अनुसन्धान करना, विशेषज्ञों के परामर्श को सामूहिक स्तर पर उपलब्ध कराना, व्यापार के प्रवर्तन के लिए केन्द्रीय पथ-प्रदर्शन उपलब्ध कराना आदि।

प्र.9. चैम्बर ऑफ कॉमर्स को समझाते हुए इसके उद्देश्य एवं कार्य का वर्णन कीजिए।

उत्तर

चैम्बर ऑफ कॉमर्स
(Chamber of Commerce)

ये व्यापार अथवा उद्योग से सम्बन्धित व्यक्तियों के स्वैच्छिक संगठन होते हैं। इनके सदस्यों में व्यापार, दलाल, बैंकर, उद्योगपति, वित्त संस्थान आदि सम्मिलित किये जाते हैं। पेशेवर व्यक्ति जैसे चार्टर्ड एकाउन्टैन्ट भी इसके सदस्य बन सकते हैं। परिषदें उद्योग विशेष अथवा व्यवसाय विशेष के लिए स्थापित किये जाते हैं जबकि चैम्बर ऑफ कॉमर्स समस्त व्यापारिक वर्ग के हितों की रक्षा के लिए बनाये जाते हैं। ये चैम्बर ऑफ कॉमर्स स्थानीय, राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर स्थापित किये जा सकते हैं। **स्थान के आधार पर** बॉम्बे चैम्बर ऑफ कॉमर्स, आगरा चैम्बर ऑफ कॉमर्स, **जातीयता के आधार पर** मारवाड़ी चैम्बर ऑफ कॉमर्स, राष्ट्रीयता के आधार पर इण्डियन चैम्बर ऑफ कॉमर्स, फैडरेशन ऑफ इण्डियन चैम्बर ऑफ कॉमर्स एण्ड इन्डस्ट्री, **अन्तर्राष्ट्रीयता के आधार पर** इन्टरनेशनल चैम्बर ऑफ कॉमर्स (फ्रांस) आदि इन चैम्बर ऑफ कॉमर्स के उदाहरण हैं।

उद्देश्य एवं कार्य—

1. व्यवसाय तथा समुदाय के हितों की रक्षा करना तथा उन्हें आगे बढ़ाना।
2. व्यापार तथा वाणिज्य सम्बन्धी सूचनाएँ व आँकड़े एकत्र करना और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें अपने सदस्यों को उपलब्ध कराना।
3. विभिन्न प्रकार की सरकारों से व्यापार सम्बन्धी विषयों पर वार्तालाप करना तथा व्यापार समुदाय के अधिकृत प्रतिनिधि के रूप में सरकारी नीतियों पर टिप्पणी करना तथा उनमें सुधार के लिए सुझाव देना।
4. सदस्यों के बीच उत्पन्न विवादों को शान्तिपूर्ण तरीके से समाधान हेतु पंच-निर्णय अथवा मध्यस्थता की व्यवस्था करना।
5. सदस्यों के लिए आचार-संहिता (code of conduct) का निर्माण करना तथा उनके बीच मधुर सम्बन्धों की स्थापना करना।
6. व्यावसायिक विकास हेतु शोध एवं अनुसंधान करना।
7. सरकार को व्यावसायिक हित में नये-नये कानून बनाने के लिए प्रेरित करना तथा व्यवसायकर्त्ताओं के दृष्टिकोण को अपनाना।
8. निर्यातकों को मूल स्थान सम्बन्धी प्रमाण-पत्र (certificate of origin) जारी करना।
9. सदस्यों को व्यवसाय सम्बन्धी तकनीकी, वैधानिक तथा अन्य आवश्यक जानकारी व सलाह देना।
10. व्यापार, वाणिज्य तथा उद्योग की सामान्य प्रगति के लिए औद्योगिक प्रदर्शनियाँ आयोजित करना, विचार-गोष्ठियाँ संगठित करना तथा संसद आदि में अपने प्रतिनिधियों को भेजना आदि।

प्र.10. प्रन्यास एवं उत्पादक संघ में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर

प्रन्यास एवं उत्पादक संघ में अन्तर
(Difference between Trust and Cartel)

प्रन्यास एवं उत्पादक संघ दोनों के ही निर्माण का उद्देश्य प्रतियोगिता की समाप्ति कर बाजार पर एकाधिकार प्राप्त करना होता है, इसलिए कभी-कभी यह भ्रम हो जाता है कि प्रन्यास तथा उत्पादक संघ दोनों एक ही हैं। उद्देश्य की इस समानता होते हुए भी दोनों में निम्नलिखित प्रमुख अन्तर हैं—

1. **उद्गम एवं विकास**—प्रन्यास सर्वप्रथम अमेरिका में विकसित हुए जबकि उत्पादक संघ जर्मनी में विकसित हुए।
2. **उद्देश्य**—प्रन्यास प्राय: प्रतियोगी इकाइयों के मध्य स्थित आपसी प्रतियोगिता को समाप्त करने तथा केन्द्रीय निर्देशन एवं नियन्त्रण से लाभ उठाने के लिए बनाया जाता है जबकि उत्पादक संघ का मुख्य उद्देश्य मुख्य नियन्त्रण स्थापित करके सदस्य-इकाइयों के लाभों में वृद्धि करना है।
3. **स्वामित्व**—प्रन्यास में सदस्य-इकाइयों का व्यक्तिगत स्वामित्व समाप्त हो जाता है जबकि उत्पादक संघ में व्यक्तिगत स्वामित्व समाप्त नहीं होता है।

4. **कार्य क्षेत्र**—प्रन्यास में सदस्य-इकाइयों के माल के विक्रय की केन्द्रीय व्यवस्था के साथ-साथ उनके उत्पादन, वित्त तथा प्रबन्ध की व्यवस्था की जाती है जबकि उत्पादक संघ में सदस्य-इकाइयों के उत्पादन की केन्द्रीय रूप से बिक्री तथा मूल्यों को ऊँचा रखने का कार्य किया जाता है।
5. **स्थापना की विधि**—प्रन्यास की स्थापना सदस्य-कम्पनियों के अंशधारियों द्वारा अपने अंशों को प्रन्यासियों के हाथ में हस्तान्तरित करके की जाती है जबकि उत्पादक संघ की स्थापना एक समझौते के अधीन की जाती है।
6. **प्रबन्ध की स्वायत्तता** (Autonomy)—प्रन्यास में सम्मिलित होने वाली इकाइयों का व्यक्तिगत स्वामित्व समाप्त होने के कारण आन्तरिक प्रबन्ध की स्वतन्त्रता का प्रश्न ही नहीं उठता है जबकि उत्पादक संघ में सम्मिलित इकाइयों का व्यक्तिगत स्वामित्व होने के कारण आन्तरिक प्रबन्ध में पूर्ण स्वतन्त्रता होती है।
7. **लोच**—प्रन्यास में लोच का अभाव होता है जबकि उत्पादक संघ में पर्याप्त मात्रा में लोच रहती है।
8. **सदस्यों की संख्या**—प्रन्यास में सदस्य-कम्पनियों की संख्या कम होती है जबकि उत्पादक संघ में सदस्य-इकाइयों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक होती है।
9. **स्थायित्व**—प्रन्यास अधिक स्थायी होते हैं। वे एक बार स्थापित हो जाने के पश्चात् मुश्किल से ही समाप्त होते हैं। उत्पादक संघ प्राय: अल्पकालीन तथा अस्थायी होते हैं।

प्र.11. सूत्रधारी कम्पनी एवं प्रन्यास में अन्तर कीजिए।

उत्तर

सूत्रधारी कम्पनी एवं प्रन्यास में अन्तर
(Differences between Holding Company and Trust)

यद्यपि सूत्रधारी कम्पनी एवं प्रन्यास दोनों ही अपूर्ण अथवा आंशिक संघनन द्वारा स्थापित किये जाते हैं तथा दोनों में ही संयोजित होने वाली इकाइयों का अस्तित्व पृथक् तथा स्वतन्त्र रहता है और दोनों के उद्देश्य भी लगभग समान होते हैं लेकिन इन समानताओं के बावजूद भी इन दोनों में निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण अन्तर पाये जाते हैं—

1. **स्थापना की विधि**—सूत्रधारी कम्पनी की स्थापना सहायक कम्पनी के अंशों को खुले बाजार से क्रय करके की जाती है जबकि प्रन्यास की स्थापना के लिए विभिन्न कम्पनियों के अधिकांश अंशधारी अपने अंशों को एक समझौते के अधीन, प्रन्यासियों के नाम हस्तान्तरित करते हैं और उनसे प्रन्यास प्रमाण-पत्र प्राप्त करते हैं।
2. **लाभ का वितरण**—सूत्रधारी कम्पनी के लाभ में सहायक कम्पनियों का कोई हिस्सा नहीं होता है जबकि प्रन्यास में सदस्य-इकाइयों से प्राप्त समस्त आय और लाभ को सदस्य अंशधारियों में विभाजित कर दिया जाता है।
3. **सदस्य-इकाइयों की पारस्परिक निर्भरता**—सहायक कम्पनियाँ प्राय: एक दूसरी सहायक कम्पनी से पूर्णतया पृथक और स्वतन्त्र रहती हैं लेकिन प्रन्यास में संयोजित कम्पनियाँ एक-दूसरे पर निर्भर रहती हैं।
4. **सदस्य-इकाइयों का अस्तित्व**—सूत्रधारी कम्पनी की स्थिति में सहायक कम्पनियों का अस्तित्व (वैधानिक आधार पर पृथक् तथा स्वतन्त्र होते हुए भी) केवल नाम के लिए स्वतन्त्र होता है जबकि प्रन्यास में, समझौते के अधीन, सम्मिलित कम्पनियों का अस्तित्व पृथक् व स्वतन्त्र रहता है।

प्र.12. युक्तिकरण को समझाते हुए इसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर

युक्तिकरण का परिचय
(Introduction to Rationalisation)

युक्तिकरण एक कंपनी को पुन: व्यवस्थित करने की प्रक्रिया है ताकि कंपनी की दक्षता में वृद्धि हो सके। युक्तिकरण के पश्चात् कई प्रभाव हो सकते हैं। यह संगठन के आकार में होने वाली वृद्धि एवं कमी का कारण हो सकता है। नीति में परिवर्तन भी हो सकता है, अंतर्निहित रणनीति या उत्पाद मिश्रण भी परिवर्तित हो सकता है। पुनर्गठन की तरह युक्तिकरण का भी संगठन पर दूरगामी प्रभाव पड़ता है। युक्तिकरण के दौर से गुजरने के कारण आवर्त या लाभप्रदता में वृद्धि हो सकता है। यह लागतों को नियन्त्रण में लाने के लिए भी किया जाता है। एक व्यापक व्याख्या में युक्तिकरण को व्यवस्थित करने का एक विधि माना जा सकता है ताकि कच्ची सामग्री एवं दक्षता का कम से कम अपव्यय हो। इसमें संसाधनों की वैज्ञानिक व्यवस्था प्रक्रियाओं एवं प्रणालियों के संदर्भ में संगठन में सभी सादगी शामिल है।

प्रोफेसर ई०ए०जी० रॉबिन्सन के अनुसार, "युक्तिकरण का तात्पर्य सम्पूर्ण उद्योग के साथ व्यक्तिगत रूप से सम्बन्धों के पुनर्गठन से है।"

प्रोफेसर सार्जेंट फ्लोरेंस के अनुसार, "युक्तिकरण एक उद्योग के अन्दर सभी फर्मों के मध्य कुछ संयुक्त क्रियाओं से वैज्ञानिक एवं तार्किक रूप से अपशिष्ट एवं अक्षमता को समाप्त करने की गति है।"

युक्तिकरण की विशेषताएँ
(Characteristics of Rationalisation)

युक्तिकरण की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. **अपशिष्ट एवं अक्षमता का उन्मूलन**—युक्तिकरण की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं में से एक अपशिष्ट तथा अक्षमता का उन्मूलन है। युक्तिकरण का उपयोग करने का मुख्य उद्देश्य धन, सामग्री तथा जनशक्ति के उपयोग से सम्बन्धित अक्षमताओं तथा हानिकारक गतिविधियों से बचना चाहिए।
2. **तर्कसंगत एवं वैज्ञानिक पद्धति तथा तकनीकों का अनुप्रयोग**—प्राचीन विधियों, पारम्परिक तकनीकों तथा अवैज्ञानिक एवं अव्यवस्थित विचारों को नई विधियों, आधुनिक प्रक्रियाओं तथा वैज्ञानिक एवं तार्किक विचारों द्वारा युक्तिकरण की सहायता से प्रतिस्थापित किया जा सकता है।
3. **व्यापक प्रक्रिया**—युक्तिकरण को एक समावेशी गतिविधि के रूप में देखा जा सकता है जो केवल उत्पादन तक सीमित नहीं है। वास्तविक में प्रौद्योगिकियों, श्रम सम्बन्धों, वित्तीय प्रबन्धन, तथा कार्मिक प्रबन्धन, परिवहन एवं भंडारण, विपणन प्रथाओं तथा विधियों आदि के पूर्ण वर्ग को इसमें शामिल किया गया है। ऐसा यह सुनिश्चित करने के लिए किया जाता है ताकि अर्थव्यवस्था उचित दिशा में कार्य कर सके तथा अपेक्षित विकास दर प्राप्त की जा सके।
4. **व्यापक दृष्टिकोण**—युक्तिकरण मुख्य रूप से सूक्ष्म दृष्टिकोण की अपेक्षा एक व्यापक दृष्टिकोण है तथा यह फर्म-उन्मुख की अपेक्षा उद्योग उन्मुख होता है। तर्कसंगत एवं तार्किक विचारों का कार्यान्वयन पूरे उद्योग में किया जाता है। उद्योग में प्रत्येक इकाई के सामूहिक प्रयासों के कारण पूर्ण उद्योग का युक्तिकरण सम्भव है ताकि अधिकमत लाभ प्राप्त किया जा सके।
5. **औद्योगिक अनुसंधान में वृद्धि करना**—इस प्रक्रिया को युक्तिकरण की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता के रूप में भी माना जा सकता है। अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए अनुसंधान एवं विकास में वृद्धि की जाती है। प्राचीन विधियों एवं तकनीकों का प्रतिस्थापन तथा नई अवधारणाओं को प्रस्तुत करना, पारम्परिक प्रणालियों एवं विधियों को परिष्कृत करना, मशीनीकरण एवं स्वचालन में वृद्धि करना, यह अनुसंधान एवं विकास को प्रोत्साहित करने के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।
6. **सामाजिक उद्देश्य**—युक्तिकरण का सामाजिक उद्देश्य अपशिष्ट एवं अनुत्पादकता के उन्मूलन से सम्बन्धित है तथा तार्किक एवं तर्कसंगत प्रकारों एवं तकनीकों का पालन करके उत्पादकता में वृद्धि करना, उत्पादन लागत को न्यूनतम करना तथा दक्षता में सुधार करना सम्भव है। इसके परिणामस्वरूप मूल्य निर्धारित किया जाता है जो ग्राहकों के लिए लाभप्रद होता है।

प्र.13. युक्तिकरण के क्या उद्देश्य हैं? वर्णन कीजिए।

उत्तर

युक्तिकरण के उद्देश्य
(Objectives of Rationalisation)

युक्तिकरण के विभिन्न उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. **अपशिष्ट को कम करना**—उद्योग से सभी प्रकार के अपशिष्ट एवं अक्षमता को समाप्त करना युक्तिकरण का मूल उद्देश्य है। युक्तिकरण अप्रभावी संगठनात्मक संरचना, दोषपूर्ण प्रणाली, असम्बद्ध प्रतिस्पर्धा तथा उत्पादन कारकों के मध्य अनुचित समन्वय से उत्पन्न समस्याओं का समाधान करता है।
2. **संसाधनों का अधिकतम उपयोग सुनिश्चित करना**—संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग सुनिश्चित करना युक्तिकरण का एक अन्य उद्देश्य है। क्योंकि प्रत्येक फर्म के पास सीमित संसाधन होते हैं तथा तर्कहीन उपयोग से संसाधनों में कमी आती है तथा इस प्रकार उत्पादन लागत में वृद्धि होती है। इसलिए संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग को सुनिश्चित किए बिना न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन सम्भव नहीं है।

3. **उत्पादन को अधिकतम करना**—युक्तिकरण का अन्य उद्देश्य उत्पादन को अधिकतम करने के लिए तर्कसंगत एवं तार्किक दृष्टिकोण को कार्यान्वित करना होता है। यह लागत को न्यूनतम करता है तथा उपभोक्ताओं को न्यूनतम मूल्य पर उत्पादों की सुविधा प्रदान करता है। बेहतर उपकरण तथा मशीनरी का उपयोग करके उत्पादन को अधिकतम किया जा सकता है। तथा इस प्रकार यह उद्योग की समग्र दक्षता में भी वृद्धि करता है।
4. **न्यूनतम प्रयास पर दक्षता को अधिकतम करना**—चूँकि उद्योग का समग्र प्रदर्शन तथा लाभप्रदता दक्षता से प्रभावित होती है, इसलिए युक्तिकरण का उद्देश्य श्रमिकों की दक्षता में सुधार के लिए कार्य करने की स्थिति में सुधार करना होता है।
5. **विपणन एवं वितरण प्रणाली को सरल बनाना**—वितरण प्रणाली की दक्षता एवं प्रभावशीलता में सुधार करना युक्तिकरण के मूल उद्देश्यों में से एक है। यह उद्देश्य अनावश्यक परिवहन प्रथाओं को समाप्त करने, मध्यस्थों के गुणन को दूर करने तथा परिवहन प्रणाली से सम्बन्धित वित्तीय भार को समाप्त करके प्राप्त किया जाता है।
6. **उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार करना**—युक्तिकरण का उद्देश्य उत्पादन की मात्रा तथा उत्पाद की गुणवत्ता दोनों में वृद्धि करना होता है। यह गुणवत्ता वाले कच्चे माल, मानकीकरण तथा विनिर्देश का उपयोग सुनिश्चित करता है तथा इस प्रकार उत्पाद की गुणवत्ता में वृद्धि करता है।
7. **औद्योगिक सम्बन्धों में सुधार करना**—युक्तिकरण के सबसे प्रमुख उद्देश्यों में से एक श्रमिकों की दक्षता में वृद्धि करने के लिए औद्योगिक सम्बन्ध में सुधार करना होता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि संतुष्ट एवं प्रेरित कार्यकर्त्ता बेहतर उत्पादन प्रदान करते हैं।
8. **समाज के जीवन स्तर में वृद्धि करना**—जीवन स्तर में वृद्धि करना भी युक्तिकरण के उद्देश्यों में से एक है। यह अपशिष्ट एवं अक्षमता को समाप्त करके, आधुनिक तकनीकों को प्रारम्भ करके, उत्पादन को अधिकतम करके, उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार करके, संसाधनों के उचित उपयोग द्वारा तथा लागत को न्यूनतम करके समाज के जीवन स्तर में वृद्धि करता है।

प्र.14. युक्तिकरण की हानियों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर

युक्तिकरण की हानियाँ
(Disadvantages of Rationalisation)

युक्तिकरण की हानियाँ इस प्रकार हैं—

1. **उत्पादकों को हानि—**
   (i) **अधिक पूँजी व्यय**—विभिन्न युक्तिकरण तकनीकों जैसे—मानकीकरण, विशेषज्ञा तथा मशीनीकरण आदि के कार्यान्वयन के कारण भारी पूँजीगत व्यय हो सकता है तथा ऐसे निवेश पर रिटर्न प्राप्त करना भी निश्चित नहीं होता है। ऐसा हो सकता है कि व्यावसायिक गतिविधियों में मंदी या अवसाद के समय पूरा निवेश बेकार हो जाए तथा बाद में वसूल न किया जा सके।
   (ii) **कार्यकर्त्ता से भय**—इसमें श्रमिक अधिक मजदूरी की माँग करते हैं और युक्तिकरण के कारण अर्जित संगठन के लाभ में अधिक भाग चाहते हैं। जो भाग उन्हें दिया जाना चाहिए, उसे लेकर प्रबन्धन दुविधा में रहते हैं। इससे कई बार संघर्ष की स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है।
2. **श्रमिकों को हानि—**
   (i) **बेरोजगारी का सृजन**—युक्तिकरण में बड़े पैमाने पर स्वचालन तथा मशीनीकरण शामिल है। इससे बड़े पैमाने पर बेरोजगारी तथा छंटनी होती है। युक्तिकरण कमजोर या हानि उठाने वाली इकाइयों को बन्द करने या संयोजित करने पर भी ध्यान देता है। इससे बेरोजगारी में वृद्धि होती है।
   (ii) **कार्य भार में वृद्धि**—युक्तिकरण का उद्देश्य श्रमिकों की उत्पादकता में वृद्धि करना है। इसका उद्देश्य श्रमिकों से अधिकतम उत्पादन करवाना होता है। इससे श्रमिकों पर अत्यधिक कार्य भार पड़ता है तथा तनाव एवं ऊब उत्पन्न हो सकता है।

3. **राष्ट्र को हानि—**
   (i) **एकाधिकार का विकास**—युक्तिकरण से एकाधिकार का जन्म होता है इस पर्यावरण में, लघु एवं कुटीर उद्योगों को प्राय: खराब अवसर दिए जाते हैं।
   (ii) **कुटीर और लघु उद्योग पर प्रतिकूल प्रभाव**—इसमें व्यवसायीकरण से व्यवसायों के पैमाने में वृद्धि होती है। छोटे संगठन और कुटीर उद्योग पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। वे या तो बड़ी संस्थाओं के साथ विलय हो जाते हैं या इनका समापन हो जाता है।
   (iii) **राष्ट्र के संसाधनों का अपव्यय**—युक्तिकरण पुराने को नए संसाधनों के साथ बदलने का प्रयास करता है। जिससे राष्ट्र के संसाधन अधिक मात्रा में बेकार हो जाते हैं।

प्र.15. युक्तिकरण और राष्ट्रीयकरण में अन्तर कीजिए।

उत्तर

युक्तिकरण एवं राष्ट्रीयकरण में अन्तर
(Differences between Rationalisation and Nationalisation)

विवेकीकरण तथा राष्ट्रीयकरण में निम्नलिखित प्रमुख अन्तर है—

1. **अर्थ**—विवेकीकरण एक ऐसी प्रणाली है जिसका प्रयोग उद्योग की कार्यकुशलता एवं उत्पादकता बढ़ाने तथा लागत कम करने के लिए किया जाता है। इसके विपरीत राष्ट्रीयकरण से अभिप्राय उद्योगों पर राजकीय स्वामित्व एवं नियन्त्रण से है।
2. **उद्देश्य**—विवेकीकरण का उद्देश्य उद्योग में होने वाले अपव्यय तथा अकुशलता को दूर कर उसकी कार्यकुशलता एवं उत्पादकता को बढ़ाना तथा लागत को कम करना है। इसके विपरीत, राष्ट्रीयकरण का उद्देश्य उद्योगपतियों के अवांछनीय कार्यों जैसे श्रमिकों एवं उपभोक्ताओं का शोषण, राष्ट्रीय हित की उपेक्षा आदि को रोकना होता है अर्थात् राष्ट्रीयकरण का उद्देश्य निजी उद्योगपतियों की शोषण की नीति को रोकना और उद्योगों का संचालन सम्पूर्ण समाज और राष्ट्र के हित में करना है।
3. **नियन्त्रण तथा प्रबन्ध**—विवेकीकरण के अन्तर्गत उद्योगों का स्वामित्व एवं प्रबन्ध प्राय: पूँजीपतियों या निजी उद्यमियों के हाथों में होता है जबकि राष्ट्रीयकरण के अन्तर्गत उद्योग का स्वामित्व तथा प्रबन्ध सरकार के हाथों में होता है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीयकरण में उद्योग पर सरकार का प्रत्यक्ष नियन्त्रण होता है, लेकिन विवेकीकरण में यह नियन्त्रण तथा हस्तक्षेप अप्रत्यक्ष होता है।
4. **आवश्यकता**—विवेकीकरण की आवश्यकता प्राय: सभी प्रकार की व्यापारिक एवं औद्योगिक इकाइयों में होती है, जबकि राष्ट्रीयकरण सामान्यत: ऐसे उद्योगों में अपनाया जाता है जो राष्ट्रीय सुरक्षा, अर्थव्यवस्था तथा जनहित के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण होते हैं।
5. **प्रकृति**—विवेकीकरण औद्योगिक क्रियाओं के नियन्त्रण तथा संचालन की एक पद्धति है, जबकि राष्ट्रीयकरण औद्योगिक संगठन का एक स्वरूप है।
6. **योजनाकरण**—विवेकीकरण के अन्तर्गत उद्योगपति आपस में समझौता करके स्वयं योजना बनाते हैं, जबकि राष्ट्रीयकरण की योजना सरकार तैयार करती है।
7. **उद्योगपतियों की सहमति**—विवेकीकरण की योजना उद्योगपतियों की सहमति और सहयोग से ही क्रियान्वित की जाती है, जबकि राष्ट्रीयकरण को लागू करते समय उद्योगपतियों की सहमति आवश्यक नहीं है। प्राय: उद्योगपतियों द्वारा राष्ट्रीयकरण का विरोध ही किया जाता है।
8. **निरन्तरता**—एक उद्योग में विवेकीकरण की योजनाएँ कई बार लागू की जा सकती हैं, जबकि राष्ट्रीयकरण की प्रक्रिया एक इकाई में एक बार ही अपनायी जाती है।

निष्कर्ष—उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विवेकीकरण और राष्ट्रीयकरण में मौलिक अन्तर है, लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि ये एक-दूसरे के विरोधी हैं। यदि विवेकीकरण की योजना उचित ढंग से क्रियान्वित की जाये तो वह राष्ट्रीय कहलायेगी और यदि राष्ट्रीयकरण की योजना आर्थिक औचित्य के आधार पर लागू की जाये तो वह विवेकीकरण कही जायेगी अर्थात् "विवेकीकरण राष्ट्रीय है और राष्ट्रीयकरण विवेकपूर्ण है।"

विवेकीकरण की योजनाओं को उचित ढंग से लागू किये जाने के परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार के अपव्यय कम होते हैं, कार्यकुशलता, उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि होती है, औद्योगिक विकास होता है, निर्यातों में वृद्धि होती है, सामाजिक स्तर ऊँचा होता है, व्यापारिक चक्रों पर नियन्त्रण स्थापित होता है। इन सभी लाभों के कारण ही विवेकीकरण को राष्ट्रीय कहा जाता है। इसी प्रकार यदि राष्ट्रीयकरण को सही ढंग से लागू किया जाता है तो निजी एकाधिकार पर नियन्त्रण लगता है, उपभोक्ताओं तथा श्रमिकों के हितों की रक्षा होती है, सन्तुलित क्षेत्रीय विकास होता है, अधिक पूँजी विनियोजन और कम लाभ देने वाले उद्योगों का विकास होता है, समाजवादी समाज की स्थापना होती है तथा वित्तीय साधनों का राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुसार प्रयोग होता है। इन सभी लाभों के कारण ही उचित राष्ट्रीयकरण को विवेकपूर्ण कहा जाता है।

प्र.16. युक्तिकरण की बुराइयों को दूर करने के लिए सुझाव दीजिए।

उत्तर

विवेकीकरण की बुराइयों को दूर करने के सुझाव
(Suggestions to Remove the Evils of Rationalisation)

विवेकीकरण का सबसे अधिक विरोध श्रमिकों की ओर से हुआ है और इनके द्वारा विरोध का मुख्य कारण बेरोजगारी का भय है। विवेकीकरण को अपनाने से बेरोजगारी फैलने का भय ही श्रमिकों के आँसू का कारण होता है। यह ठीक है कि विवेकीकरण से अल्पकालीन बेरोजगारी फैलती है. लेकिन तात्कालिक बेरोजगारी के कारण विवेकीकरण जैसी लाभप्रद योजना को न अपनाने से अन्ततः कारखाना बन्द करने की स्थिति आ सकती है और तब न केवल श्रमिकों की बेरोजगारी अनिवार्य हो जायेगी, अपितु सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था अस्तव्यस्त हो जाने की सम्भावना रहती है। इस प्रकार विवेकीकरण को लागू करना ही उचित रहता है। इस सम्बन्ध में यह अवश्य ध्यान रखा जाना चाहिए कि विवेकीकरण की योजना के क्रियान्वयन का श्रमिकों पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े अर्थात् विवेकीकरण आँसू रहित हो। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं—

1. **सभी पक्षों का पूर्ण सहयोग**—विवेकीकरण की सफलता के लिए उत्पादक, श्रमिक, सरकार एवं उपभोक्ता आदि सभी पक्षों का पूर्ण सहयोग प्राप्त किया जाना चाहिए।
2. **विवेकीकरण का क्रमिक क्रियान्वयन**—विवेकीकरण की योजना एक साथ क्रियान्वित न करके धीरे-धीरे कुछ भागों के रूप में क्रियान्वित की जानी चाहिए जिससे श्रमिकों में बेरोजगारी न फैले।
3. **विवेकीकरण कोष की स्थापना**—विवेकीकरण के फलस्वरूप जो श्रमिक कार्य से अलग किये जायें, उन्हें नये रोजगार दिलाने में उद्योगपतियों को सहायता करनी चाहिए और इस प्रक्रिया के लिए विवेकीकरण कोष स्थापित किया जाना चाहिए जिसमें उद्योगपति तथा सरकार अंशदान दें।
4. **अतिरिक्त लाभों का उचित वितरण**—विवेकीकरण को लागू करने के परिणामस्वरूप प्राप्त होने वाले अतिरिक्त लाभ को सभी सम्बद्ध पक्षों में न्यायोचित रूप से बाँटना चाहिए। उद्योगपतियों के लाभ में वृद्धि होने के साथ-साथ श्रमिकों की मजदूरी भी बढ़े तथा उपभोक्ताओं को भी अच्छी किस्म की वस्तुएँ कम मूल्यों पर प्राप्त हों।
5. **प्रबन्ध में श्रमिकों को भाग**—श्रमिकों के विरोध को कम करने एवं उनमें सहयोग की विचारधारा को विकसित करने के लिए श्रमिकों को प्रबन्ध में भाग दिया जाये। इससे श्रमिकों के दृष्टिकोण में परिवर्तन होता है।
6. **अनुसन्धान समिति की स्थापना**—प्रत्येक उद्योग में एक अनुसन्धान समिति की स्थापना की जानी चाहिए जो कि उद्योग से सम्बन्धित अनुसन्धान कार्य निरन्तर करती रहे।
7. **तकनीकी प्रशिक्षण पर बल**—विवेकीकरण की सफलता के लिए काफी संख्या में तकनीकी दृष्टि से प्रशिक्षित कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। अतः व्यापक रूप से कारखाने के अन्दर एवं कारखाने के बाहर तकनीकी प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि विवेकीकरण से श्रमिकों को अल्पकालीन बेरोजगारी की कठिनाई अवश्य उठानी पड़ती है, किन्तु इस आधार पर विवेकीकरण की योजना को स्थगित नहीं किया जा सकता है, क्योंकि देश की औद्योगिक प्रगति और भविष्य में श्रमिकों की समृद्धि विवेकीकरण में ही निहित है, आवश्यकता केवल इस बात की है कि विवेकीकरण की योजना को सावधानीपूर्वक क्रियान्वित किया जाये।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. संयोजन के प्रमुख कारणों की विस्तृत विवेचना कीजिए।

उत्तर अध्ययन की सुविधा को ध्यान में रखते हुए संयोजन के कारणों को निम्नलिखित दो भागों में बाँटा जा सकता है—

I. प्रमुख कारण (Primary Causes)

1. **गलाकाट प्रतिस्पर्धा**—स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धी जब अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है तो वह गलाकाट प्रतिस्पर्धा का रूप धारण कर लेती है। इससे प्रतिस्पर्धी इकाइयों को हानि होने लगती है। अत: शीघ्र ही प्रतिस्पर्धा करने वाले व्यवसायी आपस में कोई न कोई समझोता करने के लिए बाध्य हो जाते हैं। **प्रो० हैने** ने ठीक ही कहा है कि प्रतिस्पर्धी संयोजनों की जननी है।
2. **व्यापार चक्र**—जिस प्रकार मनुष्य के जीवन में सुख और दु:ख की आँख-मिचौली निरन्तर चलती रहती है, उसी प्रकार लगभग प्रत्येक व्यवसाय में तेजी और मन्दी का काल आता रहता है। तेजी के बाद मन्दी और मन्दी के बाद तेजी होती रहती है। तेजी काल समृद्धि और सम्पन्नता का काल होता है। इसलिए इस काल में अनेक फर्में अस्तित्व में आ जाती हैं। तेजी काल में अकुशलता के बावजूद भी कमजोर फर्में व्यवसाय में टिकी रहती हैं। परन्तु जब मन्दी का समय आरम्भ होता है तो वस्तुओं की माँग कम हो जाती है और मूल्य गिरने लगते हैं। परिणामत: कुशल फर्म ही इस काल में अपने अस्तित्व को बनाये रखने में सफल होती हैं। मन्दी के समय अकुशल और कमजोर इकाइयों को अपना अस्तित्व बनाये रखना असम्भव हो जाता है। परिणामस्वरूप ये इकाइयाँ अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए संयोजन कर लेती हैं। मन्दी काल में कुशल इकाइयाँ भी आपस में सहयोग करके वस्तुओं की आपूर्ति कम करने और गिरते हुए मूल्यों को रोकने का प्रयास करती हैं।
3. **बड़े पैमाने की मितव्ययिताएँ**—बड़े पैमाने के संगठन में अनेक आन्तरिक तथा बाह्य मितव्ययिताओं का लाभ प्राप्त होता है जैसे बड़े पैमाने पर क्रय करने में क्रय लागत में बचत, यातायात व्यय में बचत, उत्पादन तथा वितरण सम्बन्धी व्ययों में कमी आदि। इससे लागत में कमी और लाभ में वृद्धि होती है। इस प्रकार बड़े पैमाने पर व्यवसाय करने से होने वाले लाभ छोटी इकाइयों को आकर्षित करते हैं कि वे संयोजित होकर बड़े पैमाने की मितव्ययिताओं का लाभ प्राप्त करें।

II. सहायक कारण (Secondary Causes)

1. **एकाधिकार प्राप्त करने की अभिलाषा**—संयोजन की स्थापना को प्रोत्साहित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण कारण बाजार पर एकाधिकारी नियन्त्रण स्थापित करके उससे लाभ उठाने की इच्छा भी है। बाजार पर आधिपत्य हो जाने से मल्यों को इच्छित ढंग से प्रभावित करके अत्यधिक लाभ कमाना आसान हो जाता है। स्पष्ट है कि उद्योगपतियों द्वारा एकाधिकार प्राप्त करने अथवा विस्तृत बाजार में आधिपत्य जमाने और अधिक-से-अधिक औद्योगिक शक्ति पर नियन्त्रण प्राप्त करने की अभिलाषा ने भी संयोजन आन्दोलन को बढ़ावा दिया है।
2. **तकनीकी प्रगति**—उत्पादन के क्षेत्र में नई तकनीकों का निरन्तर विकास हो रहा है। इन तकनीकों के प्रयोग से उत्पादन में कई गुना वृद्धि हो सकती है और किस्म में भी सुधार किया जा सकता है, परन्तु इनको अपनाने के लिए भारी मात्रा में पूँजी का विनियोजन अपेक्षित होता है जो सामान्य आकार वाली इकाइयों की पहुँच से बाहर होता है। अत: अधिक पूँजी की पूर्ति के लिए भी व्यावसायिक तथा औद्योगिक संयोजनों का निर्माण होता है।
3. **सरकारी नीति**—कभी-कभी सरकार को संरक्षण नीति एवं औद्योगिक नीति भी संयोजन का कारण बन जाती है। जब औद्योगिक संरक्षण के कारण सरकार विदेशी माल को देश में आने से रोक देती है तो ऐसी दशा में विदेशी प्रतिस्पर्धा तो समाप्त हो जाती है परन्तु आन्तरिक प्रतिस्पर्धा बढ़ जाती है जिसे दूर करने के लिए संयोजनों का निर्माण होता है। हमारे देश में शुगर सिंडीकेट की स्थापना इसका एक अच्छा उदाहरण है। इसका जन्म तब हुआ था जब भारतीय चीनी उद्योग को संरक्षण प्राप्त था। कभी-कभी सरकार अनार्थिक इकाइयों को बन्द करने हेतु भी संयोजन को प्रोत्साहन देती है।
4. **यातायात एवं संदेशवाहन के साधनों में विकास**—यातायात एवं संदेशवाहन के साधनों में विकास होने से प्रतिस्पर्धा का क्षेत्र और प्रतिस्पर्धा की तीव्रता दोनों बढ़ जाती हैं जिससे व्यावसायिक इकाइयाँ संयोजन की ओर बढ़ने के लिए विवश होती हैं।

5. **उत्पादन प्रक्रियाओं में समन्वय**—एक ही उद्योग की विभिन्न प्रक्रियाओ में लगी इकाइयों में समन्वय स्थापित हो जाने से उनकी कार्यक्षमता और लाभप्रदता बढ़ जाती है। इस प्रकार उत्पादन प्रक्रियाओं में समन्वय के कारण भी संयोजन आन्दोलन को प्रोत्साहन मिलता है।
6. **विदेशी पूँजी एवं तकनीकी सहयोग**—विदेशी तकनीकी ज्ञान एवं पूँजी का लाभ उठाने के लिए देश की औद्योगिक इकाइयों को विदेशी कम्पनियों के साथ संयोजन बनाना पड़ता है।
7. **विवेकीकरण**—विवेकीकरण समस्त औद्योगिक बुराइयों जैसे—अति उत्पादन, मूल्य नियन्त्रण, व्यर्थता, अकुशलता आदि का निदान प्रस्तुत करता है। परन्तु विवेकीकरण एक व्ययशील योजना है जिसको किसी इकाई विशेष में लागू करना अनार्थिक होता है। इसके लिए संयुक्त प्रयास की आवश्यकता होती है। अत: इस योजना की सफलता के लिए आवश्यक है कि उद्योग विशेष की अधिकांश इकाइयाँ आपस में मिलकर प्रयत्न करें।
8. **युद्धकाल एवं युद्ध के पश्चात् की परिस्थितियाँ**—युद्धकालीन परिस्थितियाँ भी व्यावसायिक संस्थाओं को संयोजन की स्थापना के लिए बाध्य करती हैं। युद्धकाल में सैनिक एवं नागरिक आवश्यकताओं में वृद्धि के कारण वस्तुओं की माँग बढ़ जाती है किन्तु तुलनात्मक रूप से पूर्ति कम होने के कारण वस्तुओं के मूल्य बढ़ने लगते हैं। अत: पूर्ति एवं मूल्यों पर नियन्त्रण रखने के लिए संयोजनों की स्थापना की जाती है। युद्ध के उपरान्त अवसाद काल की स्थिति पर नियन्त्रण रखने हेतु भी संयोजन की आवश्यकता होती है।
9. **संयुक्त पूँजी वाली कम्पनियों का विकास**—संयुक्त पूँजी कम्पनियों के उदय एवं विकास के कारण भी संयोजन आन्दोलन को बल मिला है। कम्पनी के अंश हस्तान्तरणीय होते हैं, अत: इच्छुक उद्योगपति आसानी से दूसरी कम्पनियों के बहुमत अंशों का क्रय करके संयोजन का निर्माण कर सकते हैं। इसके विपरीत एक साझेदारी संस्थान में ऐसा करना कठिन कार्य है क्योंकि ऐसा करने के लिए सभी साझेदारों की सहमति होना अनिवार्य होता है, जो कि मुश्किल से ही होती है।
10. **स्टॉक एक्सचेंजों का विकास**—स्टॉक एक्सचेंजो के विकास ने अंशों के क्रय-विक्रय को सुगम बनाकर तथा क्रय-विक्रय के क्षेत्र को विस्तृत बनाकर कम्पनियों में संयोजन की स्थापना को सुगम बना दिया है।

प्र.2. औद्योगिक संयोजनों के विभिन्न प्रकारों का विवेचन कीजिए। इनके लाभ व हानि को भी बताइए।

उत्तर

व्यावसायिक संयोजन
(Business Combination)

विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक संयोजन इस प्रकार हैं—

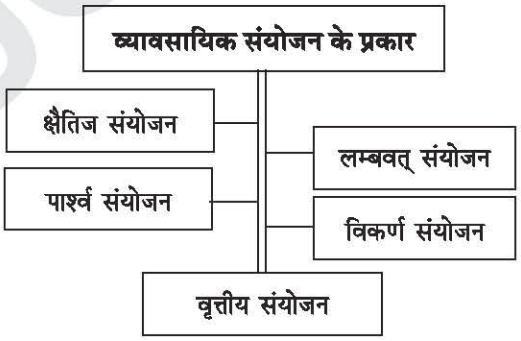

I. क्षैतिज संयोजन (Horizontal Combination)

क्षैतिज संयोजन संगठनों का एक ऐसा प्रकार है जो एक ही प्रकार की गतिविधि या व्यवसाय में संलग्न हैं। इसका एक उदाहरण कई कम्पनियों का संयोजन हो सकता है जो सीमेंट क्षेत्र में संलग्न हैं। एसोसिएटेड सीमेंट कम्पनी लिमिटेड (ए.सी. सी.) क्षैतिज संयोजन का एक बहुत अच्छा उदाहरण है। एक क्षैतिज संयोजन का अंतिम परिणाम यह है कि प्रकृति में समान होने वाले उपक्रम को एक साथ लाया जाता है। इस प्रकार यह उन फर्मों की संख्या में कमी करता है जो संचालन कर रही हैं तथा उत्पादन इकाइयों

की एकाग्रता की ओर भी ले जाती है। यह सामान्य विधि है जिसमें संगठन स्तर प्राप्त करते हैं। भारत की रिलायंस इंडस्ट्रीज या यूएसए की स्टैंडर्ड ऑयल कम्पनी इसके उदाहरण हो सकते हैं।

क्षैतिज संयोजन के लाभ—इसके लाभ निम्नलिखित हैं—

1. क्षैतिज संयोजन से वित्त, निर्माण, विपणन एवं अन्य कार्यात्मक क्षेत्रों में पैमाने की अर्थव्यवस्थाओं की उपलब्धि होती है।
2. यह विशेषज्ञों की व्यस्तता की ओर भी ले जाता है। कोई प्रतिस्पर्धा न होने पर शामिल होने वाली उपक्रम भी लाभ अर्जित कर सकती है।

क्षैतिज संयोजन की हानियाँ—इसकी हानियाँ निम्नलिखित हैं—

1. नियमित रूप से आवश्यक कच्ची सामग्री या अन्य इनपुट प्राप्त करने में असमर्थता के कारण संयोजन कमजोर हो सकता है।
2. यह अपने बड़े आकार के कारण प्रबन्धन अक्षमताओं को भी जन्म दे सकता है।

II. लम्बवत् संयोजन (Vertical Combination)

लम्बवत् संयोजन को उद्योग या प्रक्रिया या अनुक्रम एकीकरण भी कहा जाता है। इसमें किसी विशेष उत्पाद की सम्पूर्ण उत्पादन और आपूर्ति शृंखला के विभिन्न क्रमिक चरणों या प्रक्रियाओं में भाग लेने वाली विभिन्न व्यावसायिक संयोजन शामिल है। इसलिए, विभिन्न फर्मों को सम्मिलित करते हुए उत्पादन प्रक्रिया के विभिन्न चरणों के दौरान एक एकल नियंत्रण स्थापित किया जाता है। उदाहरण के लिए-वस्त्रों के उत्पादन में भाग लेने वाली विभिन्न व्यावसायिक इकाइयाँ जैसे—कताई इकाइयाँ, बुनाई इकाइयाँ, विरंजन इकाइयाँ एवं परिष्करण इकाइयाँ जो वस्त्रों का निर्माण करती हैं, संयोजन कर सकती है। कच्चे माल के साथ-साथ अन्तिम उत्पाद के वितरण के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनना इस ऊर्ध्वाधर संयोजन का मुख्य उद्देश्य होता है। दूसरे शब्दों में एक ही अंतिम उत्पाद के उत्पादन के लिए दो या दो से अधिक व्यावसायिक इकाइयों के संयोजन से निर्मित उत्पाद के उत्पादन एवं वितरण में सुधार किया जा सकता है।

प्रो० रॉबिन्सन के अनुसार, "यह एक ही उद्योग के क्रमिक चरणों/अवस्थाओं में फर्मों का संयोजन है।"

लम्बवत् संयोजन के लाभ—इसके लाभ निम्नलिखित हैं—

1. यह भण्डारण, रसद, क्रय और विक्रय जैसे क्षेत्रों में अर्थव्यवस्था लाता है।
2. अधिक उत्पादन के मामले कम हो जाते हैं, विपणन और विज्ञापन की लागत कम हो जाती है और मध्यस्थों का लाभ भी खत्म हो जाता है।

लम्बवत् संयोजन की हानियाँ—उत्पादन की प्रक्रिया में कोई परिवर्तन या क्रमिक चरणों में परिवर्तन होने पर एक बड़ी क्षति हो सकती है।

III. पार्श्व संयोजन (Lateral Combination)

पार्श्व संयोजन दो या अधिक संस्थाओं के मध्य एक प्रकार का क्षैतिज संयोजन है जो विभिन्न उत्पाद रेखाएँ बना रहे हैं; हालाँकि, विनिर्माण तकनीकों के उपयोग या अंतिम उत्पाद के संदर्भ में उनके मध्य समानता है। पार्श्व संयोजन दो प्रकार के होते हैं—

1. **अभिसारी पार्श्व संयोजन**—इसमें एक विशेष प्रमुख फर्म विभिन्न संस्थाओं से जुड़े या सम्बद्ध होते हैं, जिससे विभिन्न बुनियादी सामग्रियों या कच्चे माल की आवश्यकताओं को सरलतापूर्वक पूरा किया जा सके। उदाहरण के लिए—आवश्यक बुनियादी सामग्री या कच्चे माल प्रिंटिंग प्रेस के लिए स्याही, कागज, कार्डबोर्ड, प्लेट, उपकरण आदि की आपूर्ति करने वाली विभिन्न छोटी इकाइयों के साथ संयोजन कर सकता है।
2. **अपसारी पार्श्व संयोजन**—जब विभिन्न व्यावसायिक इकाइयाँ अपने कच्चे माल के रूप में अपने अन्तिम उत्पाद का उपयोग करने के लिए प्रमुख फर्म के साथ सम्बन्ध स्थापित करती हैं, तो इसे अपसारी पार्श्व संयोजन कहा जाता है। उदाहरण के लिए—तार, लोकोमोटिव, ट्यूबिंग, निर्माण सामग्री आदि बनाने वाली विभिन्न इकाइयाँ, स्टील बनाने वाली मिलों के साथ मिलकर स्टील बनाती हैं।

पार्श्व संयोजन के लाभ—इसके लाभ निम्नलिखित हैं—

1. इसमें कच्चे माल की माँग और आपूर्ति दोनों सुरक्षित होता है।
2. विभिन्न इकाइयों के केन्द्रीकृत नियन्त्रण के कारण विभिन्न प्रकार के लाभ प्राप्त किए जाते हैं।

पार्श्व संयोजन की हानियाँ—संयोजन उन संस्थाओं के मध्य होता है जो एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। इसलिए यह विपणन, वित्त आदि जैसे क्षेत्रों में जटिलताएँ उत्पन्न कर सकता है।

IV. विकर्ण संयोजन (Diagonal Combination)

जब उद्योग की मुख्य उत्पादन इकाई उद्योग को सहायक उत्पाद या सेवाएँ प्रदान करने वाली अन्य इकाई के साथ जोड़ती है, तो इसे विकर्ण संयोजन कहा जाता है। इसमें केन्द्रीय प्रक्रिया या माध्यमिक गतिविधि के साथ गतिविधि का संयोजन शामिल होता है। उदाहरण के लिए—एक समाचार पत्र फर्म अपनी पहुँच और प्रसार में सुधार के लिए एक परिवहन कम्पनी के साथ जुड़ सकती है।

विकर्ण संयोजन के लाभ—इसके लाभ निम्नलिखित हैं—

1. इस प्रकार का संयोजन मुख्य संगठन को अधिक आत्मनिर्भर बनाता है। इसे आपूर्ति के लिए बाहरी एजेंसियों पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है।
2. इस संयोजन में आपूर्ति के स्रोतों को खोजने और सम्पर्क करने में समय का दुरुपयोग समाप्त हो जाता है।

विकर्ण संयोजन की हानियाँ—इस प्रकार का संयोजन प्राय: स्वकेन्द्रित हो सकता है, जहाँ बड़े राष्ट्रीय हितों की प्राय: अनदेखी की जाती है।

V. वृत्तीय संयोजन (Circular Combination)

एक मिश्रित या वृत्तीय संयोजन में विभिन्न फर्म या संगठन, जो पूर्णतया भिन्न व्यवसायों और उत्पाद रेखाओं (विभिन्न उद्योगों से सम्बन्धित) में लगे हुए हैं, एक केन्द्रीय विषय के अन्तर्गत एक साथ आते हैं। इस प्रकार का संयोजन अन्य प्रकार के संयोजनों से पूर्णतया भिन्न होता है, जिस पर चर्चा की गई है। इस प्रकार के संयोजन का उदाहरण डीसीएम समूह हो सकता है जो विभिन्न प्रकार के उद्योगों जैसे—चीनी, उर्वरक, रसायन, व्यावसायिक मशीन, इलेक्ट्रॉनिक उत्पाद आदि में लगे हुए हैं।

चक्रीय संयोजन के लाभ—इसके लाभ निम्नलिखित हैं—

1. चक्रीय संयोजन का मुख्य लाभ प्रशासनिक संयोजन का लाभ है जो सामान्य प्रबंधन की उपस्थिति के माध्यम से प्राप्त किया जाता है।
2. आर्थिक शक्ति की एकाग्रता भी एक लाभ है।

चक्रीय संयोजन की हानियाँ—इसकी हानियाँ निम्नलिखित हैं—

1. परिचालन लागत एक निश्चित बिन्दु तक कम हो जाती है।
2. इसमें आय और धन का असमान वितरण हो सकता है।

प्र.3. संघ (Pools) के विभिन्न स्वरूपों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। इसके गुण-दोषों का विवेचन कीजिए।

उत्तर

संघ के प्रकार
(Types of Pools)

समझौतों की शर्तों के अनुसार, संघों के विभिन्न प्रकार हो सकते हैं जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं—

1. **उत्पादन-संघ**—इनका निर्माण उत्पादन पर नियन्त्रण स्थापित करने के लिए किया जाता है। कभी-कभी अति उत्पादन के कारण बाजार में वस्तु की पूर्ति अधिक होने पर व्यावसायियों को नुकसान होने लगता है, ऐसी स्थिति में संघ द्वारा माँग का अनुमान लगाकर सदस्य इकाइयों के लिए उत्पादन का कोटा निर्धारित कर दिया जाता है। इससे अधिक उत्पादन करने पर दण्ड की व्यवस्था होती है। इस प्रकार ये संघ अति-उत्पादन की समस्या के समाधान में अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होते हैं।
2. **मूल्य संघ**—ये संघ मूल्य नियन्त्रण हेतु स्थापित किये जाते हैं। इसके अन्तर्गत सदस्य-इकाइयाँ आपस में मिलकर एक समान मूल्य निर्धारित कर लेती हैं और सभी सदस्य-इकाइयों को संघ द्वारा निर्धारित मूल्य पर ही अपनी वस्तुओं को बेचना होता है। मूल्य के अतिरिक्त विक्रय सम्बन्धी अन्य कार्यों जैसे—विज्ञापन, विक्रय की शर्तें, उपहार एवं साख की अवधि आदि के विषय में भी अनुबन्ध किया जा सकता है।
3. **बाजार संघ**—इस प्रकार के संघ के अन्तर्गत प्रत्येक सदस्य इकाई के लिए क्षेत्र अथवा बाजार निर्धारित कर दिया जाता है तथा प्रत्येक सदस्य इकाई अपने क्षेत्र में ही उचित मूल्य पर या संघ द्वारा निर्धारित मूल्य पर वस्तुओं का विक्रय करती है।

4. **आय अथवा लाभ संघ**—ऐसे संघों का निर्माण आय अथवा लाभ का सदस्य-इकाइयों के बीच समान रूप से वितरण करने के उद्देश्य से किया जाता है। इसके अन्तर्गत सदस्य-इकाइयाँ अपनी आय अथवा लाभ को संघ में जमा कर देती हैं तथा संघ अपने व्ययों को घटाने के बाद शेष राशि को सदस्य-इकाइयों के मध्य एक निश्चित आधार पर बाँट देता है। इस प्रकार के संघ यातायात में संलग्न इकाइयों में प्रचलित हैं।
5. **निर्यात संघ**—इस प्रकार के संघों का निर्माण विदेशी निर्माताओं से प्रतियोगिता करने एवं निर्यात संवर्द्धन हेतु किया जाता है।
6. **पेटेन्ट संघ**—ये संघ किसी वस्तु के सभी पेटेन्ट अधिकारों को संयोजित करके एकाधिकार की स्थिति प्राप्त कर लेते हैं और उसके अनुसार माल तैयार करके देश-विदेश में बेचते हैं। अमेरिका में इस प्रकार के संघ अधिक प्रचलित हैं।
7. **यातायात संघ**—ऐसे संघ प्राय: जहाजी कम्पनियों द्वारा स्थापित किये जाते हैं। इनका उद्देश्य आपसी प्रतिस्पर्धा को दूर करना होता है। निश्चित भागों के लिए किराया निर्धारित करना तथा नयी कम्पनियों को क्षेत्र से हटाने के लिए 'छूट प्रणाली' (Rebate System) को अपनाना इनके विशेष लक्षण हैं। यह छूट उन व्यापारिक संस्थाओं को प्रदान की जाती है जो अपना सामान संघ के सदस्यों द्वारा भेजते या मँगाते हैं।
8. **कृषि संघ**—इन संघों के निर्माण का प्रमुख उद्देश्य कृषि उत्पादन के विक्रय से सम्बन्धित प्रतियोगिता को दूर करना होता है। इससे किसानों को अपनी उपज का उचित मूल्य मिल जाता है जिससे उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती है।

संघों के गुण (Merits of Pools)

इसके विभिन्न गुण निम्न प्रकार हैं—

1. **स्थापना में सुविधा**—इनके निर्माण में किसी वैधानिक अनिवार्यता की आवश्यकता न होने के कारण इनकी स्थापना आसानी से की जा सकती है।
2. **पारस्परिक प्रतिस्पर्धा की समाप्ति**—ये संघ सदस्य-इकाइयों में पारस्परिक प्रतिस्पर्धा को समाप्त कर आपसी सहयोग का वातावरण उत्पन्न करते हैं।
3. **अति-पूँजीकरण का भय नहीं**—इन संघों के द्वारा पूँजी का निर्माण न किये जाने के कारण अति-पूँजीकरण का भय नहीं रहता है।
4. **आन्तरिक स्वतन्त्रता**—ऐसे संघों में उत्पादन अथवा मूल्य-निर्धारण सम्बन्धी निर्णयों की पाबन्दियों के अतिरिक्त सदस्य इकाइयों का अस्तित्व स्वतन्त्र रहता है तथा उन्हें अपने आन्तरिक प्रबन्ध तथा प्रशासन में पूर्ण स्वतन्त्रता होती है।
5. **लोचशीलता**—आवश्यकता पड़ने पर पारस्परिक समझौते द्वारा संघ के नियमों में आसानी से परिवर्तन किया जा सकता है।
6. **व्यापार में स्थिरता**—आपसी समझौतों के आधार पर मूल्य-स्थिरता तथा माँग-पूर्ति में सन्तुलन के कारण व्यापार में स्थिरता बढ़ती है।
7. **बड़े पैमाने की मितव्ययिताएँ**—संघ द्वारा विज्ञापन, प्रचार एवं प्रसार, प्रशिक्षण, शोध एवं अनुसन्धान आदि के सम्बन्ध में बड़े पैमाने की मितव्ययिताएँ प्राप्त हो सकती हैं।
8. **उत्पादकों को प्रेरणा**—संघ उत्पादकों को अपने व्यय कम करने तथा कुशलता में वृद्धि करने की प्रेरणा प्रदान करता है।
9. **सुगम अन्त**—स्थापना की भाँति, बिना किसी औपचारिकता के इन संघों का आसानी से अन्त किया जा सकता है।

संघों के दोष (Demerits of Pools)

इसके विभिन्न दोष निम्न प्रकार हैं—

1. **एकाधिकार के दोष**—ऐसे संघों के निर्माण के द्वारा व्यवसायी एकाधिकार की स्थिति को प्राप्त कर लेते हैं जिससे उपभोक्ताओं, कर्मचारियों, कच्चे माल के उत्पादकों आदि के शोषण का भय रहता है।
2. **अकुशलता को बढ़ावा**—संघ ऐसी सदस्य-इकाइयों को भी प्रोत्साहित करता है जिसकी कार्य कुशलता ठीक न हो। इस प्रकार ये संघ कार्य अकुशलता का पोषण करते हैं। इसके अतिरिक्त, सदस्य-इकाइयाँ अपनी उत्पादन-क्षमता को अनुकूलतम आकार तक नहीं बढ़ा सकती हैं।

3. **अस्तित्व का अभाव**—संघ के निर्माण में वैधानिकता न होने के कारण समझौता भंग होने की सम्भावना सदैव बनी रहती है। इसके अतिरिक्त, थोड़ा-सा मतभेद होने पर कोई भी सदस्य संघ को छोड़ सकता है।
4. **केन्द्रीय संगठन का अभाव**—संघ का कोई केन्द्रीय संगठन न होने के कारण इन पर नियन्त्रण स्थापित करना कठिन है।

प्र.4. उत्पादन संघ (Cartels) किसे कहते हैं? यह मुख्यत: कितने प्रकार के होते हैं? इसके गुण व दोषों का भी वर्णन कीजिए।

उत्तर

उत्पादक संघ
(Cartels)

उत्पादक संघ भी एक प्रकार का संघ है जिसके अन्तर्गत एक ही उद्योग या व्यवसाय में लगे हुए व्यवसायी स्वेच्छा से समझौता करके एक संगठन की स्थापना कर लेते हैं। **वॉन बेकरथ** के अनुसार, "उत्पादक संघ एक ही प्रकार के व्यवसाय में लगे पूँजीपति उद्यमों का बिक्री बाजार को नियन्त्रित करने के लिए एक स्वैच्छिक समझौता है जो सदस्यों के लाभ कमाने की क्षमता को बढ़ाने के लिए किया जाता है।" **डॉ० इस्से** के अनुसार, "उत्पादक संघ स्वतन्त्र व्यावसायियों का एक संघ है जो सदस्य-इकाइयों के उत्पादन, क्रय-मूल्य निर्धारण अथवा व्यावसायिक शर्तों से सम्बन्धित दायित्वों को क्रियात्मक रूप देता है तथा स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा के विरुद्ध बाजार को प्रभावित करता है।" इन परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बाजार में एकाधिकार (monopolisation of market) की स्थापना उत्पादक संघ का एक अनिवार्य अंग है। प्रतियोगिता को समाप्त करके, बाजार पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए अनेक नियन्त्रणात्मक कार्यवाहियाँ की जाती हैं जैसे—मल्य का निर्धारण, उत्पादन का केन्द्रीय संयोजन, उत्पादन कोटे का पुनर्वितरण तथा समस्त उत्पादन केन्द्रीय बिक्री संगठन द्वारा बेचना आदि। केन्द्रीय बिक्री संगठन की स्थापना के फलस्वरूप यह संयोजन अधिक क्रियाशील, सार्थक तथा स्थायी बन जाता है।

अत: उत्पादक संघ (Cartel) एक ही उद्योग की विभिन्न स्वतन्त्र औद्योगिक इकाइयों का एक ऐच्छिक संगठन है जिसका मूल उद्देश्य आपसी प्रतिस्पर्द्धा को समाप्त कर, बाजार पर एकाधिकार प्राप्त करना है। बाजार पर आधिपत्य अर्थात् एकाधिकार स्थापित करने हेतु उत्पादक संघ के साथ एक **केन्द्रीय बिक्री संगठन** (Selling Syndicate) भी जुड़ा रहता है। उत्पादक संघ में सम्मिलित सदस्य-इकाइयों को उत्पादन का पूरा हिस्सा अथवा एक निश्चित प्रतिशत पूर्व-निर्धारित मूल्यों पर उत्पादक संघ को देना पड़ता है और उत्पादक संघ केन्द्रीय बिक्री संगठन के माध्यम से माल की बिक्री की व्यवस्था करता है।

उत्पादक संघ के प्रकार (Types of Cartels)

वॉन बेकरथ के अनुसार, उत्पादक संघ निम्नलिखित सात प्रकार के हो सकते हैं—

1. **शर्त निर्धारक उत्पादक संघ**—ये संघ विक्रय से सम्बन्धित विभिन्न शर्तें निर्धारित करते हैं जैसे—छूट की दर, ब्याज की दर, आधार विक्रय की सीमा, भुगतान की शर्त, सुपुर्दगी का समय व स्थान, पैकिंग आदि। इनका प्रमुख उद्देश्य बिक्री की शर्तों को एक समान बनाना है।
2. **मूल्य निर्धारक उत्पादक संघ**—ये संघ सदस्य-इकाइयों के उत्पादन और मूल्यों को नियन्त्रित करते हैं। सदस्य-इकाइया संघ द्वारा निर्धारित मूल्यों से कम पर अपने सामान का विक्रय नहीं कर सकती हैं।
3. **ग्राहक निर्धारक उत्पादक संघ**—ये संघ प्रत्येक सदस्य इकाई के लिए ग्राहक निश्चित करते हैं।
4. **क्षेत्रीय उत्पादक संघ**—ये संघ सम्पूर्ण बाजार को अनेक भौगोलिक क्षेत्रों में बाँटकर प्रत्येक सदस्य इकाई के लिए एक क्षेत्र विशेष निश्चित कर देते हैं।
5. **कोटा निर्धारक उत्पादक संघ**—उत्पादन संघों (output pools) की भाँति, ये उत्पादक संघ उत्पादन की मात्रा को नियन्त्रित करके उसकी पूर्ति को कम कर देते हैं। प्रत्येक सदस्य इकाई के लिए वर्ष भर के उत्पादन का कोटा निर्धारित कर दिया जाता है और उन्हें उससे अधिक उत्पादन नहीं करने दिया जाता है।
6. **सुपर उत्पादक संघ**—इन्हें सामान्य उत्पादक संघ भी कहते हैं। ये भिन्न-भिन्न देशों के उत्पादक संघों के बीच पारस्परिक समझोते द्वारा स्थापित किये जाते हैं। इन्हें अन्तर्राष्ट्रीय उत्पादक संघ (International cartels) भी कहा जा सकता है।
7. **व्यापारी संघ**—यह वस्तुओं के विक्रय का एक संघ अथवा संगठन होता है। इसकी सदस्य-इकाइयाँ अपना उत्पादन संघ को लेखा मूल्य (accounting price) पर बेच देती हैं। संघ इसे ग्राहकों को बेचकर लाभ को सदस्य-इकाइयों में आनुपातिक रूप में बाँट देता है।

उत्पादक संघों के गुण—इसके विभिन्न गुण निम्न प्रकार हैं—

1. **स्थापना में सुगमता**—उत्पादक संघ में सदस्य-इकाइयों को अपनी स्वतन्त्रता का त्याग नहीं करना पड़ता है। इसलिए इनका निर्माण सरलता से किया जा सकता है। कोई भी इकाई किसी भी समय, सदस्यता स्वीकार कर सकती है अथवा छोड़ सकती है।
2. **प्रतियोगिता की समाप्ति**—केन्द्रीय विक्रय संगठन की स्थापना के कारण सदस्य-इकाइयों में पारस्परिक प्रतिस्पर्धा का अन्त हो जाता है।
3. **विक्रय में सुविधा**—उत्पादक संघ विक्रय संगठन की स्थापना करते हैं। इसलिए सदस्य-इकाइयों को अपने उत्पादन के विक्रय की चिन्ता नहीं रहती है।
4. **व्ययों में कमी**—केन्द्रीय विक्रय संगठन की स्थापना के कारण सदस्य-इकाइयों को वस्तुओं के वितरण तथा विक्रय व्ययों में अनेक प्रकार की मितव्ययिताएँ प्राप्त होती हैं।
5. **निर्माण पर लाभ की गारन्टी**—उत्पादक संघ में प्रत्येक सदस्य इकाई को अपने उत्पादन पर कुछ न्यायोचित लाभ अवश्य मिलता है क्योंकि प्रत्येक उत्पादक अपना माल व्यापारी संघ (Syndicate) को हिसाबी मूल्य (accounting price) पर देता है और यह हिसाब मूल्य वस्तु की उत्पादन लागत से अधिक होता है।
6. **उत्पादकों को प्रेरणा**—संघ की सदस्य-इकाइयों को विक्रय तथा लाभ की चिन्ता नहीं रहती है क्योंकि ये संघ सभी उत्पादकों हेतु मूल्य भी निर्धारित कर देते हैं जो निश्चय ही लाभ को ध्यान में रखकर निर्धारित किये जाते हैं। विक्रय तथा लाभ की निश्चितता (certainty) के कारण इकाइयों को संघ में बने रहने तथा उत्पादन कार्य में संलग्न रहने की प्रेरणा मिलती है।

उत्पादक संघों के दोष—इसके विभिन्न दोष निम्न प्रकार हैं—

1. **अकुशल इकाइयों का पोषण**—संघ के कारण अक्षम तथा अकुशल इकाइयों को भी लाभ होने लगता है और ये इकाइयाँ अपने में सधार करना आवश्यक नहीं समझती हैं। इससे विक्रय में बाधा पड़ती है। इस प्रकार संघ उन इकाइयों को भी आश्रय देती है जो सामान्य परिस्थितियों में अपनी अकुशलता के कारण अन्यथा बन्द हो गयी होती।
2. **उपभोक्ताओं का शोषण**—सदस्य-इकाइयों के लाभ को बढ़ाने के लिए ये संघ पूर्ति को नियन्त्रित करके मूल्य वृद्धि को प्रोत्साहित करते हैं जिससे उपभोक्ताओं का शोषण होता है।
3. **अस्थिरता**—उत्पादक संघ की सदस्यता ऐच्छिक होने तथा वैज्ञानिक शिष्टाचार से मुक्त होने के कारण इन संघों का अस्तित्व अस्थायी होता है। सदस्य-इकाइयों में मतभेद पैदा होते ही इनमें विघटन आ जाता है और ये संघ समाप्त हो जाते हैं।
4. **शीघ्र निर्माण एवं अन्त**—उत्पादक संघों का जितनी आसानी से निर्माण होता है उतनी ही शीघ्रता से उनका अन्त हो जाता है।

प्र.5. प्रन्यास (Trust) से आप क्या समझते हैं? प्रन्यास के प्रमुख भेद लिखिए।

उत्तर

प्रन्यास
(Trust)

अंग्रेजी शब्द 'Trust' का शाब्दिक अर्थ 'विश्वास' (confidence) से है जिसके अन्तर्गत एक विशिष्ट सम्पत्ति का प्रबन्ध कुछ व्यक्तियों को इस उद्देश्य से सौंप दिया जाता है कि वे किसी कार्य विशेष में जैसे धार्मिक, उसकी आय का उचित प्रबन्ध करेंगे तो यह कहा जाता है कि अमुक सम्पत्ति 'ट्रस्ट' अर्थात् प्रन्यासी को सौंप दी गयी है। जिन व्यक्तियों के हाथों में सम्पत्ति सौंपी जाती है उन्हें 'ट्रस्टी' (trustee) अर्थात् प्रन्यासी तथा ऐसे समस्त व्यक्तियों को 'ट्रस्ट' (Trust) के नाम से पुकारा जाता है। ट्रस्ट को सौंपी गयी सम्पत्ति को 'ट्रस्ट प्रोपर्टी' (Trust Property) या प्रन्यास सम्पत्ति कहते हैं। प्रारम्भ में प्रन्यास धार्मिक संस्थाओं के अन्तर्गत ही स्थापित किये जाते थे किन्तु धीरे-धीरे इनका प्रचलन व्यावसायिक जगत में भी होने लगा है। **प्रो० हैने** के अनुसार, "प्रन्यास अस्थायी संयोजनों द्वारा स्थापित व्यावसायिक संगठन का वह प्रारूप है जिसमें सदस्य संगठनों के अंशधारी, एक प्रन्यास समझौते के अधीन, अपने अंशों की नियन्त्रक राशि, एक प्रन्यास मण्डल को प्रन्यास प्रमाण-पत्रों के बदले में हस्तान्तरित कर देते हैं। ये प्रन्यास प्रमाण-पत्र (Trust certificate) संयोजन की आय में उनके सामयिक हित को प्रदर्शित करते हैं।" इस प्रकार

प्रन्यास के अन्तर्गत विभिन्न व्यावसायिक संगठनों के अंशधारी निश्चित अंशों को ट्रस्ट सर्टिफिकेट के बदले प्रन्यास मण्डल को सौंप देते हैं तथा लाभांश प्राप्त करते हैं। ये प्रन्यास मण्डल सभी व्यावसायिक संगठनों से व्यापक शक्ति प्राप्त करके व्यवसाय का संचालन करते हैं।

प्रन्यास के भेद या प्रकार (Forms of Trust)

प्रन्यासियों को मिले विभिन्न अधिकारों के आधार पर प्रन्यासों के अनेक प्रारूप हो सकते हैं जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं—

1. **विनियोग प्रन्यास**—कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत निर्मित होने के कारण, विनियोग प्रन्यासों की स्थापना वैधानिक होती है। इन प्रन्यासों के निर्माण का प्रमुख उद्देश्य नव-निर्मित कम्पनियों को सरलता से पूँजी प्राप्त करने में सहायता प्रदान करना होता है। ये प्रन्यास अंशों तथा ऋण-पत्रों के निर्गमन से अपनी पूँजी प्राप्त करते हैं और प्राप्त पूँजी का विनियोग विभिन्न उद्योगों के अंशों तथा ऋण-पत्रों के खरीदने में करते हैं। इस प्रकार अंशों, ऋण-पत्रों का क्रय-विक्रय करना इनका प्रमुख कार्य होता है तथा इससे प्राप्त लाभांश तथा ब्याज को अपने अंशधारियों में लाभांश (Dividend) के रूप में बाँट देते हैं। भारत में टाटा, बिडला तथा जे०के० समूह द्वारा इस प्रकार के प्रन्यास स्थापित किये गये हैं।
2. **मताधिकार प्रन्यास**—मताधिकार प्रन्यास का निर्माण कम्पनी के बहुसंख्यक अंशधारियों (majority shareholders) द्वारा अपने मताधिकार का हस्तान्तरण एक सीमित समय के लिए प्रन्यास के नाम कर देने से होता है। यह सीमित अवधि या समय समाप्त हो जाने पर अंश वापस ले लिये जाते हैं। इन प्रन्यासों की स्थापना का उद्देश्य नवीन कम्पनियों के प्रति जनता में विश्वास पैदा करना होता है।
3. **मेसाचुसेट्स प्रन्यास**—अमेरिका के मेसाचुसेट्स राज्य में विकसित होने के कारण इन्हें इसी नाम से पुकारा जाता है। इनके अन्तर्गत कम्पनियों के अंशधारी अपने समस्त अंशों का हस्तान्तरण प्रन्यासियों को कर देते हैं। ऐसे प्रन्यास अब प्रचलित नहीं है क्योंकि अमेरिकी शासन ने 'शेरमन-ट्रस्ट विरोधी अधिनियम, 1890' (Sharman Anti-trust Act, 1890) बनाकर इनको अवैध घोषित कर दिया था।
4. **स्थायी या इकाई प्रन्यास**—ये प्रन्यास विनियोग प्रन्यास के समान होते हैं। इनका उद्देश्य भी उद्योगों को आवश्यक पूँजी की प्राप्ति में सहायता प्रदान करना होता है लेकिन ये प्रन्यास अपनी पूँजी का विनियोग विशेष उद्योगों में करते हैं। इसलिए इन्हें स्थायी या इकाई प्रन्यास के नाम से पुकारा जाता है। इन प्रन्यासों की स्थापना एक निश्चित अवधि के लिए की जाती है। यह उल्लेखनीय है कि जब तक यह प्रन्यास कारोबार करता रहता है तब तक इनकी विनियोग नीति में कोई परिवर्तन नहीं किया जाता है।

प्र.6. युक्तिकरण के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर

युक्तिकरण का सिद्धान्त
(Theories of Rationalisation)

युक्तिकरण के सिद्धान्त, जिसे युक्तिकरण का कार्यक्षेत्र, युक्तिकरण की तकनीक, युक्तिकरण के पहलू, युक्तिकरण के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए उद्योग के प्रत्येक पहलू के सम्पर्क के रूप में भी जाना जाता है। इन सिद्धान्तों को निम्नानुसार सन्दर्भित किया जा सकता है—

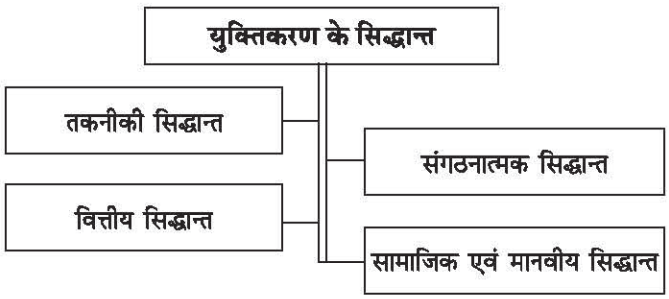

I. तकनीकी सिद्धान्त (Technological Principles)

युक्तिकरण के तकनीकी सिद्धान्त का उद्देश्य उद्योग की तकनीकी दक्षता को अधिकतम करना है। इसलिए, औद्योगिक इंजीनियरिंग युक्तिकरण के तकनीकी सिद्धान्त का आधार है। युक्तिकरण के तकनीकी पहलू से सम्बन्धित विभिन्न सिद्धान्त इस प्रकार हैं—

1. **मानकीकरण**—मानकीकरण का सिद्धान्त उत्पादों की किस्मों से सम्बन्धित है। इसका उद्देश्य जनशक्ति एवं संसाधनों के अपव्यय को न्यूनतम करना तथा उत्पादन लागत को कम करना होता है।
2. **मशीनीकरण**—इस सिद्धान्त का उद्देश्य श्रम लागत को न्यूनतम करने के लिए श्रमिकों के स्थान पर अधिक मशीनों को शामिल करना होता है।
3. **गहनता**—यह सिद्धान्त कच्चे माल से लेकर मशीनों तथा श्रमिकों तक सभी संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग पर ध्यान देता है।
4. **विशेषज्ञता**—विशेषज्ञता के सिद्धान्त में अनुकूलतम विभाजन संसाधनों, जनशक्ति, उत्पादों के आवंटन तथा उत्पादन लागत को न्यूनतम करने तथा उद्योग संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग करने के लिए उद्योग के अन्दर विपणन विभाजन पर बल दिया गया है।
5. **सरलीकरण**—किसी भी विशेषज्ञता में मानकीकरण का परिणाम सरलीकरण के सिद्धान्त में होता है। इस सिद्धान्त का उद्देश्य उत्पादन सम्बन्धी सभी जटिलताओं को दूर करना तथा उत्पादन को अधिकतम करना और उत्पादन लागत को न्यूनतम करना होता है।
6. **आधुनिकीकरण**—आधुनिकीकरण के सिद्धान्त का उद्देश्य उत्पादन को अनुकूलित करने के लिए प्राचीन तकनीकों को नई तकनीकों से समाप्त करन या परिवर्तित करना होता है।
7. **वैज्ञानिक प्रबन्ध**—यह सिद्धान्त, जिसे काल्पनिककरण के रूप में भी जाना जाता है, इसका उद्देश्य उत्पादन को अनुकूलित करने के लिए मनुष्य, धन एवं सामग्री के अनुकूलतम उपयोग के लिए वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करना होता है।
8. **औद्योगिक अनुसंधान**—इस सिद्धान्त का उद्देश्य उत्पादन की अति किफायती प्रक्रिया की पहचान करना है।
9. **स्वचालन**—स्वचालन का सिद्धान्त युक्तिकरण का मूल सिद्धान्त है तथा मशीनीकरण का अधिक उन्नत रूप है। स्वचालन उत्पादन प्रबन्धन, सामग्री प्रबन्धन तथा संगठन संरचना की पद्धतियों के मध्य उचित एवं प्रभावी समन्वय बनाता है।

II. संगठनात्मक सिद्धान्त (Organisational Principles)

एक उद्योग के अन्दर संगठनात्मक पुन:संरचना एवं पुन:सुधार भी युक्तिकरण का मुख्य केन्द्र है। यह उद्यमियों के मध्य प्रतिस्पर्धा से उत्पन्न होने वाले अपशिष्ट को समाप्त करता है। निम्नलिखित सिद्धान्त एक उद्योग के अन्दर संगठनात्मक परिवर्तन का नेतृत्व करता है—

1. **औद्योगिक संयोजन**—उद्योग को जीवंत या प्रभावी बनाने के लिए युक्तिकरण के अन्तर्गत संयोजन उपकरण को स्वीकृत किया जाता है। औद्योगिक संयोजन दीर्घ एवं प्रभावी व्यावसायिक इकाइयों के साथ विभिन्न लघु एवं गैर-निष्पादित इकाइयों के एकीकरण को नियोजित करके दीर्घ पैमाने पर उत्पादन एवं वितरण के लाभ प्राप्त करने में सहायता करता है। यह संयंत्रों में जनशक्ति तथा संसाधनों का अनुकूलम उपयोग भी सुनिश्चित करता है।
2. **आपूर्ति एवं माँग का मिलान**—युक्तिकरण समग्र उत्पाद को समग्र माँग में समायोजित करता है तथा इस प्रकार विपणन के व्यवहार को नियन्त्रित करता है। इससे औसत माँग के अनुसार उत्पादन में सहायता प्राप्त हो सकती है। सामान्यत: एक उद्योग के अन्दर उद्यम उत्पादन पर नियन्त्रण रखने के लिए एक सामान्य सहमति में आते हैं।
3. **नई इकाइयों के प्रवेश पर नियन्त्रण**—इस सिद्धान्त का उद्देश्य औसत उत्पादन को औसत माँग के अनुसार समायोजित करने के लिए नए उद्यमों के प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगाना होता है। यह वैधानिक कार्यवाही से भी प्रभावित होता है।
4. **राष्ट्रीयकरण**—जब सरकार व्यक्तिगत उद्योगों के स्वामित्व को स्वयं के हाथों में ले लेती है तो इसे राष्ट्रीयकरण कहा जाता है। ऐसा उद्योग को अधिक प्रभावी एवं उत्पादक बनाने के लिए किया जाता है। राष्ट्रीयकरण को युक्तिकरण के सिद्धान्त के अन्तर्गत तभी माना जाएगा जब यह आर्थिक वास्तविकता पर आधारित हो, न कि राजनीतिक वास्तविकता पर।

TOUCH 'n PASS

III. वित्तीय सिद्धान्त (Financial Principles)

युक्तिकरण प्रवृत्ति उचित वित्तीय प्रबन्धन के साथ सफल हो जाता है। वित्तीय युक्तिकरण प्रौद्योगिकी तथा संगठन जैसे—अन्य क्षेत्रों में सुधार करने में सहायता करता है। इस प्रकार, इसमें निम्नलिखित शामिल हैं—

1. **वित्तीय नियोजन**—वित्तीय नियोजन का उद्देश्य न्यूनतम लागत के साथ पर्याप्त मात्रा में धनराशि की वृद्धि सुनिश्चित करना तथा उद्योग के अन्दर इन निधियों के प्रभावी उपयोग को सुनिश्चित करना होता है। प्रभावी नियोजन की सहायता से अधिकतम एवं न्यूनतम पूँजीकरण दोनों के जोखिम से बचा जा सकता है।
2. **पूँजी संरचना-गेरस्टेनबर्ग** के अनुसार, पूँजी संरचना का अर्थ प्रतिभूतियाँ एवं उनकी आनुपातिक राशि है जो पूँजीकरण का निर्माण करती है। एक उद्यम के साथ-साथ एक उद्योग की पूँजी संरचना को सफल युक्तिकरण प्राप्त करने के लिए सुरक्षा तथा अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्तों पर निर्मित किया जाना चाहिए। इसलिए अनुकूलतम पूँजी संरचना के लिए दो या दो से अधिक प्रकार की प्रतिभूतियों के मध्य एक उपयुक्त अनुपात निश्चित करना पड़ता है। इसलिए, अनुकूलतम पूँजी संरचना के लिए दो या दो से अधिक प्रकार की प्रतिभूतियों के मध्य एक उपयुक्त अनुपात को निश्चित करना चाहिए।
3. **वित्तीय नियन्त्रण**—युक्तिकरण उपलब्ध निधियों का प्रभावी विधि से उपयोग करने के लिए उचित वित्तीय नियन्त्रण का प्रयास करता है। यह वित्तीय अंकेक्षण, बजटीय नियन्त्रण, प्रबन्धन लेखांकन तथा लागत लेखांकन की सहायता से किया जा सकता है।

IV. सामाजिक एवं मानवीय सिद्धान्त (Social and Human Principles)

युक्तिकरण वित्तीय, संगठनात्मक एवं तकनीकी पहलुओं के अतिरिक्त अन्य सामाजिक एवं मानवीय कारकों पर भी ध्यान देता है। इस कारण से युक्तिकरण को यांत्रिकी तथा कला दोनों की प्रक्रिया के रूप में जाना जाता है। **सी.एस. मायर्स** के अनुसार—युक्तिकरण व्यवसाय के विचार को स्वयं के विशुद्ध रूप से स्वार्थी, तकनीकी एवं वाणिज्यिक पहलुओं में नहीं बल्कि इसके व्यापक आर्थिक सामाजिक एवं सामान्यत: मानवीय पहलुओं में भी माँग करता है, इन सभी पहलुओं के बिना यह व्यावसायिक मामलों का आभासी युक्तिकरण होगा। सामाजिक एवं मानव के सिद्धान्त के अन्तर्गत युक्तिकरण के पहलू निम्नलिखित हैं—

1. **औद्योगिक सम्बन्ध**—यह युक्तिकरण के लिए महत्त्वपूर्ण है कि उत्तम औद्योगिक सम्बन्ध बनाए जाएं क्योंकि यह जनशक्ति के सर्वोत्तम उपयोग को सक्षम बनाता है। औद्योगिक सम्बन्ध एवं जनशक्ति नियोजन श्रमिकों की भर्ती, पर्याप्त प्रशिक्षण, बेहतर वेतन योजनाओं, प्रेरणा एवं प्रोत्साहन, कुशल श्रमिकों की स्वीकृति, पदोन्नति प्रणाली, तथा कार्यकर्त्ता में मनोबल वृद्धि के साथ-साथ अन्य वस्तुओं से सम्बन्धित है। युक्तिकरण कार्यक्रम में उपयुक्त कार्य सुरक्षा, बेहतर कार्य करने की स्थिति तथा श्रम कल्याण के उपाय भी शामिल हैं।
2. **सामाजिक कल्याण**—समाज कल्याण योजना भी युक्तिकरण का एक महत्त्वपूर्ण घटक है। युक्तिकरण समाज के जीवन स्तर में वृद्धि करने के लिए विकल्पों की एक विस्तृत शृंखला के साथ अल्प मूल्यों पर उच्च गुणवत्ता वाले उत्पादों के वितरण की प्रत्याभूति प्रदान करता है।
3. **राष्ट्रीय हित**—यह सत्य है कि जर्मनी ने देश की अर्थव्यवस्था को स्वयं की शक्ति सुधारने में सहायता करने के लिए एक युक्तिकरण योजना का निर्माण किया है। इसके परिणामस्वरूप युक्तिकरण एक राष्ट्र को प्रभावी तथा शुद्ध संसाधन उपयोग करने की प्रत्याभूति प्रदान करके, आर्थिक स्थिरता बनाए रखने, औद्योगिक प्रगति सुनिश्चित करने तथा राष्ट्रीय समृद्धि में वृद्धि करके लाभान्वित करता है। पर्यावरण की सुरक्षा करना, उसे बनाए रखना तथा वृद्धि करना आधुनिक समय में युक्तिकरण का एक महत्त्वपूर्ण घटक बन गया है।

प्र.7. युक्तिकरण के क्या लाभ हैं? वर्णन कीजिए।

उत्तर

युक्तिकरण के लाभ
(Advantages of Rationalisation)

यह पहले ही कहा जा चुका है कि विवेकीकरण संकुचित रूप में न होकर व्यापक रूप में ही लागू किया जाना चाहिए। यदि ऐसा किया जाता है तो इससे राष्ट्र के सभी पक्ष लाभान्वित हो सकते हैं जिसमें उत्पादक, श्रमिक, उपभोक्ता एवं समाज ये सभी सम्मिलित होते हैं।

1. **उत्पादकों को लाभ**—विवेकीकरण विभिन्न उत्पादकों में निरर्थक प्रतिस्पर्धा के स्थान पर सहयोग की भावना को प्रोत्साहित करता है। प्रमापीकरण, विशिष्टीकरण, उत्पादन क्रियाओं के सरलीकरण एवं यन्त्रीकरण के द्वारा उत्पादक न्यूनतम लागत पर अधिकतम माल उत्पादित करने में सफल हो जाते हैं। विज्ञापन, विक्रय, वितरण, खोज एवं अनुसन्धान के कार्यों का समन्वय हो जाता है जिससे सभी उत्पादक इकाइयों के उपरिव्ययों (overhead expenses) में कमी हो जाती है। वैज्ञानिक प्रबन्ध की आधुनिक विधियों को अपनाने से श्रमिकों की उत्पादकता में वृद्धि हो जाती है। नवीन आविष्कारों, अन्वेषणों आदि का लाभ सभी उत्पादकों को उपलब्ध हो जाता है। उत्पादन को माँग के अनुसार समायोजित करने से माँग एवं पूर्ति में सन्तुलन स्थापित करना सरल होता है और इससे उद्योग आर्थिक उच्चावचनों से अपनी सुरक्षा कर सकता है।
2. **श्रमिकों को लाभ**—उन्नत एवं वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग से श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि के प्रयास किये जाते हैं और इस प्रकार उत्पादकता में सुधार होता है। श्रमिकों को इससे अधिक सुविधाजनक काम करने की दशाएँ तथा अधिक मजदूरी प्राप्त होती है। उत्पादकों द्वारा उनके कल्याण की अनेक योजनाओं के लिए भी पर्याप्त वित्त की व्यवस्ताएँ की जा सकती हैं विवेकीकरण यदि व्यापक अर्थों में लागू किया जाता है तो इससे अन्ततोगत्वा रोजगार के अवसरों में वद्धि हो सकती है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि विवेकीकरण का मानवीय पहलू भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि तकनीकी अथवा व्यापारिक पहलू। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि विवेकीकरण से उद्योगपतियों एवं श्रमिकों दोनों ही में उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है और उनमें सहयोग बढ़ता है। श्रमिकों में तकनीकी दृष्टि से अधिक दक्षता उनके लिए पदोन्नति के द्वार खोल देती है।
3. **उपभोक्ताओं को लाभ**—विवेकीकरण उद्योग में निरर्थक प्रतिस्पर्द्धा तथा सभी प्रकार के अपव्ययों को कम करता है। समन्वित प्रबन्ध तथा संयोजन के कारण भी दुहरी व्यवस्ताएँ समाप्त हो जाती हैं और उत्पादक इकाइयों के द्वारा अनेक प्रकार के उपरिव्ययों (overhead expenses) में कमी की जाती है। लागतों में कमी निश्चित रूप से कीमतों में कमी को सम्भव बना देती है। दूसरी ओर श्रम-विभाजन, प्रमापीकरण एवं विशिष्टीकरण के आधार पर निर्मित माल की किस्म में सुधार किया जाता है। इन सुधारों के कारण उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर उत्तम किस्म की वस्तुएँ आवश्यकतानुसार प्राप्त होती रहती हैं। उचित मूल्य पर उपभोक्ता वस्तुओं के प्राप्त होने से उपभोक्ता की वास्तविक आय में वृद्धि हो जाती है। और उसके रहन-सहन के स्तर में सुधार सम्भव हो जाता है। वस्तुत: उन्हें उपभोक्ता की बचत (consumer's surplus) का लाभ उपलब्ध होने लगता है। वस्तुओं के प्रमापीकरण एवं उनकी किस्मों की विभिन्नताओं में कमी के कारण उपभोक्ताओं के लिए अपनी आवश्यकता की वस्तुओं का चयन करना सरल हो जाता है।

❑

मॉडल पेपर

व्यावसायिक संगठन

B.Com.-I (SEM-I) [पूर्णांक : 75

नोट—सभी खण्डों को निर्देशानुसार हल कीजिए।

खण्ड-अ : अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश—सभी पाँच प्रश्नों** के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **3 अंक** का है। अधिकतम 75 शब्दों में अतिलघु उत्तर अपेक्षित हैं।*

1. व्यावसायिक संगठन के उद्‌गम एवं विकास पर प्रकाश डालिए।

2. निजी कम्पनी किसे कहते हैं?

3. व्यावसायिक इकाई के स्थानीयकरण का क्या अर्थ है?

4. व्यावसायिक संयोजन को परिभाषित कीजिए।

5. पारम्परिक व्यवसाय एवं आधुनिक व्यवसाय में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

खण्ड-ब : लघु उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश—**निम्नलिखित तीन प्रश्नों में से किन्हीं **2 प्रश्नों** के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **7.5 अंक** का है। अधिकतम 200 शब्दों में लघु उत्तर अपेक्षित हैं।*

6. व्यवसाय के प्रमुख कार्यों की विवेचना कीजिए।

अथवा प्रवर्तकों के कार्यों तथा कर्त्तव्यों का उल्लेख कीजिए।

7. साझेदारी के आवश्यक लक्षण अथवा विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

अथवा वेबर के सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाओं का उल्लेख कीजिए।

8. उद्योगों के प्रकारों पर प्रकाश डालिए।

अथवा व्यावसायिक संयोजन में कौन-सी समस्याएँ हो सकती हैं? वर्णन कीजिए।

खण्ड-स : विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश—**निम्नलिखित पाँच प्रश्नों में से किन्हीं **3 प्रश्नों** के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **15 अंक** का है। अधिकतम 500-800 शब्दों में विस्तृत उत्तर अपेक्षित हैं।*

9. व्यवसाय का अर्थ एवं परिभाषा बतलाइए। व्यवसाय के विकास के क्या चरण हैं? व्यवसाय की विशेषताएँ भी लिखिए।

अथवा व्यावसायिक संगठन की परिभाषा देते हुए इसकी अवधारणा को स्पष्ट कीजिए। व्यावसायिक संगठन के लक्षणों की भी व्याख्या कीजिए।

10. व्यवसाय प्रवर्तन के अर्थ को समझाते हुए इसकी परिभाषा दीजिए। प्रवर्तन की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन कीजिए।

अथवा व्यवसाय में सफलता के मूल तत्त्व कौन-से होने चाहिए? व्याख्या कीजिए।

11. अल्फ्रेड वेबर द्वारा प्रतिपादित औद्योगिक स्थानीयकरण के सिद्धानत की विवेचनात्मक समीक्षा कीजिए।

अथवा संयोजन के प्रमुख कारणों की विस्तृत विवेचना कीजिए।

12. संयुक्त स्कन्ध कम्पनी का अर्थ समझाइए। संयुक्त स्कन्ध कम्पनी की परिभाषा देते हुए इसकी प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

अथवा युक्तिकरण के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिए।

13. एकल स्वामित्व का परिचय देते हुए इसकी विशेषताओं एवं उपयुक्तता का वर्णन कीजिए।

अथवा संयंत्र अभिन्यास को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिए।

❑

TOUCH 'n' PASS